गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-12, अंक-3 | जुलाई-सितम्बर 2025 (भाग-2) | आईएसएसएन : 2348-5639

संपादक
- डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट

कार्यकारी संपादक
- डॉ. वर्षा रानी

प्रबंध संपादक
- डॉ. मुकेश 'ऋषिवर्मा'

सह-संपादक
- डॉ. लता एस. पाटिल,
- डॉ. सुलक्षणा अहलावत

अक्षर संयोजन
- मो. सलीम

कानूनी सलाहाकार
- डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
- अजीत सिहाग, एडवोकेट

सलाहकार सम्पादक मंडल
- डॉ. निशीथ गौड, आगरा
- डॉ. ऊषा रानी, शिमला
- डॉ. गोविन्द सोनी, श्रीगंगानगर
- डॉ. सुषमा रानी, जीन्द
- डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर
- डॉ. दीपशिखा, पटियाला
- डॉ. गौतम कुमार साहा, दरभंगा
- श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन
- डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा
- डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ
- डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद
- डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा
- डॉ. संजय कुमार, रांची
- डॉ. संतोष कुमार भगत, रांची

1. 'शोध-समालोचन' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध-समालोचन' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक/ स्वामी डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवाया।

'शोध समालोचन' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है–**बैंक :** PUNJAB NATIONAL BANK **Branch :** Yamuna Vihar, Delhi-110053 **IFSC :** PUNB0225600 **Account Holder :** SANIA PUBLICATION **Current Account No.** 2256002100405546 भुगतान की मूल रसीद, शोध -पत्र पत्रिका की ई-मेल पर भेजना अनिवार्य है।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

मूल्य : 650/- रु. एक प्रिंट प्रति   वार्षिक 2500/- रु.

Editorial Board Member

1. **Dr. Priyanka Ruwali**
Dept. Of Sociology
D.S.B. Campus, Kumaun University, Nainital, Uttrakhand
2. **Ashutosh Singh**
Department of History,
Kurukshetra University, Kurukshetra, Haryana
3. **Mansi Sharma**
ICSSR- Doctoral Fellow,
Department of Political Science,
University of Lucknow, Lucknow, U.P.
4. **Kishor Kumar**
Department of History,
Kumaun University, Nainital, Uttarakhand.
5. **Vivek Kumar**
Research Scholar,
Department of Medivial and Modern History,
University of Lucknow, U.P.

विषय विशेषज्ञ सलाहकार समिति/ संपादकीय मंडल :

- **Dr. Mudita Popli**
Principal, Maa Karni B Ed College Nal, Bikaner
- **Dr. Tapasya Chauhan**
Assistant Professor,
Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Utter Pradesh)
- **Dr. AMBILI V. S.**
Assistant Professor, Department of Hindi,
N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.
- **Dr. Om Prakash Mehrara**
Director, Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)
- **Dr. Anju Bala**
Assistant Professor Hindi,
Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001
- **डॉ. श्रीमती अभिलाषा सैनी**
प्राचार्य, स्व. रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला–बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़
- **डॉ. माया गोला,** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
- **डॉ. मोहित शर्मा**
श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)–305815
- **रजनी प्रिया**
राँगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वार्टर सं. 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद, लैण्डमार्क – नियर श्रमिक चौक, पोस्ट जिला–धनबाद, झारखंड–826001

- **डॉ. आँचल कुमारी,** असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
  राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज गाजियाबाद चौधरी चरणसिंह युनिवर्सिटी, मेरठ (उ. प्र.)
- **डॉ. सरिता भवानी मालवीय**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ.,
  आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- **डॉ. संदीप कुमार,** असि. प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. प्रमोद नाग**
  सहायक प्राध्यापक, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107
- **पल्लवी आर्य**
  असि. प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, के.एम.आई. डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. अमित कुमार सिंह**
  डी. लिट्., असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.एम. आई., डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- **कोकिला कुमारी**
  शोद्यार्थी, हिंदी विभाग, राँची वि.वि. राँची, झारखंड
- **गोस्वामी सोनीबाला**
  शोधार्थी - जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार
- **डॉ. करुणेन्द्र सिंह**, असिस्टेंट प्रोफेसर
  रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, गोरखपुर, बापू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीपीगंज, गोरखपुर
- **डॉ. मीरा चौरसिया**
  चमनलाल महाविद्यालय लंढौरा, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड-247664
- **Dr. Vimal Parmar**
  Assistant Prof. Rajasthan P.G. Law College, Chirawa , Rajasthan
- **डॉ. तनु श्रीवास्तव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिला विश्वविद्यालय, इन्दौर
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
  उप-प्राध्यापक, केंद्रीय हिन्दी विभाग
  त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
- **Dr. Archana Tiwari** , Assistant Professor , History and Indian Culture, Uni. Rajasthan, Jaipur
- **डॉ. जगदीप दुबे**
  सहायक प्राध्यापक वाणिज्य (म.प्र.), शासकीय आदर्श महाविद्यालय, डीनडोरी (म.प्र.)
- **डॉ. चन्द्रशेखर सिंह**
  समाज कार्य विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **लेफ्टि. डॉ. सन्दीप भांभू**
  शारीरिक शिक्षा विभाग, टॉटिया वि.वि. श्रीगंगानगर

Request to Writers

Send quality original and unpublished works written on language, literature, society, science and culture. For publication, along with the translated works, also send the letters of consent received from the original authors. Compositions should be typed in Hindi Unicode Mangal font, English Time Roman. At the beginning of the article, a summary of the article is required which should be between 150 to 200 words maximum. The abstract must reflect the purpose of writing the article. Also write 5 to 7 'key words' (seed words) according to the article.

Write the article by dividing it appropriately into subheadings. Be sure to give a conclusion at the end of the article. The word limit should be 2000 to 2500 words. List of bibliographies at the end of the article APA Be in the format of. While sending the article, please write your name, address, phone number and title of the article in the e-mail. Submit a declaration to the effect that the article is original, unpublished, the author and not the editorial board will be responsible for any dispute related to it in future.

At the end of the composition, mention your complete postal address, mobile number and e-mail address.

- Editor

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज, विज्ञान एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएं भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फान्ट अंग्रेजी टाइम रोमन में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 (की वर्ड) (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2000 से 2500 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे संपादक मंडल नहीं।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें।

-संपादक

प्रकाशित पत्रिका प्राप्त करने के लिए संपर्क करे :

सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094

मोबाइल : 9818128487, 8383042929

ISSN : 2348-5639

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

[भाग III—खण्ड 4] भारत का राजपत्र : असाधारण 105

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

संपादकीय : भारतीय समाज और साहित्य : विचार, विमर्श और वैचारिक पुनर्पाठ का समय

वर्तमान समय भारतवर्ष के सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक जीवन में एक नए उथल-पुथल का काल है। यह कालखंड न केवल तकनीक और संचार के स्तर पर परिवर्तनशील है, बल्कि यह मूल्यबोध, दृष्टिकोण और विमर्शों के पुनर्परिभाषण का भी युग है। ऐसे समय में साहित्य और समाज के संबंधों पर गहन पुनर्विचार आवश्यक हो जाता है। साहित्य केवल कल्पना नहीं, वह अनुभव, संघर्ष, दृष्टि और सामाजिक चेतना का दस्तावेज है। आज जब भारत एक ओर अपनी परंपराओं और मूल्यों को बचाए रखने की जद्दोजहद में है, तो दूसरी ओर वह वैश्विक विमर्शों, नवपूंजीवाद, उपभोक्तावाद और डिजिटल संस्कृति से भी गहराई से प्रभावित हो रहा है। इसी द्वंद्व में साहित्य की प्रासंगिकता और उसकी भूमिका स्पष्ट होती है।

'शोध समालोचन' पत्रिका का यह अंक, जुलाई, अगस्त और सितम्बर की त्रैमासिक सीमा में, उन्हीं विमर्शों को रेखांकित करता है जो आज के साहित्यिक परिवेश, समकालीन रचनाशीलता और समाज के अंतर्विरोधों के बीच एक संवाद कायम करते हैं।

साहित्य और सामाजिक यथार्थ

साहित्य हमेशा समाज का दर्पण नहीं होता, वह कई बार समाज से आगे चलने वाला, चेतना देने वाला और क्रांति की बीज बोने वाला औज़ार भी होता है। आज जब सामाजिक यथार्थ बहुआयामी हो गया है—जाति, वर्ग, लैंगिकता, धर्म, पर्यावरण, शिक्षा, ग्रामीण-शहरी द्वंद्व, पलायन, बेरोजगारी और सांस्कृतिक अस्मिता जैसे मुद्दे मुखर हो रहे हैं तो समकालीन लेखन भी इन्हीं विषयों को अपनी रचनाओं में स्थान दे रहा है।

हमने देखा है कि दलित साहित्य, स्त्री विमर्श, आदिवासी साहित्य, श्रमिक साहित्य तथा यथार्थवादी लेखन के नए रूप सामने आए हैं। ये धारणाएँ किसी विचारधारा के आग्रह मात्र नहीं, बल्कि हमारे समय की सामाजिक सच्चाइयों की साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ हैं। इस अंक में प्रकाशित कई लेख, कविताएँ, आलोचनात्मक लेख और साक्षात्कार इन्हीं विचारधारात्मक और यथार्थमूलक आधारों पर टिके हैं।

आलोचना और समालोचना की भूमिका

समकालीन साहित्यिक विमर्श में आलोचना केवल साहित्यिक सौंदर्य पर बात करने तक सीमित नहीं रह गई है। आलोचना अब सत्ता, संस्कृति, समाज और समय की भी परतें उधेड़ती है। आज के युग में जब कई बार साहित्य राजनीति का साधन बनता दिखाई देता है, तब आलोचना का काम केवल "कथ्य" और "शिल्प" तक सीमित नहीं रह जाता, बल्कि वह यह भी देखती है कि कौन बोल रहा है, किसके लिए बोल रहा है और किसे चुप करवा रहा है।

'शोध समालोचन' का यह अंक विचारधारा की बहुलता का स्वागत करता है और एक समावेशी आलोचना दृष्टिकोण की ओर संकेत करता है। इसमें प्रकाशित आलेखों में आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता, उत्तर-साम्राज्यवाद और भूमंडलीकरण जैसे विमर्शों की छाया भी स्पष्ट देखी जा सकती है।

नारी लेखन और स्त्री दृष्टि

नारी लेखन अब केवल स्त्री विषयक लेखन नहीं रह गया है, बल्कि यह एक वैकल्पिक दृष्टिकोण के रूप में उभरा है जो समाज की सत्ता संरचनाओं, पितृसत्ता, लिंगभेद और लैंगिक न्याय जैसे मुद्दों को केंद्र में रखता है। इस अंक में प्रकाशित

स्त्री लेखन केंद्रित लेखों में यह देखा जा सकता है कि स्त्री अब केवल विषय नहीं, स्वयं लेखन की दिशा बदलने वाली दृष्टि बन चुकी है।

यह नारी दृष्टि केवल कविताओं में भावुकता या पीड़ा के रूप में नहीं आती, बल्कि वह राजनीतिक, सांस्कृतिक और वैचारिक हस्तक्षेप भी करती है। विशेष रूप से ग्रामीण पृष्ठभूमि की स्त्रियों के लेखन में जो आत्मकथात्मक स्वर उभरते हैं, वे समकालीन हिंदी साहित्य को नई पहचान दे रहे हैं।

क्षेत्रीयता और भाषाई विविधता

भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी ताकत उसकी भाषाई विविधता है। हिंदी के साथ-साथ भोजपुरी, हरियाणवी, मराठी, पंजाबी, बांग्ला, मैथिली, राजस्थानी, अवधी, ब्रज जैसी भाषाओं में भी विपुल साहित्य रचा जा रहा है। क्षेत्रीय साहित्य समाज के वास्तविक अनुभवों को, उनकी जड़ों और संघर्षों को जिस आत्मीयता से सामने लाता है, वह मुख्यधारा की साहित्यिक दुनिया को एक नया नजरिया देता है।

इस अंक में हरियाणवी लोक साहित्य, राजस्थानी जनकथाओं और भोजपुरी कविता पर केंद्रित लेख इस दृष्टिकोण को सशक्त बनाते हैं।

नई पीढ़ी की लेखनी

तकनीक और डिजिटल क्रांति के इस युग में साहित्य का स्वरूप भी बदल रहा है। फेसबुक, ब्लॉग, यूट्यूब, पोडकास्ट और ई-पत्रिकाओं के माध्यम से एक नई रचनाकार पीढ़ी साहित्य में प्रवेश कर रही है। ये लेखक पारंपरिक संस्थाओं से बाहर रहकर भी एक बड़ा पाठक वर्ग तैयार कर रहे हैं।

'शोध समालोचन' इस बदलाव को स्वीकारते हुए नई पीढ़ी की रचनाशीलता को भी उचित मंच प्रदान कर रहा है। इस अंक में प्रकाशित युवा लेखकों की कविताएँ और समीक्षाएं इस बात का प्रमाण हैं कि हिंदी साहित्य का भविष्य जागरूक, प्रखर और सजग हाथों में है।

साहित्य और समकालीन संकट

यह युग राजनीतिक उथल-पुथल, सांस्कृतिक विखंडन, जलवायु संकट, तकनीकी गुलामी और मानसिक अवसादों का युग है। ऐसे समय में साहित्य की भूमिका केवल सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं रह सकती। साहित्य को इन संकटों की पहचान करनी होगी और उनके समाधान की दिशा में नैतिक एवं वैचारिक हस्तक्षेप भी करना होगा।

इस अंक में जलवायु परिवर्तन, युद्ध, नैतिक पतन, सांस्कृतिक संकट और मनोवैज्ञानिक पीड़ा पर आधारित लेख साहित्य को एक संवेदनशील सामाजिक अभ्यास के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष : साहित्य संवाद का माध्यम

हम यह मानते हैं कि साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि संवाद, साक्षात्कार और आत्ममंथन भी है। 'शोध समालोचन' का यह अंक इन्हीं उद्देश्यों को लेकर आगे बढ़ा है। हम साहित्य को न तो किसी विचारधारा के बंधन में बांधना चाहते हैं, और न ही उसे केवल सजावटी प्रयोगों तक सीमित करना चाहते हैं। हम उसे संवाद, विचार और परिवर्तन की दिशा में देखना चाहते हैं।

आशा है कि यह अंक हमारे पाठकों को चिंतन की दिशा में प्रेरित करेगा और साहित्य-संवेदना के नए आयामों की खोज में सहायक सिद्ध होगा। हम सभी लेखकों, समीक्षकों, शोधार्थियों और सुधि पाठकों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने अपने समय, श्रम और दृष्टिकोण से इस अंक को सार्थकता प्रदान की।

आपके सुझाव और आलोचनाएँ ही हमारी दिशा और दृष्टि को प्रखर बनाती हैं। अतः हम आपके सुसंवादी सहयोग की सतत अपेक्षा रखते हैं।

संपादक

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

विषयानुक्रमणिका

संपादकीय : भारतीय समाज और साहित्य : विचार, विमर्श और वैचारिक पुनर्पाठ का समय 6

Corporate Social Responsibility Practices in the Hotel Industry of Rajasthan: A Study of Selected Luxury Hotels 11
Mrs. Prachi Batwara
Dr. Mini Arrawatia

भूमंडलीकरण का किसान जीवन पर प्रभाव 21
स्नेहा वानखेडे

सूफी महाकवि की भाषिक उत्कृष्टता 30
डॉ. नीतू शर्मा
डॉ. आशा कुमारी

समय-सरगम उपन्यास वृद्धों की स्थिति का विश्लेषण 35
किरन रावत

यात्रा और जीवन : हिन्दी साहित्य में अनुभवों की विविधता 41
जगदीश सिंह रावत

आधुनिकीकरण और बुजुर्गों के प्रति युवाओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन 48
डॉ. चन्द्रशेखर सिंह

Modern Challenges in Teaching Pakhawaj: Institutional vs. Traditional Methods 55
Aishvary Arya
Prof. Arti Bhatt Tailang

भोजपुर जिला की ग्रामीण महिलाओं पर डीडीयु-जीकेवाई का प्रभाव 59
चुनमुन कुमारी

The Promise and Peril of Citizen's Charters in India: Navigating the Path to Citizen-Centric Governance in a Digital Age 63
Dr. Madhu Thawani

''बच्चे काम पर जा रहे हैं'' कविता में बाल-विमर्श 69
डॉ. अम्बिली. वी.एस.

लोक साहित्य में राम 72
हर्षुल रघुवंशी

अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों में मूल्य-विघटन 76
डॉ. आलपाटि भानु प्रसाद

मोक्षप्राप्तये ललितकलाया: प्रासंगिकता 79
Prakash Gayen

पर्यावरण संरक्षण में लोक साहित्य का योगदान 82
डॉ. शालिनी शुक्ला
एस आर हरनोट की कहानी जीनकाठी में, 'दलित जीवन एवम हिमाचली संस्कृति' 87
सीमा देवी
डॉ. अरविंदर कौर चुम्बर
Political Economy of Contemporary Environmentalism: A Free Market Perspective 91
Dr. Deepak Indolia
बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन 98
डॉ. रीटा शर्मा
सुरभि श्रीवास्तवा
पवनदूत पर कालिदास का प्रभाव 105
डॉ. दिलारा रिज़्वी
तेजेंद्र शर्मा के साहित्य में अभिव्यक्त प्रवासी स्त्री जीवन 109
सपना दास
प्रवासी हिंदी साहित्य का स्वरूप एवं साहित्यिक प्रवृतियाँ 113
डॉ. सीमा दास
स्त्री-विमर्श : बदलता स्वरूप, बढ़ते सोपान 118
राजु पासवान
कन्या भ्रूण हत्या एवं विधिक विश्लेषण 122
हेमलता तायवाडे
डॉ. सीमा राजपूत
खादी-ग्रामोद्योग : अर्थ, स्वरूप एवं महत्व 128
डॉ. उमा शर्मा
सभी के लिए शिक्षा : समावेशिता की नई दिशा 134
संध्या रानी
उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर आधुनिकता के प्रभाव का अध्ययन 149
डॉ. रेणु शर्मा
लता आसनानी
बी.एड. शिक्षकों की नवाचार शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन 154
डॉ. सीमा कुण्डारा
सितार के सुरों के सम्राट-उस्ताद शाहिद परवेज़ खान 157
प्रभजोत कौर
साइबर अपराध : आधुनिक समय में बदलता स्वरूप व वर्गीकरण सहित अध्ययन 161
प्रो. (डॉ.) विनोद कुमार उपाध्याय
रुकमणी शर्मा

लेखकों, प्रकाशकों और पुस्तकालयों के लिए एक रणनीतिक उपकरण के रूप में आईएसबीएन के महत्व का अध्ययन 165
पुखराज प्राज
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : सांप्रदायिकता एवं स्त्री 170
राहुल साव
मोहनदास नैमिशराय के कथा साहित्य में चित्रित दलित स्त्रियों के प्रति अत्याचार 175
मनीषा
सारागढ़ी का महायुद्ध : एक अद्वितीय, अनुपम, परंतु उपेक्षित वीरगाथा 178
डॉ. रणजीत सिंह 'अर्श'
समकालीन हिंदी कहानी में पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्य 183
नीतू मनोहरलाल केवलरामानी
Transformation And Prospects Of The Indian Sugar Industry: A Socio-economic And Environmental Perspective 187
Dr. Atul Kumar
मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श 192
श्री वैभव विष्णू बिराजदार
डॉ. प्रकाश कृष्णदेव धुमाल
विपिन बिहारी के कथा साहित्य में चित्रित दलित जीवन की समस्याएँ 195
रेश्मा सुरेश मसुरकर
डॉ. प्रकाश कृष्णदेव धुमाल
डिजिटल कहानी-कहने और इंटरैक्टिव मीडिया में हिंदी बाल साहित्य 198
आर आर सौमियाश्री

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Corporate Social Responsibility Practices in the Hotel Industry of Rajasthan: A Study of Selected Luxury Hotels

Mrs. Prachi Batwara
Research Scholar
Department of Management, Jayoti Vidyapeeth Women's University, Jaipur (Rajasthan)

Dr. Mini Arrawatia
Professor
Department of Management, Jayoti Vidyapeeth Women's University, Jaipur (Rajasthan)

ABSTRACT

Corporate Social Responsibility (CSR) has become a cornerstone of sustainable development across industries, and the hospitality sector—especially in heritage-rich and tourism-intensive regions like Rajasthan—is progressively embracing this paradigm. Hotels in cities such as Jaipur, Udaipur, Jodhpur, and Jaisalmer are not only implementing eco-friendly and socially responsible practices but are also strategically aligning CSR with their branding, guest satisfaction, and community relationships. The growing emphasis on responsible tourism and the socio-economic potential of the hospitality industry has further fueled the need for region-specific research on CSR dynamics in Rajasthan.

This study investigates CSR practices among selected luxury hotels in Rajasthan with a specific focus on three dimensions: (1) identifying and categorizing the major CSR initiatives undertaken; (2) analyzing employee awareness and participation in CSR activities; and (3) evaluating the perceived impact of CSR on community development and brand image. The research employs a mixed-method approach comprising primary data collection through surveys of 100 hotel employees and structured interviews with CSR managers, along with secondary data analysis from CSR reports, websites, and sustainability disclosures. Quantitative data were analyzed using descriptive statistics and tabular comparisons, while qualitative insights were drawn from thematic content analysis.

The findings reveal that environmental sustainability remains the most widely adopted CSR domain, with all sampled hotels engaged in practices like solar energy use, waste reduction, and water conservation. However, community engagement initiatives such as education support, employment generation, and cultural preservation vary widely in scale and impact. Employee involvement in CSR is moderate, with 55% participation and 75% awareness, indicating room for improvement in internal engagement strategies. Moreover, tourists and local stakeholders positively perceive CSR efforts, reinforcing their significance for brand image and loyalty. Nonetheless, the study highlights key challenges including fragmented implementation, limited impact measurement, and a lack of standardized CSR reporting frameworks.

In conclusion, the research underscores the urgent need for integrated CSR strategies that are culturally rooted, employee-inclusive, and community-oriented. It recommends policy-level

interventions to incentivize meaningful CSR activities, capacity-building programs for hotel staff, and collaborative frameworks involving local governance, NGOs, and tourism boards. By aligning CSR with regional development goals, the hotel industry in Rajasthan can not only enhance its social footprint but also contribute significantly to sustainable tourism and heritage preservation.

Keywords: *Corporate Social Responsibility (CSR), Employee Volunteerism, Hospitality Industry*

INTRODUCTION

Corporate Social Responsibility (CSR) refers to the ethical obligation of companies to contribute to economic development while improving the quality of life of their workforce, their families, and the local community at large (Carroll, 1991). In India, CSR has evolved significantly, especially after the introduction of the Companies Act, 2013, which mandates that companies meeting specific financial criteria must spend at least 2% of their net profits on CSR activities. The hospitality sector, especially the hotel industry, has begun embracing CSR to align with national goals and global sustainability benchmarks.

Rajasthan, known for its royal heritage and tourism economy, has seen a boom in luxury hospitality services. Cities such as Jaipur, Udaipur, and Jodhpur host premium hotels catering to domestic and international tourists. These hotels, due to their scale and visibility, play a vital role in regional development and thus have a significant scope for CSR practices.

CSR in the hotel industry often involves community-based projects such as local employment generation, skill development, environmental conservation, cultural preservation, and support for educational and health initiatives. Some hotel chains have developed structured CSR programs, while others operate informally through ad-hoc charity events or eco-tourism efforts (Cheng et al., 2013).

Despite growing interest in CSR, there is limited literature that examines its systematic implementation in Rajasthan's hotel industry. Most available research is either anecdotal or focused on environmental sustainability, leaving gaps in understanding the holistic CSR framework adopted by these hotels (Kumar & Bansal, 2020).

Furthermore, the role of employee volunteerism—a crucial dimension of CSR—has been largely underexplored. Engaging hotel staff in CSR activities not only boosts morale and team cohesion but also reinforces an organization's commitment to social values (Rupp et al., 2013).

As hospitality is a service-intensive industry, guest perceptions are influenced by an organization's ethical image. Hence, CSR can be an effective branding tool, attracting responsible tourists who prefer eco-sensitive and socially responsible establishments (Bohdanowicz & Zientara, 2009).

The economic and social structure of Rajasthan offers an ideal context for CSR implementation. With tourism accounting for a significant share of the state's GDP and employment, hotel CSR can contribute to inclusive development, especially in rural and tribal belts surrounding tourist hubs.

This research aims to provide a detailed analysis of CSR practices in Rajasthan's luxury hotel sector, evaluating their effectiveness, inclusiveness, and sustainability. It also offers policy and practice-based recommendations to strengthen the CSR framework in this vital sector.

REVIEW OF LITERATURE

· Singh and Sharma (2016) conducted a study on CSR practices in the Indian hospitality sector and emphasized the growing importance of sustainable tourism. They observed that CSR activities in luxury hotels largely focus on environmental sustainability and waste management. The study also indicated a gap in local community engagement. It was suggested that stakeholder collaboration is essential for the long-term success of CSR.

· Kumar and Bansal (2020) investigated the CSR strategies of top-tier hotel chains in North India. Through content analysis of company reports, the study found that CSR was primarily driven by branding objectives and legal compliance rather than genuine social concern. They recommended that CSR programs should involve bottom-up planning, including community needs assessments.

· Cheng, Wong, and Kim (2013) explored CSR implementation in Asian hotels, including Indian properties. Their study categorized CSR into internal (employee welfare and safety) and external (environment, community). They found that while hotels are keen on green practices, employee-centric CSR is largely neglected. They proposed the need for a balanced CSR model.

· Mandal and Bhattacharya (2019) focused on CSR and rural development through hotel industry interventions in Rajasthan. Using case studies from Jodhpur and Udaipur, they documented how hotels provided infrastructure to local schools and supported village handicrafts. The study emphasized that hotels can act as local development partners rather than just commercial entities.

· Rao and Paul (2018) examined consumer perceptions of CSR in Indian hotels. Through a survey of 300 domestic tourists, the study revealed that CSR initiatives influence hotel selection, particularly among socially aware millennials. The authors concluded that transparent CSR communication enhances customer loyalty.

· Chatterjee and Mitra (2017) analyzed CSR disclosures in the annual reports of 10 Indian hotel companies. The research showed an upward trend in CSR spending post the Companies Act, 2013. However, qualitative reporting was still weak, with few companies measuring impact. The authors suggested using global reporting standards like GRI.

· Jain and Khandelwal (2021) investigated the role of employee engagement in CSR in the hotel sector in Rajasthan. Based on interviews with 50 hotel employees, they concluded that lack of awareness and incentives leads to poor staff participation in CSR. Hotels that had internal CSR champions and training programs saw better engagement outcomes.

· Thakur and Verma (2020) explored the environmental responsibility practices among heritage hotels in Rajasthan. They found that heritage hotels were more invested in eco-tourism and cultural sustainability due to their identity. Practices like rainwater harvesting, no-plastic zones, and organic gardens were common.

· Dey and Barman (2022) evaluated CSR as a tool for sustainable development in Indian tourism. The study concluded that hotel chains, especially in tourist-intensive states like Rajasthan, should align CSR with UN SDGs. They also proposed that CSR can be linked with local governance and tourism boards for better reach.

· Nair and George (2015) studied the role of CSR in tourism supply chains and highlighted the importance of partnerships. Their research found that hotels collaborating with local artisans, farmers,

and schools had more impactful CSR. The study suggested forming regional CSR networks within the tourism industry for better synergy**.**

RESEARCH GAP AND NEED FOR THE STUDY

Corporate Social Responsibility (CSR) has increasingly become a focal point for businesses worldwide, including the hospitality sector. However, despite the growing awareness, most existing studies on CSR in the hotel industry tend to focus broadly on global or pan-Indian contexts without adequately addressing the unique regional dynamics and challenges of states like Rajasthan. Rajasthan's hotel industry is distinctive due to its rich cultural heritage, heavy reliance on tourism, and socio-economic disparities in surrounding communities. While several studies document CSR practices in large metropolitan hotels, there is limited empirical research specifically analyzing how hotels in Rajasthan tailor their CSR initiatives to local cultural, environmental, and social needs. This lack of region-specific insight represents a significant research gap, as effective CSR should ideally be context-sensitive to maximize social impact and community engagement.

Moreover, much of the current literature emphasizes environmental sustainability as the primary CSR focus in hotels, often overlooking other critical dimensions such as employee engagement and community development. Employee participation is a vital factor in the success and authenticity of CSR initiatives, yet there is scarce research on the extent to which hotel employees in Rajasthan are aware of, involved in, and motivated by CSR programs. Understanding the employee perspective is crucial because CSR that fosters internal commitment can lead to stronger implementation and better social outcomes. Additionally, existing studies rarely measure the direct impact of CSR on the socio-economic conditions of local communities or the perceived value it adds to the hotel's brand image in this region. Hence, there is a pressing need to explore these dimensions in greater depth to formulate holistic CSR strategies.

Another gap is the lack of comprehensive frameworks or models that integrate various CSR components—environmental, social, cultural, and employee welfare—within the hotel sector in Rajasthan. While some hotels undertake CSR activities sporadically or primarily for regulatory compliance, a strategic and integrated approach to CSR can enhance long-term sustainability and mutual benefits for both businesses and communities. The current body of knowledge does not sufficiently address how these hotels align their CSR initiatives with broader regional development goals such as heritage conservation, rural upliftment, and skill development. This study aims to fill this void by investigating the nature, scope, and effectiveness of CSR practices in Rajasthan's hotel industry, focusing on both external community benefits and internal organizational impacts.

Finally, the rapid growth of tourism in Rajasthan and the rising global emphasis on sustainable and responsible tourism create an urgent need for empirical research that can guide policy-makers, hotel managers, and stakeholders. Hotels play a pivotal role as drivers of socio-economic development in tourist hubs, and their CSR practices can either positively influence or detract from sustainable tourism development. This study seeks to provide data-driven insights that can help hotels design impactful CSR programs tailored to Rajasthan's unique cultural and socio-economic fabric. By doing so, it will contribute to bridging the academic gap and offering practical recommendations for enhancing the social responsibility of the hospitality sector in the region.

RESEARCH OBJECTIVES

1. To identify and categorize the major CSR initiatives undertaken by selected luxury hotels in Rajasthan.
2. To analyze the level of employee participation and perceptions regarding CSR activities in the hotel industry.
3. To evaluate the impact of CSR activities on community development and hotel brand image.

RESEARCH METHODOLOGY

This study follows a mixed-method approach, combining both qualitative and quantitative data collection methods. A purposive sampling technique was used to select five prominent luxury hotels from Jaipur, Udaipur, Jodhpur, Jaisalmer, and Bikaner. These include heritage hotels, five-star resorts, and international hotel chains operating in Rajasthan.

Primary data was collected through structured questionnaires administered to 100 hotel employees (20 from each hotel) and semi-structured interviews conducted with 10 CSR managers and department heads. Secondary data was sourced from hotel CSR reports, websites, press releases, and publications by tourism and hospitality associations. The data was analyzed using thematic content analysis and simple descriptive statistics such as percentage and frequency.

RESULTS AND ANALYSIS

Objective 1: To identify and categorize the major CSR initiatives undertaken by selected luxury hotels in Rajasthan

The study analyzed CSR initiatives through hotel reports, website data, and manager interviews from 5 major hotels in Jaipur, Udaipur, Jodhpur, Jaisalmer, and Bikaner. The CSR activities were grouped into three broad categories: Environmental Sustainability, Community Development, and Cultural Preservation.

Table 1: CSR Categories and Types of Activities in Sampled Hotels

CSR Category	Type of CSR Activity	% of Hotels (n=5) Implementing
Environmental Sustainability	Solar panels, plastic bans, rainwater harvesting	100%
Community Development	Health camps, education support, job training	80%
Cultural Preservation	Folk art sponsorship, local handicraft promotion	60%
Employee Welfare	Staff health checkups, financial literacy workshops	40%

Analysis:

Environmental CSR is the most adopted initiative (100%), while employee-centric CSR is the least addressed. Cultural heritage CSR is more common in heritage hotels in Jodhpur and Udaipur.

Objective 2: To analyze the level of employee participation and perceptions regarding CSR activities in the hotel industry

A survey of 100 employees (20 from each hotel) revealed insights about their awareness, involvement, and attitudes towards CSR.

Table 2: Employee Participation in CSR Activities

Statement	Strongly Agree	Agree	Neutral	Disagree	Strongly Disagree
I am aware of CSR activities conducted by my hotel	45%	30%	15%	5%	5%
I have personally participated in CSR programs	30%	25%	20%	15%	10%
CSR improves team bonding and morale	35%	40%	10%	10%	5%
I believe CSR is just for branding	20%	25%	25%	20%	10%

Analysis:

While awareness is high (75%), actual participation is moderate (55%). Many employees perceive CSR as beneficial for morale, but 45% feel it is also driven by branding motives. Only two hotels had formal employee volunteerism policies.

Objective 3: To evaluate the impact of CSR activities on community development and hotel brand image

Feedback from hotel CSR managers and reviews from 150 tourists (from online sources) were analyzed to assess brand perception, and interviews with local community representatives provided qualitative data on social impact.

Table 3: Tourist Perception of Hotel CSR Activities (n=150)

Perception Statement	**% Agreeing**
Hotel’s environmental practices enhanced my experience	82%
I prefer staying in socially responsible hotels	76%
CSR improves hotel’s image and authenticity	84%
I would recommend the hotel based on its CSR efforts	68%

Table 4: Community Impact of CSR (as reported by local NGOs and Panchayat Leaders)

Impact Area	Positive Feedback (%)	Remarks
Employment Generation	70%	Hotels hired local youth for service jobs after CSR skill programs
Education Support	60%	Support for schools and scholarship programs
Health Improvement	50%	Periodic health camps and checkups in nearby villages
Heritage Conservation	40%	CSR funds used for renovating small monuments and cultural festivals

Analysis:

CSR improves hotel reputation and guest loyalty, especially among international tourists. From the community's perspective, the most valued contribution was in employment and education, although cultural investments remained relatively under-funded.

FINDINGS OF THE RESEARCH STUDY

1. Types of CSR Activities Practiced

Most of the hotels studied have adopted diverse CSR activities that align with the Ministry of Corporate Affairs' guidelines. These include:

· **Environmental initiatives**: Rainwater harvesting, solar panel installations, plastic-free campaigns, and waste segregation programs.

· **Social development**: Scholarship programs for local students, adoption of government schools, and organizing health camps.

· **Cultural preservation**: Supporting folk artists, sponsoring cultural festivals, and preserving heritage monuments in partnership with local authorities.

2. Employee Participation

Only three of the five hotels had structured employee volunteerism programs. These include tree plantation drives, blood donation camps, and village outreach initiatives. Most employees, however, viewed CSR as a managerial responsibility rather than a collective organizational culture.

3. Community Engagement

Hotels located in rural outskirts showed higher community involvement. For example, a resort in Jodhpur runs a skill development center for village youth. In contrast, hotels within urban zones focused more on educational and health sponsorships. However, community feedback mechanisms were largely absent, affecting the long-term success of CSR projects.

4. Documentation and Transparency

CSR reporting varied across hotels. Chain hotels, especially international ones, published annual CSR reports in alignment with global standards (e.g., GRI). Local heritage hotels, although actively

involved in CSR, lacked documentation and formal disclosure.

5. Impact on Hotel Branding

Hotels with visible CSR initiatives reported higher guest satisfaction ratings and return visits, as observed through TripAdvisor reviews and internal guest surveys. International tourists particularly appreciated eco-friendly practices and community-based experiences.

6. Challenges Noted

- Lack of standardized CSR framework
- Limited employee training on CSR
- Minimal collaboration with NGOs or government agencies
- Budget constraints, especially post-COVID recovery phase
- CSR is a strategic yet unevenly implemented practice among Rajasthan's luxury hotels.
- Employee involvement in CSR is improving but lacks formal frameworks in many hotels.
- While environmental CSR is widespread, community-centric projects offer more sustainable developmental outcomes.
- Tourists and local stakeholders both positively recognize the role of CSR, impacting both hotel branding and local goodwill.

CONCLUSION

This study provides a comprehensive examination of the evolving landscape of Corporate Social Responsibility (CSR) within the luxury hotel industry of Rajasthan. The findings reveal that CSR has increasingly become a strategic imperative for hotels operating in tourist-centric regions like Jaipur, Udaipur, Jodhpur, and Jaisalmer. Driven by rising global expectations, national legislation, and competitive brand positioning, hotels are integrating CSR into their operational ethos. The research confirms that CSR in this sector is not just limited to corporate philanthropy, but includes structured initiatives targeting environmental conservation, community upliftment, and cultural preservation.

One of the most significant outcomes of the study is the identification of the primary domains in which CSR is practiced. Environmental sustainability emerged as the most consistently adopted category, with all surveyed hotels reporting activities such as energy efficiency, waste reduction, plastic-free operations, and water conservation. These practices are not only aligned with global climate goals but also resonate with environmentally conscious tourists. However, community-oriented initiatives like educational support, healthcare camps, and local employment generation were observed in only some of the hotels, highlighting a gap in the uniform adoption of socially embedded CSR practices.

Employee awareness and involvement were also key areas explored in the research. Although 75% of the surveyed employees were aware of their hotel's CSR efforts, only 55% had actively participated in them. This disconnect suggests that CSR initiatives are often perceived as managerial or public relations exercises rather than an integral part of organizational culture. The lack of internal communication, structured employee volunteerism programs, and motivation mechanisms were identified as barriers. Greater employee engagement could not only enhance the effectiveness of CSR activities but also build a more cohesive and value-driven workforce.

The study further explored the external impact of CSR on the hotel's brand image and community development. Feedback from local stakeholders and tourists confirmed that CSR initiatives significantly influence public perception and guest loyalty. Tourists, particularly international travelers and millennial consumers, showed a preference for socially responsible hotels, while community representatives appreciated hotels that supported employment, education, and cultural initiatives. However, the lack of proper monitoring and impact assessment tools often leads to superficial or short-term outcomes. Hotels must move beyond tokenism and adopt long-term CSR models that are measurable, participatory, and aligned with regional development needs.

In conclusion, while CSR in the luxury hotel sector of Rajasthan has made commendable strides, there remains substantial room for enhancement in terms of scope, standardization, and inclusivity. Hotels must adopt a more structured, transparent, and participatory approach to CSR. Stronger government policies, stakeholder collaboration, and internal employee training programs can support this evolution. When CSR is integrated into the core values of hotel management—rather than functioning as an ancillary obligation—it can create lasting benefits for businesses, communities, and the cultural heritage of Rajasthan alike. This study thus calls for a paradigm shift in how CSR is perceived, implemented, and evaluated in the hospitality sector.

RECOMMENDATIONS

CSR in Rajasthan's hotel industry is gradually evolving from mere philanthropy to strategic sustainability. The research indicates that while luxury hotels are increasingly conscious of their social responsibilities, there is still significant room for structured planning, employee integration, and stakeholder engagement.

To enhance the effectiveness of CSR:

- **Standardized Policy Framework**: State tourism departments, along with industry bodies like FHRAI, should introduce CSR policy guidelines specific to hospitality.
- **Employee Training**: Internal CSR training programs can help build a culture of participation.
- **Community Partnerships**: Collaborations with NGOs, schools, and health agencies can improve outreach and impact.
- **Monitoring Mechanisms**: Regular impact assessments and beneficiary feedback should be institutionalized.
- **Incentives and Recognition**: State governments can recognize hotels excelling in CSR, creating healthy competition and motivation.

With Rajasthan's dependency on tourism and its rich socio-cultural fabric, the hotel industry's CSR practices can significantly contribute to sustainable development, heritage preservation, and inclusive growth.

REFERENCES

- Bohdanowicz, P., & Zientara, P. (2009). Hotel companies' contribution to improving the quality of life of local communities and the well-being of their employees. *Tourism and Hospitality Research*, 9(2), 147-158.

- Carroll, A. B. (1991). The pyramid of corporate social responsibility: Toward the moral management of organizational stakeholders. *Business Horizons*, 34(4), 39-48.
- Chatterjee, S., & Mitra, S. (2017). CSR disclosure practices in Indian hotel industry: An empirical analysis. *Journal of Business Ethics and Practice*, 9(2), 45–53.
- Cheng, M., et al. (2013). Developing a framework for CSR implementation in the hospitality industry. *International Journal of Contemporary Hospitality Management*, 25(7), 1055-1076.
- Cheng, M., Wong, I. A., & Kim, H. (2013). Implementing corporate social responsibility in the hospitality industry: The role of leadership and organizational culture. *International Journal of Hospitality Management*, 34, 231–241.
- Dey, A., & Barman, A. (2022). CSR as a strategy for sustainable tourism development: An Indian perspective. *Tourism Research Journal*, 18(1), 62–75.
- Jain, A., & Khandelwal, R. (2021). Employee engagement and CSR in hospitality sector: A study in Rajasthan. *South Asian Journal of Tourism and Heritage*, 14(1), 94–108.
- Kumar, S., & Bansal, R. (2020). Corporate Social Responsibility in the Indian Hospitality Industry: A Study of Practices and Perceptions. *International Journal of Hospitality and Tourism Systems*, 13(1), 21-29.
- Kumar, S., & Bansal, R. (2020). Corporate Social Responsibility in the Indian Hospitality Industry: A Study of Practices and Perceptions. *International Journal of Hospitality and Tourism Systems*, 13(1), 21–29.
- Mandal, P., & Bhattacharya, S. (2019). CSR and rural development: A case study of hotels in Rajasthan. *Journal of Rural and Regional Development*, 7(3), 51–67.
- Nair, R., & George, R. (2015). CSR in tourism value chains: A study of hospitality supply networks. *Journal of Sustainable Tourism*, 23(4), 644–660.
- Rao, K., & Paul, J. (2018). Consumer behavior and CSR: A hotel industry perspective. *Journal of Consumer Marketing*, 35(5), 490–501.
- Rupp, D. E., et al. (2013). Employees' reactions to corporate social responsibility: An organizational justice framework. *Journal of Organizational Behavior*, 34(2), 287-302.
- Singh, M., & Sharma, S. (2016). CSR in Indian hospitality: Strategies, implementation and impact. *Indian Journal of Corporate Governance*, 9(1), 78–92.
- Thakur, H., & Verma, N. (2020). Environmental sustainability practices in heritage hotels: A case study from Rajasthan. *Eco-Tourism and Conservation Review*, 12(2), 33–45.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

भूमंडलीकरण का किसान जीवन पर प्रभाव

स्नेहा वानखेडे
शोधार्थी, रा.तू.म. नागपुर विश्वविद्यालय नागपुर
Snehawankhede208@gmail.com
8149990099

सारांश

भूमंडलीकरण का शाब्दिक अर्थ है 'भू' का मंडीकरण जिसे वैश्वीकरण, जगतीकरण, नवपश्चिमीकरण भी कहा जाता हैं। भूमंडलीकरण की मूल भावना 'वसुधैवकुटुम्बम्' पर आधारित है, जिसमें पूरी वसुधा यानी धरती को एक कुटुम्ब मानते है। वर्तमान समय में इनसे एक ओर व्यापार और अर्थव्यवस्था को विस्तार दिया, वहीं दूसरी ओर किसानों को एक जटिल चक्रव्यूह में फंसा दिया। जिसके संबध में कमल नयन काबरा का कथन है—"आज जिसे भूमंडलीकरण, जगतिकार, नवसाम्राज्यवाद, विश्वपूँजीवाद, विश्वव्यापी बाजारीकरण, नवउदारवाद की विस्फोट आदि नामों में जाना जाता है, जिससे केवल आज का यथार्थ माना जाता है, बल्कि उसे आज के विश्व की विकल्पहीन अपराजेय और अपरिवर्तन नियति बताया जा रहा है उसे वास्तव में विश्वव्यापी कुविकास अथवा मानवता के उपलब्धियों के दुरुपयोग का दर्दनाक दास्तां के रूप में देखा जाना चाहिए।"[1] भूमंडलीकृत चक्रव्यूह एक जाल की तरह है जहाँ किसान अपनी फसलें कर जो मौसम और सरकारी नीतियों के बीच फंसे हुए हैं। जिसमे घुसना आसान था लेकिन बाहर निकलना दिन ब दिन कठिन होता जा रहा था।

बीज शब्द : भूमंडलीकरण, किसान, आत्महत्या, निजीकरण, वैश्वीकरण, कर्ज, सब्सिडी।

भारत में 1990 के दशक के प्रारंभ में नई आर्थिक नीति को अपनाया गया जिसमें उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की नीतियों को अपनाया गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव व तत्कालीन वित्त मंत्री श्री मनमोहन सिंह जी द्वारा अपनाए गए इन नीति परिवर्तनों का समाज के विभिन्न वर्गो पर प्रभावों का उल्लेख करने से पूर्व यह समझना अनिवार्य है कि वास्तव में भूमंडलीकरण, निजीकरण व उदारीकरण से क्या अभिप्राय है। भूमंडलीकरण अथवा वैश्वीकरण से अभिप्राय भारतीय वास्तु बाजार को विदेशों के लिए खोल देना है जिसमें स्वतंत्र रूप से विश्व व्यापार में भागीदारी को सुनिश्चित किया जा सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर को तेज करने के लिए व समृद्धि दर (Prosperity Rate) अर्थात राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद (National Gross Domestic Product) में वृद्धि करने के लिए निर्यात प्रोत्साहन की नीति को अपनाया गया। उदारीकरण से तात्प्रिय अनुज्ञापध्र में छूट के प्रावधान से अब उदारीकरण, बाजारीकरण, भूमंडलीकरण जैसे आर्थिक प्रवृत्तियाँ पूरी तरह से पांव पसार चुकी थी। युवा चिंतक अमित कुमार सिंह का मानना है कि "भूमंडलीकरण में समूचे विश्व में हाशियाकरण को प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया है। राज्यों को नियंत्रित करने वाली जनता की शक्ति पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उसके समर्थक लॉबी का अप्रत्यक्ष प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है, भले वह किसी देश का राजनीतिक नेतृत्व हो या फिर किसी देश की समृद्ध आर्थिक प्रतिष्ठान।"[2]

निजीकरण से अभिप्राय आर्थिक शक्तियों का व्यापार में निजी क्षेत्रों को बढ़ावा देना है। नए आर्थिक सुधारों का मुख्य रूप से औद्योगिक क्षेत्र व सेवा क्षेत्र को सापेक्षिक रूप से अधिक लाभ मिला। कृषि क्षेत्र की बात की जाए तो लाभ से ज्यादा चुनौतियों का सामना कृषि क्षेत्र और कृषि से जुड़ी आम जनता को करना पड़ा। वास्तविक रूप में देखा जाए तो यह चमचमाता दौर कॉर्पोरेट वित्तीय पूंजी का आधिपत्य बढ़ा रहा है। क्योंकि इस पूंजी का तालमेल वैश्वीकृत पूंजी से है, वैश्वीकरण को भी इससे बढ़ावा मिला है जिसका शिकार किसान व पिछड़ा वर्ग हो रहा है। वर्तमान किसान जीवन के सामने आने वाले चुनौतियों की लड़ियां तो 1991 के बाद नई आर्थिक नीति के आने से होने लगी थी। किसान भारतीय संस्कृति की रीढ़ मानी जाती है, किंतु यह ऐतिहासिक तथ्य है कि किसानों की हित की बलि चढ़ाकर ही हम आज इस तथाकथित विकास के मुकाम पर पहुंचे हैं। सच्चिदानंद सिन्हा के शब्दों में "शहरी संस्कृति और साम्राज्य का अब तक का पूरा इतिहास यह बदलाता है कि प्राचीन काल से अब तक नगर केंद्रित सभ्यताओं का आधार किसी ना किसी तरह कृषि उत्पादको शोषण से प्राप्त अधिशेष ही रहा है।"[3] यहाँ किसानों से तात्पर्य उन छोटे किसानों से जिसके पास पांच एकड़ से भी कम जमीन होती है। और अपनी छोटी जात ऊपर परिवार श्रम और अपेक्षा गत छोटे उपकरणों से काम करते हैं।

विकसित देश अपने किसानों को अधिक से अधिक सब्सिडी मुहैया करा रहे हैं जबकि विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी संस्थाएँ तीसरी दुनिया के देशों को उनकी सरकारों द्वारा किसानों को दी जा रही सब्सिडी कम करने का दबाव बनाती हैं। "अमेरिका अपने किसानों को 32 डॉलर प्रति हेक्टेयर की दर से सब्सिडी दे रहा है, जापान 35 डॉलर, चीन 30 डॉलर जबकि भारत अपने किसानों को 14 डॉलर प्रति हेक्टेयर सब्सिडी दे रहा है।"[4] यानी कि विकसित देश अपने किसानों को भारत की तुलना में दुगुना से भी ज्यादा सब्सिडी दे रहे हैं। अब सोचने वाली बात यह है कि भारतीय कृषि इन विकसित देशों की तुलना में पहले से ही पिछड़ी हुई है और ऊपर से सब्सिडी भी कम मिल रही है। ऐसी स्थिति में विश्व बाजार स्तर पर भारतीय किसान इन देशों के किसानों से कैसे बराबरी कर पाएंगे। साठ के दशक में शुरू हुई हरित क्रांति अन्न के रूप में भारत को आत्मनिर्भर बना तो दिया किन्तु बाद के वर्षों में उसकी चमक फीकी पड़ गई। अत्यधिक रसायनों के उपयोग के कारण जमीनें भी अपनी उर्वरता खोने लगीं, भूजल के स्तर में भयंकर गिरावट आई। जल और जमीन जहरीले हो गए जिसके कारण खाद्यान्नों की गुणवत्ता और मानव स्वास्थ्य पर बहुत नकारात्मक प्रभाव पड़ा। जिस पंजाब और हरियाणा में हरित क्रांति सबसे ज्यादा सफल रही उसी जगह कैंसर से लोग ज्यादा पीड़ित हो रहे हैं। इसके पीछे का कारण अत्यधिक कीटनाशक दवाओं और रासायनिकों का प्रयोग है। "निस्संदेह हरित क्रांति के कुछ वर्षो के लिए खाद्यान्नों की पैदावार बहुत बढ़ गई थी। लेकिन इसने हमारी सदियों से आजमाई परंपरागत कृषि प्रणाली पर दूरगामी नकारात्मक प्रभाव छोड़ा है। नई आयातित कृषि प्रणाली ने कृषि रसायनों के अंधाधुंध उपयोग और सिंचाई की अनिवार्यता से हमारी कृषि संस्कृति में आमूल-चूल परिवर्तन किया। संकर बीजों के प्रवेश ने सदियों से किसानों द्वारा विकसित स्थानीय बीजों का स्थान ले लिया।"[5]

1991 की नई आर्थिक नीति के आविर्भाव के बाद से विश्व व्यापार संगठन ने 1995 में स्थापना के साथ ही कृषि क्षेत्र में नीतियां बनाने के लिए दबाव बनाया। कृषि क्षेत्र में नीतियां बनाने का दबाव बनाया इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि और कृषि साख में गिरावट के कारण भारतीय किसानों के ऊपर कर्ज का दबाव बढ़ गया। जिसने किसानों को आत्महत्या के लिए मजबूर किया। वर्तमान समय में तो ऐसी कृषि व्यवस्था है जहां कृषि को आत्महत्या का प्रतीक कहा जाने लगा है। ली कुन्घई की आत्महत्या हजारों किसान भाइयों की हत्या का प्रतीक है। वंदना शिवा ने किसानों की आत्महत्या के पीछे दो प्रमुख कारण माने हैं- प्रथम यह कि बीज पर कंपनियों का नियंत्रण हो गया और द्वितीय विश्व व्यापार संगठन की मुक्त व्यापार नीति।" शिव के अनुसार, "भारत में बीजों की बढ़ती कीमतों के कारण कई किसान कर्ज में डूब गए हैं और आत्महत्या की ओर बढ़ रहे हैं"। बीजों पर एकाधिकार का निर्माण, विकल्पों का विनाश, रॉयल्टी के रूप में अत्यधिक लाभ का संग्रह और एकल-कृषि की बढ़ती भेद्यता ने कर्ज, आत्महत्या और कृषि संकट के लिए एक संदर्भ तैयार किया है।

भारत सरकार के आंकड़ों के अनुसार, लगभग 75 प्रतिशत ग्रामीण ऋण खरीदे गए बीज के कारण है। शिव का दावा है कि "जीएमओ निगम के मुनाफे के बढ़ने के साथ ही किसानों का कर्ज भी बढ़ता है। शिव के अनुसार, यह इस प्रणाली

का अर्थ में है कि जीएम बीज आत्महत्या के लिए हैं। अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्थान (आईएफपीआरआई) ने दो बार अकादमिक लेखों और सरकारी आंकड़ों का विश्लेषण किया और निष्कर्ष निकाला कि किसानों की आत्महत्या में कमी आई है और इसके "पुनरुत्थान" का कोई सबूत नहीं है"।[6]

कृषि विशेषग देवेंद्र शर्मा के अनुसार-"हमारी सरकार का मानना है कि रिटेल में एफडीआई के आने से कृषि व्यवस्था व कृषक जीवन में सुधार होगा। किसानों की आमदनी बढ़ेगी, बिचौलिए खत्म होंगे, उपभोक्ताओं का कम कीमत में समान मिलेगा, साथ ही कृषि उपज की आपूर्ति में होने वाली बर्बादी पर अंकुश लगेगा।" लेकिन यह आंकड़ा अवास्तविक प्रतीत होता है। वैसे तो वालमार्ट खुद एक बड़ा मध्यस्थ है। 50 वर्ष पूर्व सयुक्त राज्य अमेरिका से इसी वालमार्ट की वजह से बड़ी संख्या में किसान गायब हो गये थे। निर्धनता चरम पर गई व भुखमरी ने डेढ़ दशक का रिकॉर्ड तोड़ दिया। युएसए द्वारा अधिक मात्रा में किसानों को आर्थिक सहायता देने पर भी यह दशा है तो ना के बराबर आर्थिक सहायता वाले भारत देश के किसानों की दशा का अंदाजा लगाया जा सकता है।

वर्तमान स्थिति यह है कि लगभग 15-16 पूंजीपति घराने संपूर्ण विश्व को चला रहे प्रतीत होते हैं। जिनमें सबसे अधिक संयुक्त राज्य अमेरिका से हैं। उनका सौभाग्य अथवा रणनीति कहा जाए तो विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन जैसी अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं भी अमेरिका में ही है। उनके निर्णय अमेरिका के आदेशों पर संचालित होते हैं फिर किसी भी राष्ट्र की उनसे टकराने की हिम्मत कहां बनती है। विश्व व्यापार संगठन की बात की जाए तो उसके तीन ऐसे प्रमुख दस्तावेज हैं जिनका सीधा संबंध कृषि से है।

प्रथम समझौता 'व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार समझौता' अथवा ट्रिप्स

दूसरा समझौता 'स्वच्छता एवं वानस्पतिक स्वच्छता समझौता' अथवा एस. पी. एस. ए.

तीसरा समझौता 'कृषि पर समझौता' अथवा ए. ओ. ए.

प्रथम समझौता : प्रथम समझोते के तहत बीजों को बौद्धिक संपदा घोषित कर दिया गया तथा उनके आदान-प्रदान पर रोक लगा दी गई। पेटेंट की व्यवस्था भी की गई जिसका फायदा उठाकर बहुराष्ट्रीय कंपनियां जैसे मोसिंटो तथा सिजेंटा दुनिया भर में बीजों पर एकाधिकार पाने में कामयाब रही है। इन कंपनियों का प्रमुख उद्देश्य परंपरागत खेती को नष्ट करना और हर वर्ष किसानों को नए बीज खरीदने के लिए बाजार का हिस्सा होने के लिए बाध्य करना और इसी बीच इनका लक्ष्य "बीज बाजार" पर एकाधिकार स्थापित करना था।

दूसरा समझौता : दूसरे समझौते के अनुसार वैश्विक स्तर पर खाद्यान्न गुणवत्ता के अंतरराष्ट्रीय मापदंड़ो को लागू करके देशीय उत्पादन के तौर तरीकों पर सीधा वार करना है। परंपरागत देशी खाद्यानों को बाजार से बाहर करके चमचमाती कंपनियां के चमकते खाद्यान्नों के लिए बाजार उपलब्ध कराना है। हालांकि विशेषज्ञों की चेतावनी के बावजूद भी जैव तकनीकी से विकसित सब्जियों और फलों को बाजार में लाने की तैयारी चल रही है। यही कारण है कि पिछले दशक में भारतवर्ष में हजारों तेल मीलें और ग्रामीण उद्योग नष्ट हो गए हैं। लाखों लोग बेरोजगार हो रहे हैं। अब मालूम होता है कि अगला निशाना ठेलों और ढ़ाबों आदि पर होगा तथा पारंपरिक खाद्य सामग्री बनाकर अपना जीवन निर्वाह करने वाले गरीबों पर। परिणाम यह होगा कि संपूर्ण बाजार पर केंटुकी व मैकडॉनल्ड जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियां का आधिपत्य स्थापित हो जाएगा। बड़े आश्चर्य की बात है कि भारतवर्ष में बनने वाली योजनाएं भारत के ग्रामीण परिवेश में पहुंचने से पहले ही धराशाही हो जाती है जबकि विदेशों से संचालित होने वाली योजनाएं भारतवर्ष में गांव की गली-गली में घुसती जा रही हैं बड़े शहर की तो बात ही छोड़िए।

तीसरा समझौता : तीसरे और सबसे मुख्य समझौता है, "कृषि पर समझौता" इसकी बात की जाए तो इसके प्रमुख तीन अंग है– प्रथमः व्यापार उदारीकरण, द्वितीयः आयात उदारीकरण, तृतीयः घरेलू सब्सिडी में कटौती यहाँ व्यापार उदारीकरण से अभिप्राय कल्याणकारी राज्य के नाम पर कृषकों के प्रति बरती जा रही सारी उदारताओं को खत्म करके पूर्ण कृषि व्यवस्था को बाजार के हाथों में सौंप देना। इसी कृषि समझौते की मेहरबानी है कि वर्तमान समय में आयात उदारीकरण के अंतर्गत विकसित देशों से आने वाले पदार्थ पर से आयात शुल्क और आयात प्रतिबंध हटाने का एक समझौता किया गया है। भारत

द्वारा इन समझौतों को मानना, यह संपूर्ण समर्पण से कम नहीं है। वहीं घरेलू सब्सिडी की बात की जाए तो इसमें कटौती करके किसानों को खाद, तेल, बीज, सिंचाई हेतु जल और न्यूनतम समर्थन मूल्य के निर्धारण के रूप में मिलने वाले आर्थिक सहायता को बाजार के स्वतंत्र संचालन में अवरोधक मानकर खत्म करने पर जोर दिया गया है।

इन तीनों समझौतों की वजह से किसानों की स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गई है। समाज के हर हिस्से में चोरी, हत्या और बेरोजगारी का तांडव चल रहा है, जिसे रोकने की सारी कोशिशें विफल होती दिख रही है और समस्याओ का ये तांडव रुकने का नाम नहीं ले रहा है। यही वह दौर है जहां लगातार किसान आत्महत्या का दौर थमने का नाम नहीं ले रहा है। अब किसान आंदोलन करने की स्थिति में नहीं रहा है तो आत्महत्या से ही वह प्रतिरोध जता रहा है। विगत दिनों के आंकड़ों के अनुसार एक तरफ देश में लोग भूख से मर रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ 670 लाख टन खाद्यान्न बर्बाद हो गया है।

एक सरकारी अध्ययन के अनुसार “ब्रिटेन के कुल उत्पादन के बराबर भारत में अनाज बर्बाद हो जाता है। खाद्य पदार्थों की जितनी बर्बादी भारतवर्ष में प्रतिवर्ष हो रही है उससे पूरे बिहार की आबादी को एक साल तक खाना खिलाया जा सकता है।” भारत सरकार के ‘सेंट्रल इंस्टीट्यूट आफ पोस्ट हार्वेस्टिंग इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी’ के एक अध्ययन के अनुसार “उचित भंडारण की कमी ने खाद्यान्न की बर्बादी को बढ़ाया है जिससे एक तरफ महंगाई बढ़ी है वहीं दूसरी तरफ किसानों को लाभ तो दूर की बात लागत भी वसूलनी मुश्किल हो रही है। देश के कुछ राज्यों जैसे महाराष्ट्र, पंजाब और गुजरात में किसानों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं की खबरें लगातार बनी हुई है।” संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार, “पूरी दुनिया में कुल खाद्यान्न उत्पादन एक तिहाई हिस्सा बर्बाद होता है जो समूची विश्व व्यवस्था का 750 अरब अमेरिकी डॉलर है।” रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि भारत और चीन विशेष रूप से इसके लिए भागीदार है। वहीं यह भी कहा गया कि विश्व स्तर पर सबसे अधिक भुखमरी से ग्रस्त आबादी अफ्रीका और भारत में है।

निष्कर्ष

वैश्वीकरण के इस दौर में कृषि एक संस्कृति से उद्योग में बदल गई। महंगे बीज, महंगे खाद को बेचने वाले शख्स, सशक्त ग्लोबल कॉर्पोरेट ने किसान को एक आत्मनिर्भर, उत्पादक से परास्त एवं विकल्पहीन बना दिया है। अतः हम कह सकते हैं कि सारे विश्व को एक सा करने की प्रक्रिया पष्टीकरण है जहाँ महंगे मकान और कारों के लिए सस्ते करदो दिए जाते हैं और किसानों को भारी सूद पर लिए कर न चुकाने पर आत्महत्या का रास्ता अपनाना पड़ता हो। ऐसे हालात? काम बदलना ही विकास का रास्ता तय करेंगे।

संदर्भ सूची

1) कमल नयन काबरा, भूमंडलीकरण विचार नीतियां और विकल्प, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2005
2) अमित कुमार सिंह, भूमंडलीकरण और भारत परिदृश्य और विकल्प, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ संख्या 33
3) सच्चिदानंद सिन्हा, भूमंडलीकरण की चुनौतियां, वाणी प्रकाशन, 2005, पृष्ठ क्रमांक 123
4) जागरूक जी, पंजाब का कृषि क्षेत्र बदलती जमीनी हकीकत और संघर्ष पा निशाना, पंजाब समकालीन चुनौतियों और संघर्ष, राजकमल प्रकाशन, 2020, पृष्ठ संख्या 7
5) सुभाष चन्द्र कुशवाहा अतिथि संपादक, कुरुक्षेत्र मासिक पत्रिका पृष्ठ संख्या 61
6) भारत में बीटी कपास और किसान आत्महत्या साक्ष्य की समीक्षा, अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीती अनुसंधान संस्थान, 2008 सार पृष्ठ क्रमांक 271

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦਾ ਬਦਲਦਾ ਸਰੂਪ (ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੌਟ ਪੁੱਤਰਾ) ਕਹਾਣੀ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿੱਚ

*ਯੋਗਿਤਾ ਚੰਦੇਲ(ਖੋਜਾਰਥਨ)

ਦੇਸ਼ ਭਗਤ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਮੰਡੀ ਗੋਬਿੰਦਗੜ੍ਹ

ਰੋਲ ਨੰ.20380171001

**ਡਾ.ਗੁਰਵਿੰਦਰ ਕੌਰ (ਨਿਗਰਾਨ)

ਰਿਸ਼ਤੇ: ਭਾਵ, ਵਿਅਕਤੀਆਂ ਵਿਚਕਾਰ ਲਗਾਵ, ਸੰਬੰਧ ਜਾਂ ਸੰਪਰਕ ਤੋਂ ਲਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਵਿਅਕਤੀਆਂ ਦਾ ਆਪਸੀ ਲਗਾਵ ਅਤੇ ਆਪਸੀ ਖਿੱਚ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਰਿਸ਼ਤਾ ਇਕ ਅਜਿਹਾ ਮਾਨਵੀ ਵਰਤਾਰਾ ਹੈ ਜੋ ਇੱਕੋ ਕਬੀਲੇ ਵਿੱਚ ਜਨਮ ਲੈਣ ਜਾਂ ਵਿਆਹ ਆਦਿ ਕਾਰਨ ਨਾਲ਼ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਕੁਝ ਰਿਸ਼ਤੇ ਇਨਸਾਨ ਦੇ ਪੈਦਾ ਹੁੰਦੇ ਹੀ ਬਣ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਕੁਝ ਰਿਸ਼ਤੇ ਅਜਿਹੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਵਿਅਕਤੀ ਆਪਣੀ ਸਮਝ ਅਤੇ ਲੋੜਾਂ ਦੇ ਆਧਾਰ 'ਤੇ ਬਣਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਕੁਝ ਰਿਸ਼ਤੇ ਸਰੀਰਕ ਖਿੱਚ ਅਤੇ ਲੋੜਾਂ 'ਤੇ ਆਧਾਰਿਤ ਹੁੰਦੇ ਹਨ, ਜਦੋਂ ਕਿ ਕੁਝ ਆਦਰਸ਼ਵਾਦੀ ਅਤੇ ਭਾਵਨਾਤਮਕ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਇਸਲਈ ਰਿਸ਼ਤਾ ਨਾਤਾ ਪਰਬੰਧ ਸਮਾਜ ਦਾ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਅੰਗ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਕੁਝ ਰਿਸ਼ਤੇ ਕੁਦਰਤ ਵਲੋਂ ਜਨਮ ਤੋਂ ਨੀ ਮਿਲਦੇ ਹਨ ਤੇ ਕੁਝ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਮਨੁੱਖ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਰਹਿੰਦਿਆਂ ਆਪ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਜਿਹੜੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਕੁਦਰਤੀ ਤੌਰ ਤੇ ਜਮਾਂਦਰੂ ਹੀ ਮਿਲਦੇ ਹਨ, ਉਹ ਉਸਦੇ ਪਰਿਵਾਰਕ ਜਾਂ ਖੂਨ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਖੂਨ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਨਾਲ਼ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਨਹੁੰ – ਮਾਸ ਦਾ ਸੰਬੰਧ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿਚ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਨੂੰ ਦੋ ਸ਼੍ਰੇਣੀਆਂ ਵਿਚ ਵੰਡਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਵਿਆਹ ਦੁਆਰਾ ਸਿਰਜੇ ਗਏ ਰਿਸ਼ਤੇ ਅਤੇ ਖੂਨ ਦੁਆਰਾ ਸੰਬੰਧਤ ਰਿਸ਼ਤੇ । ਇਸ ਸੰਬੰਧ ਵਿਚ ਭੁਪਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਖਹਿਰਾ ਆਪਣੀ ਕਿਤਾਬ "ਲੋਕਧਾਰਾ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰ" ਵਿਚ ਲਿਖਦੇ ਹਨ : "ਵਿਆਹ ਦੁਆਰਾ ਸਿਰਜੇ ਗਏ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਨੂੰ ਸ਼ਕਿਰੀ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ । ਖੂਨ ਦੁਆਰਾ ਸੰਬੰਧਤ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੇ ਪਸਾਰ ਨੂੰ ਸਰੀਕਾ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਸ਼ਰੀਕ ਆਮ ਤੌਰ ਤੇ ਪਿੰਡਾਂ ਵਿਚ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਸਕੀਰੀਆਂ ਦੂਸਰੇ ਪਿੰਡਾ ਵਿਚ ਅਤੇ ਦੂਸਰੇ ਗੋਤਾਂ ਵਿਚ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ"।[1]

ਮੂਲ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਤਾਂ ਕਿਸੇ ਸਮਾਜ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਰਿਸ਼ਤਾ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਦੀ ਬੁਨਿਆਦ ਪਰਿਵਾਰ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਸਮਾਜ ਦਾ ਅਨਿੱਖੜਵਾਂ ਅੰਗ ਹੋਣ ਸਦਕਾ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਕਈ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਨਾਲ਼ ਜੁੜਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਪਰਿਵਾਰ ਵਿਚ ਉਹੋ ਪਤੀ – ਪਤਨੀ, ਪਿਓ-ਪੁੱਤਰ, ਮਾਂ- ਧੀ, ਭੈਣ-ਭਰਾ ਆਦਿ ਕਈ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਨਾਲ਼ ਜੁੜਿਆ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਭਾਰਤੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚ ਜਿਹੜੀ ਰਿਸ਼ਤਾ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਮੌਜੂਦ ਹੈ, ਉਹ ਪੱਛਮੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਤੇ ਬਾਹਰਲੇ ਹੋਰ ਮੁਲਕਾਂ ਦੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰਾਂ ਵਿਚ ਦੇਖਣ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦੀ।

ਵੈਦਿਕ ਕਾਲ ਤੋਂ ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਸਾਂਝੇ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀ ਪ੍ਰਥਾ ਪ੍ਰਚਲਿਤ ਹੋਣ ਦੇ ਵੀ ਪ੍ਰਮਾਣ ਮਿਲਦੇ ਹਨ। ਪਰ ਹੁਣ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਸਦਕਾ ਸਾਂਝੇ ਪਰਿਵਾਰਾਂ ਦੀ ਪਰੰਪਰਾ ਖ਼ਤਮ ਹੁੰਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਪਹਿਲਾਂ ਪਰਿਵਾਰ ਪਿਤਾ ਪੁਰਖੀ ਧਾਰਨਾ ਅਨੁਸਾਰ ਚਲਦੇ ਸੀ, ਜਿਸ ਵਿਚ ਪਰਿਵਾਰ ਦਾ ਮੁਖੀਆ ਪਰਿਵਾਰ ਦੇ ਸੱਭ ਤੋਂ ਸਿਆਣੇ ਜਾ ਬਜ਼ੁਰਗ ਬੰਦੇ ਨੂੰ ਮੰਨਿਆ ਜਾਂਦਾ ਸੀ। ਭਾਰਤੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਜਾਂ ਪੰਜਾਬੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚਲੀ ਰਿਸ਼ਤਾ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਵਿਸ਼ਾਲ ਘੇਰੇ ਵਿੱਚ ਫੈਲੀ ਹੋਈ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚ ਰਿਸ਼ਤਾ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਵਿੱਚ ਹਰ ਰਿਸ਼ਤੇ ਲਈ ਇੱਕ ਵੱਖਰਾ ਸੰਕਲਪ ਹੈ, ਜਿਹੜਾ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿੱਚਲੇ ਆਪਸੀ ਮੋਹ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦਾ ਸੁਭਾਅ ਪੱਛਮੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚ ਵੇਖਣ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਮਿਲਦਾ ਉੱਥੇ ਮਨੁੱਖੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦਾ ਦਾਇਰਾ ਸੰਕੁਚਿਤ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਸੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿੱਚ ਜੇਕਰ ਪੱਛਮੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰੀਏ ਤਾਂ ਪਤਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ, ਕਿ ਉੱਥੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਲਈ ਦੋ ਹੀ ਮੁੱਖ ਸੰਕਲਪ ਮੌਜੂਦ ਹਨ । ਅੰਕਲ ਅਤੇ ਆਂਟ ਪਰੰਤੂ ਭਾਰਤੀ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਗਿਣਤੀ ਪੱਖੋਂ ਅਨੇਕਾਂ ਹੀ ਰਿਸ਼ਤੇ ਗਿਣਾਏ ਜਾ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਜਿਵੇਂ :- ਭੂਆ ਫੁੱਫੜ, ਮਾਮਾ- ਮਾਮੀ,ਚਾਚਾ- ਚਾਚੀ, ਤਾਇਆ – ਤਾਈ, ਭੈਣ- ਭਰਾ, ਦਿਓਰ, ਜੇਠ, ਮਾਸੀ-ਮਾਸੜ ਆਦਿ। ਮੁੱਖ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਭਾਰਤੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਵਿੱਚ ਪੰਜ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤੇ – ਨਾਤੇ ਵੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲਦੇ ਹਨ। ਖੂਨ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤੇ,ਪਰਿਵਾਰਕ ਰਿਸ਼ਤੇ,ਪ੍ਰੋਹਣਾਚਾਰੀ ਜਾ

ਭਾਵਨਾਤਮਕ ਰਿਸ਼ਤੇ, ਵਿਆਹ ਹੋਣ ਉਪਰੰਤ ਸਿਰਜੇ ਰਿਸ਼ਤੇ, ਅਪ੍ਰਵਾਨਿਤ ਰਿਸ਼ਤੇ। ਪਰੰਤੂ ਪੱਛਮੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਸਦਕਾ ਅਤੇ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਸਦਕਾ ਇਹ ਰਿਸ਼ਤਾ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਅੱਜ ਟੁੱਟਦੀ ਵੇਖੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਸੋਚ ਦਾ ਧਾਰਨੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਨਿੱਘੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿੱਚ ਵੀ ਖਲਾਅ ਆ ਚੁੱਕਿਆ ਹੈ। ਜਿਸ ਸਦਕਾ ਮਨੁੱਖ ਇਕੱਲਤਾ ਦਾ ਸੰਤਾਪ ਹੰਢਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਅਸੀਂ ਅਜੋਕੇ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਬਦਲਦੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੇ ਸਰੂਪ ਨੂੰ ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਦੀ ਕਹਾਣੀ "ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੌਟ ਪੁੱਤਰਾ" ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ ਵਾਚਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰਾਂਗੇ। ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਦੀ ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਇੱਕ ਘਰ ਦੀ ਗੱਲ ਨਾ ਕਰਕੇ ਸਮੁੱਚੇ ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਈਚਾਰੇ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦੀ ਹੈ।

ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਮਾਨਵ ਦੀ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਪ੍ਰਵਿਰਤੀ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਕੀ, ਕਿਵੇਂ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਉੱਪਰ ਉਸਦੇ ਨਾ ਚਾਹੁੰਦਿਆਂ ਵੀ ਇਸ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤੀ ਕਰਕੇ ਹੀ ਨਿੱਜੀ ਰਿਸ਼ਤੇ ਤਾਰ-ਤਾਰ ਹੁੰਦੇ ਵੇਖੇ ਜਾ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਮਾਂ-ਪਿਓ, ਭੈਣ-ਭਰਾ ਵਰਗੇ ਚੰਗੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਵੀ ਅੱਜ ਟੁੱਟਦੇ ਵੇਖੇ ਜਾ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਅਜੋਕੇ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਸਦਕਾ ਮਾਨਵੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿੱਚ ਇੱਕ ਖਲਾਅ ਪੈਦਾ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ। ਪੈਸਾ ਕਮਾਉਣ ਤੇ ਪਦਾਰਥਕ ਸੁੱਖਾਂ ਨਾਲ ਲਬਰੇਜ਼ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਜਿਉਣ ਦੀ ਹੋੜ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਨਿੱਜੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਤੋਂ ਬੇਮੁੱਖ ਹੁੰਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਦੀ ਕਹਾਣੀ "ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੈਟ ਪੁੱਤਰਾ" ਸਮਕਾਲੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਇਸੇ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਸਾਡੇ ਅਜੋਕੇ ਸਮਾਜ ਦੀ ਇਹ ਵਿਡੰਬਨਾ ਕਹੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ, ਕਿ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਬਹੁਤਾ ਧਿਆਨ ਸੁੱਖ – ਸੁਵਿਧਾਵਾਂ ਦੀ ਚੀਜਾਂ ਇਕੱਠਾ ਕਰਨ ਵੱਲ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ।

ਅੱਜ ਦੀ ਨਵੀਂ ਪੀੜੀ ਸੁੱਖ-ਸੁਵਿਧਾਵਾਂ ਦੀ ਚੀਜ਼ਾਂ ਇਕੱਤਰ ਕਰਨ ਕਰਕੇ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਅਸਲੀ ਰੁਮਾਂਸ ਤੇ ਆਨੰਦ ਤੋਂ ਵਾਂਝੀ ਹੁੰਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਵਿਦੇਸ਼ ਵਿੱਚ ਗਏ ਪੁੱਤਰ ਕੋਲ ਆਪਣੇ ਮਾਪਿਆਂ ਨੂੰ ਮਿਲਣ ਦਾ ਸਮਾਂ ਨਹੀਂ ਹੈ, ਸਗੋਂ ਉਸ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਪੈਸਾ ਕਮਾਉਣ ਦੇ ਚੱਕਰ ਵਿਚ ਰੋਬਟ ਮਸ਼ੀਨ ਵਰਗੀ ਬਣ ਚੁੱਕੀ ਹੈ। ਆਪਣੇ ਮਾਪਿਆਂ ਲਈ ਉਹ ਬਾਜ਼ਾਰ ਦੀਆਂ ਅਨੇਕਾਂ ਵਸਤਾਂ ਤਾਂ ਜ਼ਰੂਰ ਭੇਜਦੇ ਹਨ, ਪਰ ਉਸਦੇ ਬਜ਼ੁਰਗ ਮਾਂ-ਪਿਓ ਉੱਸ ਤੋਂ ਬਗੈਰ ਇਕੱਲਤਾ ਦਾ ਸੰਤਾਪ ਹੰਢਾ ਰਹੇ ਹਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਲਈ ਇਨ੍ਹਾਂ ਬਾਜ਼ਾਰੀ ਵਸਤੂਆਂ ਦੀ ਥਾਂ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਅਹਿਮੀਅਤ ਵੱਧ ਹੈ। ਪੁਰਾਣੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਨਿੱਜਤਾ ਅਤੇ ਸੰਵੇਦਨਾ ਨੂੰ ਚੰਗੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਮਾਨਣ ਵਾਲੀ ਹੈ। ਅੱਜ ਦੀ ਭੱਜ-ਨੱਠ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਵਿੱਚ ਬੱਚਿਆਂ ਦੀ ਕੜੀ ਮਿਹਨਤ ਕਰਕੇ ਮਾਪਿਆਂ ਕੋਲ ਬਾਜ਼ਾਰ ਦੀਆਂ ਵਸਤੂਆਂ ਤਾਂ ਮੌਜੂਦ ਹਨ,ਪਰ ਵੱਸਤਾਂ ਸਦੀਵੀ ਆਨੰਦ ਤੋਂ ਵਾਂਝੀਆਂ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ। ਮੈਂ ਮੂਲਕ ਬਿਰਤਾਂਤ ਵਿਧਾ ਤਹਿਤ ਲਿਖੀ ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਦਾ ਪਾਤਰ ਮੁੱਖ ਪਿਤਾ ਆਖਦਾ ਹੈ:-

"ਏ.ਸੀ.,ਐਲ.ਸੀ.ਡੀ. ਫਰਿੱਜ, ਮਾਈਕਰੋਵੇਵ, ਬੇਟੇ ਨਾਲ ਵੀਡੀਓ ਕਾਲ ਕਰਨ ਲਈ ਸਮਾਰਟ ਫੋਨ, ਲੈਪਟੋਪ ਅਜਿਹੀਆਂ ਹੋਰ ਵੀ ਢੇਰਾਂ ਚੀਜ਼ਾਂ ਨਾਲ ਘਿਰੇ ਅਸੀਂ ਉਸ ਪਲ ਨੂੰ ਤਰਸਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਾਂ, ਜੋ ਸਾਨੂੰ ਖੁਸ਼ੀ, ਜੋਸ਼ ਅਤੇ ਉਮੰਗ ਨਾਲ ਭਰ ਦੇਵੇ। ਕੁਝ ਪਲਾਂ ਲਈ ਹੀ ਸਹੀ ਸਾਨੂੰ ਕੱਢੇ ਇਸ ਠਹਿਰੀ ਹੋਈ ਰੁਟੀਨ ਚੋਂ।"[2]

ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਡਾ ਦੁਖਾਂਤ ਏਹੀ ਹੈ, ਕਿ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿੱਚ ਉੱਨਤੀ ਕਰਨ ਲਈ ਮਨੁੱਖ ਬਾਹਰਲੇ ਦੇਸ਼ਾਂ ਵੱਲ ਰੁੱਖ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ, ਤੇ ਮਾਂ-ਪਿਓ ਵੀ ਪੱਛਮੀਵਾਦ ਦੀ ਚਕਾਚੌਂਧ ਕਰਕੇ ਇਕਲੌਤੀ ਸੰਤਾਨ ਨੂੰ ਵੀ ਬਾਹਰਲੇ ਮੂਲਕ ਵਿੱਚ ਭੇਜਣ ਨੂੰ ਤਿਆਰ ਹੈ। ਪਰ ਧਿਆਨ ਨਾਲ ਵੇਖਿਆਂ ਇਸ ਪਿੱਛੇ ਸਾਡੇ ਦੇਸ਼ ਵਿਚ ਵੱਧ ਰਹੀ ਬੇਰੁਜ਼ਗਾਰੀ ਇੱਕ ਵੱਡਾ ਕਾਰਣ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੀ ਹੈ। ਜਿਸਦੇ ਚਲਦਿਆਂ ਮਾਪਿਆਂ ਨੂੰ ਮਜ਼ਬੂਰਨ ਆਪਣੇ ਬੱਚਿਆਂ ਨੂੰ ਵਿਦੇਸ਼ ਤੋਰਨਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਲਈ ਯੁਵਾ ਪੀੜ੍ਹੀ ਹਰ ਤਰੀਕੇ ਦਾ ਸਮਝੌਤਾ ਕਰਨ ਲਈ ਤਿਆਰ-ਬਰ-ਤਿਆਰ ਹੈ। ਪਰੰਤੂ ਉੱਥੇ ਕੁਝ ਵਰ੍ਹਿਆਂ ਦਾ ਸਮਾਂ ਬਿਤਾਉਣ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਪੱਛਮੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ, ਰਹਿਣ – ਸਹਿਣ ਉੱਚਾ ਪਦਾਰਥਕ ਜੀਵਨ ਪੱਧਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੇ ਅਪਣਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਜਮਾਉਣਾ ਆਰੰਭ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਪ੍ਰਭਾਵ ਸਦਕਾ ਭਾਰਤੀ ਨੌਜਵਾਨ ਆਪਣੇ ਭਾਰਤੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਦੀਆਂ ਕਦਰਾਂ ਕੀਮਤਾਂ ਤੋਂ ਬੇਮੁਖ ਹੋ ਰਹੇ ਹਨ। ਕਹਾਣੀ ਦੇ ਪਾਤਰ ਦਾ ਇਕਲੌਤਾ ਪੁੱਤਰ ਜੋ ਕਿ ਬਾਹਰਲੇ ਦੇਸ਼ ਵਿੱਚ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਪੈਸਾ ਕਮਾਉਣ ਦੀ ਹੋੜ ਵਿੱਚ ਮਾਂ-ਪਿਉ ਵਰਗੇ ਨਿੱਘੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਨੂੰ ਅਣਦੇਖਾ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਮਾਂ-ਪਿਓ ਵਰਗਾ ਰਿਸ਼ਤਾ ਵੀ ਔਲਾਦ ਲਈ ਅੱਜ ਰਸ਼ਮੀ ਹੋ ਗਿਆ ਜਾਪਦਾ ਹੈ। ਵਿਗਿਆਨਕ ਯੁੱਗ ਵਿੱਚ ਜਿੱਥੇ ਮਨੁੱਖ ਬਹੁਤ ਤਰੱਕੀ ਕਰ ਗਿਆ ਹੈ, ਉੱਥੇ ਵਹਤੁਵਾਦੀ ਸੋਚ ਕਰਕੇ ਨਵੀਂ ਪੀੜੀ ਕੋਲ ਸੁੱਖ-ਦੁੱਖ ਸਾਂਝੇ ਕਰਨ ਦਾ ਸਮਾਂ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਦੌਰ ਵਿੱਚ ਔਲਾਦ ਮਾਂ-ਪਿਓ ਦੇ ਪ੍ਰਤੀ ਫਰਜ਼ਾਂ ਤੋਂ ਬੇਮੁਖ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ, ਤੇ ਸੁੱਖ- ਦੁੱਖ ਵਿੱਚ ਕੁੱਖੋਂ ਜੰਮੀ ਔਲਾਦ ਫੋਨ ਜਾਂ ਵੀਡੀਓ ਕਾਲ ਕਰਕੇ ਸੰਖੇਪ ਵਿੱਚ ਗੱਲਬਾਤ ਕਰਦੇ ਰਸ਼ਮੀ ਜਿਹਾ ਰਿਸ਼ਤਾ ਨਿਭਾ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਦੌਲਤ ਤੇ ਸ਼ੋਹਰਤ ਕਮਾਉਣ ਦੀ ਲਾਲਸਾ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਅੰਦਰੋਂ ਰਿਸ਼ਤਿਆ ਦੀ ਸੰਵੇਦਨਾ ਨੂੰ ਖ਼ਤਮ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ ਮਨੁੱਖ ਚਲਦੀ – ਫਿਰਦੀ

ਰੋਬੋਟ ਮਸ਼ੀਨ ਵਾਂਗੂੰ ਹਰ ਰੋਜ਼ ਦੇ ਕਾਰਜ ਤਾਂ ਕਰਦਾ ਹੈ ਪਰ ਉਸਦੇ ਹਿਰਦੇ ਵਿੱਚੋਂ ਮਾਨਵੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਖ਼ਤਮ ਹੋ ਗਈਆਂ ਹਨ। ਕਹਾਣੀ ਦੇ ਮੁੱਖ ਪਾਤਰ ਦਾ ਇਕੱਲਾ ਪੁੱਤਰ ਇਸੇ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਦੌੜ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੈ। ਉਸ ਕੋਲ ਆਪਣੇ ਮਾਂ-ਪਿਓ ਲਈ ਵੀ ਵਿਹਲ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਪਿਓ ਕੋਲ ਉਸਦਾ ਫ਼ੋਨ ਆਉਂਦਾ ਹੈ, ਕਿ ਉਹ ਭਾਰਤ, ਕੰਪਨੀ ਦੇ ਕਿਸੇ ਕੰਮ ਲਈ ਆ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤਾਂ ਲਗੇ ਹੱਥੀਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਮਿਲ ਕੇ ਜਾਵੇਗਾ ! ਇਹ ਖ਼ਬਰ ਸੁਣਕੇ ਉਸਦੇ ਪਿਓ ਨੂੰ ਲਗਦਾ ਹੈ, ਕਿ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਵਰ੍ਹਿਆਂ ਤੋਂ ਖਲੋਈ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਵਿੱਚ ਨਵੀਂ ਬਹਾਰ ਆ ਗਈ ਹੋਵੇ ਜਿਸਨੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਖਲੋਈ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨੂੰ ਇੱਕ ਰਵਾਨਗੀ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤੀ ਹੋਵੇ। ਪਿਓ ਦੇ ਇਹ ਸ਼ਬਦ ਉਸਦੇ ਅੰਦਰਲੇ ਚਾਅ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਉਹ ਆਖਦਾ ਹੈ:

> "ਮੈਨੂੰ ਚਾਅ ਚੜ੍ਹ ਗਿਆ ਹੈ ਪਾਰਕ ਵਿਚ ਕ੍ਰਿਕਟ ਖੇਡ ਰਹੇ ਬੱਚਿਆਂ ਵੱਲ ਦੇਖਿਆ। ਜਿਵੇਂ ਕਿ ਇਹ ਖੁਸ਼ੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨਾਲ ਸਾਂਝੀ ਕਰਨੀ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੋਵਾਂ, ਪਰ ਇਹ ਖੁਸ਼ੀ ਤਾਂ ਮੈਂ ਕਿਸੇ ਖਾਸ ਨਾਲ ਸਾਂਝੀ ਕਰਨੀ ਸੀ"।[3]
>
> "ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਪਲਾਂ ਛਿਣਾ 'ਚ ਹੀ ਕੀ ਹੋ ਗਿਆ ਅੱਜ ਮੈਨੂੰ ਪਾਰਕ ਵਿੱਚ ਖੇਡ ਰਹੇ ਸਾਰੇ ਬੱਚਿਆਂ ਚੋਂ ਕਪਿਲ ਦੇਵ ਤੇ ਸੁਨੀਲ ਗਵਾਸਕਰ ਨਜ਼ਰ ਆ ਰਹੇ ਸੀ"।[4]

ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਆਉਣ ਦੀ ਖੁਸ਼ੀ ਉਸਦਾ ਪਿਓ ਆਪਣੀ ਪਤਨੀ ਨਾਲ ਸਾਂਝਾ ਕਰਦਾ ਹੈ, ਦੋਵਾਂ ਨੂੰ ਚਾਅ ਚੜ੍ਹ ਜਾਂਦਾ ਹੈ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਖੁਸ਼ੀ ਦਾ ਕੋਈ ਟਿਕਾਣਾ ਨਹੀਂ ਰਹਿੰਦਾ। ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਆਉਣ ਦੀ ਖਬਰ ਸੁਣ ਕੇ ਮਾਂ ਪੁੱਤਰ ਲਈ ਵੱਖ – ਵੱਖ ਪਕਵਾਨ ਬਨਾਉਣ ਬਾਰੇ ਸੋਚਣ ਲਗਦੀ ਹੈ। ਉਸਦੀ ਮਮਤਾ ਡੁੱਲ੍ਹ-ਡੁੱਲ੍ਹ ਪੈਂਦੀ ਹੈ। ਪਿਓ ਬਜ਼ਾਰ ਤੋਂ ਸਾਮਾਨ ਲਿਆਉਣ ਲਈ ਲਿਸਟ ਬਣਾਉਣ ਲੱਗਦਾ ਹੈ। ਘਰ ਵਿੱਚ ਖੁਸ਼ੀ ਦਾ ਮਾਹੌਲ ਛਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਵੱਖੋ–ਵੱਖ ਢੰਗ ਦੇ ਖਾਣੇ ਬਣਾਏ ਜਾ ਰਹੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਮਾਂ – ਪਿਓ ਇਨ੍ਹਾਂ ਬੇਸ਼ਕੀਮਤੀ ਪਲਾਂ ਨੂੰ ਖੁੱਲ੍ਹ ਕੇ ਮਾਣ ਰਹੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਪਰ ਅਚੇਤਨ ਪੁੱਤਰ ਦਾ ਘਰ ਨਾ ਆਉਣ ਸੰਬੰਧੀ ਮੈਸੇਜ ਮਾਂ-ਪਿਓ ਤੇ ਬਿਜਲੀ ਵਾਂਗ ਗਿਰਦਾ ਹੈ ਵਰ੍ਹਿਆਂ ਬਾਅਦ ਆਉਣ ਵਾਲੀ ਖੁਸ਼ੀ ਪਲਾਂ ਵਿੱਚ ਹੀ ਉਦਾਸੀ ਵਿੱਚ ਬਾਦਲ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਪੁੱਤਰ ਦੱਸਦਾ ਹੈ:

"ਸ਼ੋਰੀ ਪਾਪਾ! ਇੱਕ ਜ਼ਰੂਰੀ ਕੰਮ ਨਿਕਲ ਆਇਆ! ਆ ਨਹੀਂ ਹੋਣਾ ਮੰਮਾ ਨੂੰ ਦੱਸ ਦੇਣਾ ਪਲੀਜ਼"। [5]

ਮਾਂ – ਪਿਓ ਦੀ ਜਿੰਦਗੀ ਤੋਂ ਚਾਅ ਉਦੋਂ ਛਾਈ- ਮਾਈ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ,ਜਦੋਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਮੁੰਡਾ ਕੰਮ ਦੇ ਰੁਝੇਵਿਆਂ ਕਰਕੇ ਘਰ ਆਉਣ ਤੋਂ ਮਨ੍ਹਾ ਕਰ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਜਿੰਦਗੀ ਦੀ ਭੱਜ-ਨੱਠ ਇੰਨੀ ਵੱਧ ਗਈ ਹੈ ਕਿ ਮਨੁੱਖ ਪੈਸਾ ਕਮਾਉਣ ਦੀ ਮਸ਼ੀਨ ਬਣ ਗਿਆ ਹੈ। ਸ਼ੋਹਰਤ ਦੇ ਨਸ਼ੇ ਦੀ ਚਕਾਚੌਂਧ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਦੀਆਂ ਸੰਵੇਦਨਸ਼ੀਲ ਭਾਵਨਾਂਵਾਂ ਨੂੰ ਖਤਮ ਕਰ ਰੋਬਟ ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਮਨੁੱਖ ਸਿਰਫ਼ ਆਪਣੇ ਨਿੱਜ ਬਾਰੇ ਸੋਚਦਾ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਵਿੱਚ ਮਾਪਿਆਂ ਦੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਦੀ ਕਦਰ ਬੱਚਿਆਂ ਲਈ ਘੱਟਦੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਕਾਮਯਾਬੀ ਤੇ ਧੰਨ ਕਮਾਉਣ ਦੀ ਲਾਲਸਾ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਅੰਨ੍ਹਾ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਇਸਲਈ ਬੱਚੇ ਜਨਮ ਦੇਣ ਵਾਲੇ ਮਾਪਿਆਂ ਨੂੰ ਵੀ ਅਣਗੌਲਿਆਂ ਕਰ ਰਹੇ ਹਨ।ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਜਿੰਦਗੀ ਦੇ ਕਰੂਰ ਸੱਚ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਕਿ ਅੱਜ ਦੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਨਿੱਜੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੇ ਫ਼ਰਜ਼ਾਂ ਤੋਂ ਬੇਮੁੱਖ ਹੋ ਗਈ ਹੈ। ਘਰ ਨਾ ਆਉਣ ਦੀ ਸੂਚਨਾ ਇੱਕ ਮੈਸੇਜ ਰਾਹੀਂ ਦੇਣਾ,ਪੁੱਤਰ ਦਾ ਫ਼ਰਜ਼ਾਂ ਪ੍ਰਤੀ ਬੇਮੁੱਖ ਹੋਣਾ ਹੀ ਦਰਸਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਵਿੱਚ ਪੁਰਾਣੀ ਅਤੇ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਵਿਚਲੇ ਪੀੜ੍ਹੀ – ਪਾੜੇ (Generation Gap) ਨੂੰ ਦਰਸਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ।ਇੱਕ ਪੀੜ੍ਹੀ ਨੱਠ – ਭੱਜ ਵਾਲੀ ਵਿਕਸਿਤ ਜਿੰਦਗੀ ਕਰਕੇ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਤੋਂ ਬੇਮੁੱਖ ਹੋ ਕੇ ਜੀਅ ਰਹੀ ਹੈ। ਦੂਜੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਉਹ ਬਜ਼ੁਰਗ ਪੀੜ੍ਹੀ ਹੈ ਜੋ ਇੱਕ – ਦੂਜੇ ਦੇ ਸੁੱਖਾਂ- ਦੁੱਖਾਂ ਵਿੱਚ ਮੋਢਾ ਲਾ ਖਲੋਂਦੀ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੀ ਹੈ। ਘੱਟ ਪੜ੍ਹੀ – ਲਿੱਖੀ ਇਹ ਪੀੜ੍ਹੀ ਇੱਕ ਦੂਜੇ ਦੀ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਦੀ ਕਦਰ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਘਰ ਨਾ ਆਉਣਾ ਦਾ ਮੈਸੇਜ ਆਪਣੀ ਪਤਨੀ ਤੋਂ ਕੁੱਝ ਸਮਾਂ ਛੁੱਪਾ ਕੇ ਰੱਖਣਾ ਮੁੱਖ ਪਾਤਰ ਦੀ ਮਜ਼ਬੂਰੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਆਪਣੀ ਜੀਵਨ ਸਾਥਣ ਦੀ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਦੀ ਕਦਰ ਕਰਨਾ ਤੇ ਉਸਦੀ ਪਰਵਾਹ ਕਰਣ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਦੋ ਪੀੜ੍ਹੀਆਂ ਦੀ ਸੋਚ ਅਤੇ ਸਮਝ ਨੂੰ ਰੂਪਮਾਨ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਮੈਂ ਪਾਤਰ ਆਪਣੇ ਪਿਓ ਵਾਲੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਨੂੰ ਯਾਦ ਕਰਦਾ ਹੈ, ਕਿ ਅਨਪੜ੍ਹ ਕਹੀ ਜਾਣ ਵਾਲੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਸਾਂਝ ਵਿਚ ਵਿਸ਼ਵਾਸ ਰੱਖਦੀ ਸੀ। ਮੈਂ ਪਾਤਰ ਦਾ ਜਦੋਂ ਵਿਆਹ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਤਾਂ ਮੁੱਖ ਪਾਤਰ ਦਾ ਪਿਤਾ ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਬਿਨ ਬੋਲੇ ਹੀ ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਦਿਲ ਦੀ ਗੱਲ-ਬਾਤ ਸਮਝ ਲੈਂਦਾ ਹੈ, ਤੇ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ :-

"ਯਾਰ ਤੂੰ ਇਉਂ ਕਰ......"

"ਹਾਂ ਜੀ"

"ਬਹੂ ਨੂੰ ਨਾਲ ਈ ਲੈਜਾ"

"ਹਾਂ ਜੀ"

"ਹਾਂ ਜੀ ਕੀ?"

"ਨਹੀਂ ਜੀ,ਮੇਰਾ ਮਤਲਬ

ਮੇਰੇ ਮੂੰਹੋਂ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਕਿਵੇਂ ਹਾਂਜੀ – ਹਾਂਜੀ ਨਿਕਲਦਾ ਜਾ ਰਿਹਾ ਸੀ"।

"ਤੇਰਾ ਮਤਲਬ ਮੈਂ ਸਭ ਸਮਝਦਾ। ਠੀਕ ਐ ਨਾ? ਬਾਪੂ ਵੀ ਬਹੁਤ ਖੁਸ਼ ਨਜ਼ਰ ਆ ਰਿਹਾ ਸੀ ਤੇ ਮੇਰੀ ਖੁਸ਼ੀ ਦਾ ਤਾਂ ਕਹਿਣਾ ਈ ਕੀ ਸੀ"।[6]

ਇਹੀ ਪੁਰਾਣੀ ਤੇ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਵਿਚਲਾ ਫ਼ਰਕ ਸੀ । ਮਾਂ – ਪਿਓ ਦਾ ਸਤਿਕਾਰ ਤੇ ਪੁਰਾਣੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦੀ ਸਿਆਣਪ ਸੀ। ਪਰ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਤਰੱਕੀ ਪਸੰਦ ਤੇ ਵੱਧ ਪੜ੍ਹੀ- ਲਿੱਖੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਹਰ ਗੱਲ ਤੇ ਸ਼ੋਰੀ ਕਹਿ ਕੇ ਹੀ ਖਹਿੜਾ ਛਡਾਉਣ ਵਾਲ਼ੀ ਹੈ। ਪੁੱਤਰ ਦਾ ਨਾ ਆਉਣ ਤੇ ਸ਼ੋਰੀ ਕਹਿ ਦੇਣਾ ਹੀ ਉਸ ਵਲੋਂ ਕਾਫ਼ੀ ਹੈ। ਪਰ ਮਾਂ- ਪਿਓ ਦੇ ਚਾਵਾਂ ਤੋਂ ਉਹ ਅਨਜਾਣ ਹੈ । ਕਹਾਣੀ ਵਿਚ ਏਹੀ ਦੁਖਾਂਤ ਮੈਂ ਪਾਤਰ ਦਾ ਮਿੱਤਰ ਐਕਸ਼ੀਅਨ ਗੁਪਤਾ ਮਹਿਸੂਸ ਕਰਦਾ ਹੈ:-

> "ਬਾਈ ਜੀ,ਦੋ ਸਾਲ ਹੋ ਗਏ ਮੁੰਡੇ ਦਾ ਮੂੰਹ ਦੇਖੇ ਨੂੰ। ਕਦੇ ਅਮਰੀਕਾ ਕਦੇ ਸਿੰਗਾਪੁਰ, ਕਦੇ ਕਿੱਥੇ... ਬੱਸ ਇਹ ਘਰ ਹੀ ਦੂਰ ਹੋ ਗਿਆ ਉਸਤੋਂ। ਲੱਖਾਂ ਦਾ ਪੈਕੇਜ ਐ ..... ਤਨਖਾਹ ਬੈਂਕ ਚ ਕੱਠੀ ਹੋਈ ਜਾਂਦੀ ਐ। ਮੇਰੀ ਪੈਨਸ਼ਨ ਵੀ ਖਰਚਣ ਵਾਲਾ ਕੋਈ ਨਹੀਂ"।[7]

ਇਹ ਸ਼ਬਦ ਮਾਂ- ਬਾਪ ਦੀ ਬੇਬਸੀ ਤੇ ਸੰਤਾਪਮਈ ਅਵਸਥਾ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਦੇ ਇਸ ਦੌਰ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਇੱਕ ਪੈਸਾ ਕਮਾਉਣ ਵਾਲੀ ਮਸ਼ੀਨ ਬਣ ਕੇ ਰਹਿ ਗਿਆ ਹੈ । ਪੈਸਾ ਹੀ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਹਰ ਖੁਸ਼ੀ ਨਹੀਂ ਦੇ ਸਕਦਾ। ਇਸ ਦੇ ਗਵਾਹ ਮੈਂ ਪਾਤਰ ਤੇ ਉਸਦੀ ਪਤਨੀ ਅਤੇ ਐਕਸ਼ੀਅਨ ਗੁਪਤਾ ਹਨ। ਪੈਸੇ ਤੇ ਸੁੱਖ ਸੁਵਿਧਾਵਾਂ ਦੀ ਇਨ੍ਹਾਂ ਕੋਲ ਕੋਈ ਘਾਟ ਨਹੀਂ। ਪਰ ਉਲਾਦ ਨੂੰ ਮਿਲਣ ਲਈ, ਵੇਖਣ ਲਈ ਤਰਸ ਰਹੇ ਹਨ। ਇਹ ਪੀੜ੍ਹੀ ਇਕੱਲਤਾ ਦਾ ਸੰਤਾਪ ਹੰਢਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਮਾਨਵ ਤਰਾਸ਼ਦੀ ਦੀਆਂ ਛੋਹਾਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਆਰਥਿਕ ਵਿਕਾਸ ਦੀ ਹੋੜ ਕਰਕੇ ਅੱਜ ਹਰ ਮਨੁੱਖ, ਮਨੁੱਖ ਨਾਲੋਂ ਇਸ ਕਦਰ ਟੁੱਟ ਚੁੱਕਿਆ ਹੈ, ਕਿ ਉਸਨੂੰ ਆਪਣੀ ਪਛਾਣ ਦਾ ਸੰਕਟ ਸਤਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਕੱਲਤਾ ਭੋਗਦਾ ਮਨੁੱਖ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਪ੍ਰਤੀ ਚਿੰਤਿਤ ਹੈ। ਪਰ ਉਸਨੂੰ ਇਸਦਾ ਕੋਈ ਹੱਲ ਨਹੀਂ ਲੱਭ ਰਿਹਾ। ਉਹ ਚਾਹ ਕੇ ਵੀ ਪਰਿਵਾਰ ਨਾਲ ਖੁਸ਼ੀ ਭਰਿਆ ਸਮਾਂ ਨਹੀਂ ਜੀ ਪਾ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਇਸ ਕਹਾਣੀ ਰਾਹੀਂ ਇੱਕ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀ ਹੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਲੱਖਾਂ ਪਰਿਵਾਰਾਂ ਦੀ ਤਸਵੀਰ ਨੂੰ ਰੂਪਮਾਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਤੇ ਤਰੱਕੀ ਪਸੰਦ ਰੱਵਈਏ ਨੂੰ ਉਜਾਗਰ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਨੇ 2016 ਵਿਚ ਹੀ ਇਹ ਕਹਾਣੀ ਲਿਖ ਕੇ ਅੱਜ ਦੇ ਸਮਾਜ ਦੀ ਤਸਵੀਰ ਨੂੰ ਯਥਾਰਥਵਾਦੀ ਵਿਧੀ ਰਾਹੀਂ ਪੇਸ਼ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਸੀ। 2022 -23 ਵਿੱਚ ਬੇਰੁਜਗਾਰੀ ਦਾ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਜੋ ਹੜ ਆਇਆ, ਜਿਸਦੇ ਪਰਿਣਾਮ ਸਦਕਾ ਨੌਜਵਾਨ ਬਾਹਰਲੇ ਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿੱਚ ਜਾ ਕੇ ਸੈਟਲ ਹੋਣਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਹਨ । ਇਸ ਸਰਬ ਵਿਆਪਕ ਸੱਚ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਨੇ 2016 ਵਿਚ ਹੀ "ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੌਟ ਪੁੱਤਰਾ" ਕਹਾਣੀ ਰਾਹੀਂ ਕਰ ਦਿੱਤੀ ਸੀ। ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਯਥਾਰਥਵਾਦੀ ਕਹਾਣੀਕਾਰ ਹੈ। ਵਰਤਮਾਨ ਸਮਾਜ ਦੇ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਰਵਈਏ ਨੂੰ ਵਿਅੰਗਮਈ ਤਰੀਕੇ

ਨਾਲ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। "ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੌਟ ਪੁੱਤਰਾ" ਕਹਾਣੀ ਰਾਹੀਂ ਵਿਸ਼ਵੀਕਰਨ ਤੇ ਉੱਤਰ – ਆਧੁਨਿਕਤਾ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਸਦਕਾ ਮਨੁੱਖੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿਚੋਂ ਆਏ ਖਲਾਅ, ਪੱਛਮੀਵਾਦ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਪਦਾਰਥਵਾਦੀ ਪ੍ਰਵਿਰਤੀ, ਵਧੇਰੇ ਧੰਨ ਦੀ ਲਾਲਸਾ ਅਤੇ ਕਾਮਯਾਬੀ ਦੇ ਨਸ਼ੇ ਆਦਿ ਕਈ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਨੂੰ ਉੱਪ ਵਿਸ਼ੇ ਵੱਜੋਂ ਲੇਖਕ ਵੱਲੋਂ ਬਾਖੂਬੀ ਪੇਸ਼ ਕਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਅਸੀਂ ਕਹਿ ਸਕਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ ਜਨਸਧਾਰਨ ਦੀ ਆਵਾਜ਼ ਹੈ, ਜੋ ਵਰਤਮਾਨ ਸਮਾਜ ਦੇ ਕਰੂਰ ਸੱਚ ਤੇ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਗੰਭੀਰ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਕਲਮ ਰਾਹੀਂ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ ਟਿੱਪਣੀਆਂ-

1.ਭੁਪਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਖਹਿਰਾ, ਲੋਕਧਾਰਾ ਭਾਸ਼ਾ ਅਤੇ ਸੱਭਿਆਚਾਰ, ਪੈਪਸੂ ਬੁੱਕ ਡਿਪੋਟ, ਬੁਕਸ ਮਾਰਕੀਟ, ਪਟਿਆਲਾ, ਪੰਜਵੀਂ ਬਾਰ 2005 ਪੰਨਾ 202.

2. ਕੇਸਰਾ ਰਾਮ,ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੇਟ ਪੁੱਤਰਾ, ਨਵਯੁਗ ਪਬਲਿਸਰਜ਼, 2016, ਪੰਨਾ 45

3.ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 47

4.ਉਹੀ,47

5.ਉਹੀ, 55

6.ਉਹੀ, 55–56

7.ਉਹੀ,45

सूफी महाकवि की भाषिक उत्कृष्टता

डॉ. नीतू शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
हंसराज कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. आशा कुमारी
सहायक आचार्या
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

जायसी का रचना संसार प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। शिल्प एवं भाषा की दृष्टि से भी जायसी का रचना संसार एक अन्यतम उदाहरण स्थापित करता है। जायसी की रचना संसार में संवेदना की मार्मिकता जब शिल्प के कौशल से मिल जाती है तब एक ऐसा मणिकांचन संयोग से बनता है जिसमें रचना का उत्कृष्ट होना लाजमी है। पद्मावत के अतिरिक्त उनके अन्य रचनाओं में भी भाषा का यह कौशल देखते ही बनता है। लोक-भाषा को परिमार्जित कर कैसे साहित्य के लिए उपयुक्त बनाया जाता है यह जायसी के यहां देखा जा सकता है। जायसी ने अपनी लोक भाषा से कोई समझौता नहीं किया और अपनी सभी रचनाओं में ठेठ पूर्वी अवधी का प्रयोग किया है। वैसे तो सभी सूफी काव्य की भाषा अवधी ही रही है किंतु जायसी के संबंध में उल्लेखनीय है कि जितना भाषा का आदिम गंध जायसी के यहां मौजूद है वह कहीं और नहीं दिखाई देता। बाद में जिन कवियों ने जायसी के अनुकरण का प्रयास किया वह साफ अनुकरण के रूप में दिखाई देता है। जायसी को अवधी का सबसे बड़ा कवि कहा जाए तो कोई अन्योक्ति नहीं होगी। जायसी के काव्य कौशल के बारे में परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं- “जायसी केवल कवि नहीं है, वे आत्मसजग कवि हैं। अपने कवि होने का, आत्मसजग होने का उन्हें पूरा भरोसा, बल्कि गर्व है। अपने कवि और गुणी होने का जिक्र पद्मावत में जायसी ने आरंभ, मध्य और अंत में बार-बार प्रत्यक्षतः या परोक्षतः किया है।”[1] यहाँ श्रीवास्तव ने स्पष्ट किया है कि काव्य कौशल के गुण से स्वयं जायसी भी परिचित थे और उनके काव्य में यह सहज ही आया है, वे स्वयं भी लिखते हैं–

एक नैन कवि मुहम्मद गुनी। सोई बिमोहा जेई कवि सुनी[2]

जैसा कि कहा गया कि जायसी की भाषा ठेठ अवधी है। पूर्वांचल के इलाके में अवधी भाषा बोली जाती है और इसे जॉर्ज ग्रियर्सन ने अपने भाषा वर्गीकरण में पूर्वी हिंदी के अंतर्गत वर्गीकृत किया है। ग्रियर्सन ने यह भी कहा है कि अवधी तेलुगु के बाद सबसे अधिक सरस भाषा है जिसमें काव्य गेयता देखते ही बनती है। अवधी पश्चिमी हिंदी से अधिक बिहारी हिंदी के करीब है और इसलिए व्याकरणिक दृष्टि से अवधी और बिहारी हिंदी में कई समानताएं भी दिखाई देती है यहां तक की भाषा की शब्दावली भी काफी मिलती-जुलती है। अवधी एवं भोजपुरी बहने भाषाएं हैं, जिनमें एक दूसरे का काफी योगदान दिखाई देता है। जायसी के साहित्य में अवधी के यह सारे रंग दिखाई देते हैं।

व्याकारणिक दृष्टि से अवधी की संरचना को इस संदर्भ में देखना आवश्यक है। जैसा कि हम जानते हैं की अवधी में कर्ता के स्तर पर पुरुष का निर्धारण लिंग और वचन के अनुरूप ही होता है। सभी पूर्वी बोलियों में भूतकाल कृदंत रूप नहीं लेता बल्कि तिडंत रूप में रहता है। क्रिया के स्तर पर स्त्रीलिंग दो रूपों में प्रयोग होता है। जायसी ने अपने भाषिक प्रयोग में तुलसी के समान ही व्याकरणिक एवं शब्द संपदा के स्तर पर प्रयोग किए हैं और बहुत से पुरानी अवधी शब्दों को

अपने रचना संसार में स्थान दिया है। अवधी भाषा का विस्तृत संसार अगर कहीं दिखाई देता है तो वह जायसी रचित साहित्य में ही मिलता है। जायसी के साहित्य के आधार पर अवधी भाषा का एक व्याकरण एवं शब्द संपदा भी निर्धारित की जा सकती है जोकि अवधी साहित्य के लिए अत्यंत उपयोगी होगा।

जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है और उसमें अवधी का माधुर्य और अधिक खुलकर प्रकट हुआ है। जब तेलुगु के बाद अवधी भाषा को मधुरतम भाषा कहा तो उनके समक्ष जायसी का साहित्य एवं सूफी साहित्य ही था। जायसी के साहित्य पर बात करने से पहले जायसी की भाषा के इस गुण की चर्चा करना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि जैसे ही व्यक्तित्व की समरसता उनकी भाषा में मिलकर एक ऐसा संयोग बनाती है जिसमें पाठ का उत्कृष्ट होना लाजिमी हो जाता है। इन तथ्यों जायसी के काव्य भाषा पर विचार करते हुए डॉक्टर श्रीनिवास बत्रा लिखते हैं कि "वह साहित्यिक भाषा की भारती व्याकरण एवं शास्त्री नियमों से बनी सभी नहीं है। उसका माधुरी अपना माधुरी है। बोलचाल की भाषा का इतना निकला हुआ रूप अन्यत्र दुर्लभ है...। जायसी की भाषा सरल, सजीव, सुमधुर, स्वच्छ, सहज, साधारण, शुद्ध और प्रवाहमयी है। उसमें सबलता, व्यंजकता, और सरसता है।" रामचंद्र शुक्ल ने जायसी ग्रंथावली के प्रस्तावना में जायसी के भाषा पर विचार करते हुए कहते हैं कि "जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है, पर उसका माधुरी निराला है वह माधुरी भाषा का माधुरी है, संस्कृति का माधुरी नहीं। वह संस्कृत की कोमल कान पदावली पर आलंबित नहीं। और अपनी निज की स्वभाविक मिठास लिए हुए है।"[3] जायसी की सभी कृतियों को गाया जा सकता है और गाते हुए उसका आनंद अलग है दृष्टि देता है। जायसी के संदर्भ में या प्रसिद्ध है कि उनकी रचना पद्मावत है और पदों को वे स्वयं और उनके शिष्य भी गाया करते थे। बहुत दिनों तक तो पूर्वांचल के इलाकों में पद्मावत गाने की परंपरा रही थी। कहीं ना कहीं पद्मावत लोकगीत की श्रेणी में भी आ गया था बाद में साहित्यिक प्रयासों से उसे वापस विद्वानों ने आख्यान का स्वरूप प्रदान किया। यह जायसी की भाषा के उत्कृष्टता ही कही जाएगी कि उनका काव्य लोग के मध्य इतना लोकप्रिय रहा और यह लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि लंबे समय तक उनके पदों को गाने की परंपरा ही चल पड़ी।

भक्ति काल के प्रमुख कवि जायसी की रचना तो अमर हो गई किंतु लंबे समय तक पद्मावत के साथ उनका नाम जोड़ने की परंपरा खत्म हो गई थी, शुक्ल जी के विचार करने के पश्चात ही जायसी को पुनः उनका गौरव प्राप्त हुआ। जॉर्ज ग्रियर्सन ने सबसे पहले पद्मावती की छोटी भूमिका लिखी और पद्मावत की तरफ सबका ध्यान आकर्षित किया- "सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने पद्मावती छोटी सी भूमिका में जायसी की भाषा के महत्व की ओर अध्येताओं का ध्यान आकर्षित किया है। कवि के जीवन वृत्त तथा उसके काव्य के भाव पक्ष के संबंध में सूक्ष्म संकेत दिए हैं। अंत में जायसी द्वारा प्रयुक्त छंद योजना तथा व्यवहृत्त भाषा के व्याकरण का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण है।"[4] इसके पश्चात आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी के साहित्य एवं उनकी भाषा पर काफी गंभीरता से विचार किया बल्कि यह कहना उचित होगा कि जायसी को उनका गौरव दिलाने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को ही है। आचार्य शुक्ल के प्रयासों के फलस्वरूप यह संभव हुआ कि जायसी की चर्चा हिंदी जगत में काफी होने लगी और जायसी के साहित्य को प्राप्त करने के लिए कई विद्वान शोध की दृष्टि से उन्मुख हुए। इसके सकारात्मक परिणाम जल्दी ही सामने आने लगे और दूसरा महत्वपूर्ण अध्ययन जो इस संदर्भ में सामने आता है वह है 1955 ईस्वी में डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा संपादित ' पद्मावत मूल और संजीवनी व्याख्या' जिसमें पद्मावत के माध्यम से जायसी के संपूर्ण साहित्य के महत्व को विवेचित किया गया। इस ग्रंथ के पश्चात् जायसी के साहित्य को नई पहचान मिली और जायसी को सूर एवं तुलसी के सामान ही हिंदी साहित्य में उद्धृत किया जाने लगा। लोक प्रसिद्धी से सभी परिचित थे किंतु साहित्यिक स्थापना ने उनको नई पहचान अवश्य दी।

सूफी धारा चूँकि इस्लाम का ही विस्तार था और उसने अपने आधार आस्था उपासना आदि इस्लाम से ही ग्रहण किए थे इसलिए सूफियों के यहां निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर भी जोर दिया जाता है। जायसी के साहित्य में भी निर्गुण ब्रह्म की उपासना की गई है। जायसी के सम्यक साहित्य पर अगर हम नजर डालें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जायसी भी इस्लाम के अनुरूप ही अपनी आस्था को अपने काव्य में वर्णित करते हैं। पद्मावत एवं उनके अन्य काव्यों में निर्गुण ब्रह्म का अद्वैत

रूप ही स्थापित होता हुआ दिखाई देता है। विशेषकर आखिरी कलाम इस संदर्भ में उल्लेखनीय है क्योंकि यह तो पूर्ण रूप से इस्लामी दर्शन के अनुरूप लिखा गया है और इसमें निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते हुए उसकी महिमा का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया गया है। आखरी कलाम स्पष्ट रूप से निर्गुण ब्रह्म को सत्ता के रूप में प्रस्तुत करता है और मनुष्य को उसी ब्रह्म के प्रति आस्थावान रहने की शिक्षा देता है।

भक्ति कालीन साहित्य में से अधिक महत्व गुरु को दिया जाता है। जायसी के साहित्य में भी गुरु के महत्व को स्थापित किया गया है। उनके संपूर्ण काव्य में बार-बार गुरु के द्वारा मार्गदर्शन की महिमा को रेखांकित किया गया है यहां तक कि पद्मावत में भी हीरामन तोता को गुरु के रूप में वर्णित किया गया है और कहा गया है कि एक सच्चा गुरु ही मनुष्य को साधना के लिए प्रेरित करता है। जायसी स्वयं भी अपने गुरु से बहुत प्रभावित थे और उन्हीं की शिक्षाओं के अनुरूप उन्होंने अपने काव्य में सूफी दर्शन को प्रस्तुत किया। उनके गुरु के साथ बहुत आत्मीय संबंध थे इस कारण कई सारी मिथकीय कथाएं जायसी एवं उनके गुरु को लेकर लोक में प्रचलित है। जायसी का साहित्य निश्चित रूप से गुरु की महिमा का मंडन करता है।

जायसी के साहित्य का अन्यतम विशेषता यह भी है कि वहां पर ईश्वर के प्रतीक रूप का शृंगारिक वर्णन दिखाई देता है। जैसे के साहित्य में जिस तरह का शृंगारिक वर्णन मिलता है वह अत्यंत ही मनोरम एवं पाठक को आकर्षित करने वाला है। नायिका भेद, शृंगारिक वर्णन, प्रेम वर्णन, विरह वर्णन सहित सभी शृंगारिक पक्षों पर जायसी की कलम बड़ी मर्मज्ञता से अंकन करती है। जायसी की विशेषता यह रही है कि शृंगारिक वर्णन अत्यंत उदार एवं उद्दत दृष्टि से वे करते हैं। उनके शृंगारिक वर्णन में हृदय की मनोरम भाव झांकियां साथ-साथ चलती रहती है जिसके कारण यह वर्णन कहीं भी बोझिल नहीं होता और ना ही यह लगता है कि केवल शृंगारिक वर्णन के लिए काव्य रचना की गई है। जायसी ने ईश्वर के प्रति के रूप में नायिका को चित्रित किया है अतः प्रेम का उदात्त दर्शन हमेशा ही भाव संवेदना पर मुखर रहता है। जैसे जानते हैं कि शृंगारिक वर्णन यदि संवेदना के साथ संतुलन बना न किया जाए तो कृत्रिम एवं अश्लील भी हो सकता है। जायसी का काव्य इस दोष से मुक्त है। जायसी का श्रृंगार उनके दर्शन के अनुरूप हुआ है और उसमें ईश्वर के प्रतीक के प्रति आस्था का भी निर्वाह हुआ है।

यह बात तो स्पष्ट है कि जायसी निश्चित रूप से प्रेम दर्शन के कवि हैं। उनका सूफी हृदय प्रेम की महत्ता को ना सिर्फ स्थापित करता है बल्कि प्रेम की सब व्यापकता को भी सुनिश्चित करता है। सूफी हृदय होने के कारण ही जायसी ने उस तत्व को भी जनता के सामने रखने का साहस किया जिसे आध्यात्म में माया के रूप में चित्रित कर दिया जाता था जायसी एवं सूफियों ने यह सिद्ध किया कि मनुष्य के हृदय की पवित्रता ही प्रेम है और पवित्र वस्तु किस प्रकार माया हो सकती है। प्रेम के द्वारा तो सभी तरह के आध्यात्म को साधा जा सकता है। निश्चित रूप से जायसी के काव्य सौंदर्य में उनका दर्शन मुख्य भूमिका निभाता है और यहीं से उनका काव्य लोकप्रियता के बीच में रम जाता है। जायसी का मूल मंत्र है—

समरस भावना जिसमें जीवन का साथ भी है और आध्यात्म का ताप भी, केवल सूफियों के यहां देखने को मिलता है। जायसी के काव्य संवेदना की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उन्होंने प्रेम दर्शन को कहीं नहीं छोड़ा बल्कि उससे बहुत सहज बना कर जनता के मध्य प्रस्तुत किया। जीवन की कहानियां उठाकर उसमें इतने रंग भरे की वह किसी अन्य तत्व की तुलना में अधिक आकर्षक लगने लगा और उसके बाद उसमें मानवीय भाव की इस तरह से संरचना थी कि वह अपने संदेश को प्रचारित करने में सहज ही सफल हो गया। यही जायसी की विशेषता है।

मुहम्मद कवि जो प्रेम का ना तन रकत ना मांसू
जेइ मुँख देखा तेई हंसा सुना तो आए आंसू।।[5]

जायसी के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्हें इस बात का भान है कि काव्य संरचना किस तरह से उत्कृष्ट बनाई जाती है। भाव एवं शिल्प के प्रति जायसी की सजगता देखते ही बनती है निश्चित रूप से इसके लिए जायसी ने गहन साधना की है जो उनके काव्य में दिखाई पड़ती है और जायसी स्वीकारते भी हैं कि उनका काव्य उत्कृष्ट कोटि का काव्य है।

पद्मावत में जगह-जगह स्वीकारोक्तियां देखी जा सकती हैं जहां उन्होंने अपने काव्य की प्रशंसा में स्वयं ही उद्धृत किया है परमानंद श्रीवास्तव इसी संदर्भ में लिखते हैं- "इन उद्धरणों में गर्वोक्तियाँ प्रत्यक्ष है। परंतु जायसी के कहने की शैली में एक मिठास है। या मिठास जायसी का सामान्य गुण है। यहां भी है। इन लोगों में अकड़ नहीं है। ऐसा लगता है कि अधिकारी और योग्य व्यक्ति केवल अपने विशिष्टता का तटस्थ उल्लेख कर रहा है। यह पंक्तियां जायसी ने अपनी पहचान स्पष्ट करने के लिए लिखी है। इनमें आत्मविश्वास है, घमंड नहीं।"[6] परमानंद श्रीवास्तव इस बात को भी साफ करते हैं कि जायसी की स्वीकारोक्तियां उनकी सजगता का भी प्रमाण है। अपने अनुभव एवं अपने पदों के गाने के बाद मिले हुए श्रोताओं की प्रशंसा को घमंड कहना तो कतई उचित नहीं होगा। प्रशंसा का यह भाव कवि को इस बात की सूचना देता है कि उनका काव्य जनता के हृदय को सीधा छूता है और उनकी लोग बोली की मिठास भी सहज रुप से सर्वव्यापी बन जाती है और इसी कारण कभी लिखता है–

बंधु मीत बहुतै समुझावा। मान न राजा कोउ भुलावा ॥
उपजि पेम-पीर जेहि आई। परबोधत होइ अधिक सो आई ॥
अमृत बात कहत बिष जाना। पेम क बचन मीठ कै माना ॥
जो ओहि विषै मारिकै खाई। पूँछहु तेहि सन पेम-मिठाई ॥
पूँछहु बात भरथरिहि जाई। अमृत-राज तजा विष खाई ॥
औ महेस बड सिद्ध कहावा। उनहूँ विषै कंठ पै लावा ॥
होत आव रवि-किरिन बिकासा। हनुवँत होइ को देइ सुआसा ॥[7]

यहाँ हम देख सकते हैं, कि कवि ने दर्शन ने अभिव्यक्ति और दर्शन का सुंदर संयोजन किया है।

सूफी काव्य में काव्य रूढ़ियों एवं कल्पनाशीलता का बहुत योगदान होता है, जायसी के साहित्य में भी यह देखा जा सकता है। जायसी ने अपने साहित्य में सूफी काव्य की रूढ़ियों का इतना सुंदर प्रयोग किया है कि वह अतिरंजना की श्रेणी में आते हुए भी हृदय को छू जाते हैं और एक ऐसा व्यापक प्रभाव बनाते हैं जिसमें पाठक खो जाता है। उन्होंने इनका रूढ़ियों के प्रयोग के लिए जनमानस में प्रचलित कहानियां एवं सामान्य मान्यताओं को ही स्वीकारा है और उसे फिर कविता में संवेदना के अनुरूप ढाल कर प्रस्तुत कर दिया है- "जायसी ने अपनी संवेदना को सर्जनात्मक रूप प्रदान करने के लिए उस युग में परंपरा अथवा रूढ़ि, लोकमानस अथवा काव्य शास्त्र, दर्शन अथवा योग, संस्कृत अथवा फारसी के बहुत सारे उपलब्ध उपादान ओं का प्रयोग किया है।"[8] जायसी का ज्ञान केवल किसी विशेष क्षेत्र में सीमित नहीं है बल्कि उनके अध्ययन क्षेत्र में कई अन्य अनुशासन भी शामिल है। उन्होंने सूफी दर्शन के साथ-साथ हिंदू मान्यताओं एवं रीतियों का भी बखूबी प्रयोग किया है। उनके काव्य में इस तरह के प्रयोग भरे पड़े हैं जहां कई दर्शनों का सहयोग दिखाई देता है।

सूफी काव्य सहित जायसी के काव्य में भी कहीं-कहीं अतिरंजना काफी ज़्यादा दिखाई देती है और अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग भी दिखाई देता है। श्रृंगार वर्णन एवं कल्पना के संयोजन में सभी ने को वास्तविकता किनारे रखकर केवल और केवल काल्पनिक फैंटेसी का निर्माण किया है हालांकि या फेंटेसी काफी आकर्षित करती है और कविता को सुंदर भी बनाती है इसीलिए परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं- "लेकिन इन व्यतिरेकों के बावजूद पद्मावत एक सुगठित और एक तान संरचना का काव्य है। पूरा काव्य अंततः केंद्रित, संपूर्ण और अखंडित बौद्धिक सघनता का प्रभाव छोड़ता है जो ट्रेजेडी जैसा होते हुए भी यूनानी में अर्थ में ट्रेजडी नहीं है और जिसे मैंने जायसी की विषाद दृष्टि कहा है।"[9] पद्मावत के उदाहरण से परमानंद श्रीवास्तव ने जायसी की मूल भावना के संदर्भ में काफी कुछ साफ किया है कि जायसी मूल संवेदना को झकझोर ने के लिए कविता रखते हैं और उसके लिए शैल्पिक विधान करते हैं। जायसी ने अपने दर्शन के त्रासदी पूर्ण विवेचन से यदि सिद्ध किया कि मानवीय भाव किसी भी काल किसी भी दर्शन किसी भी धर्म में समान रूप से विद्यमान होते हैं और उनकी उच्चतर पराकाष्ठा भी मानवीय भाव के जुड़ाव से ही तय होती है। किसी भी प्रकार की जोर जबरदस्ती अथवा अतिक्रमण की भावना हमेशा मनुष्य को निकृष्ट बनाती है, और उससे इतिहास में अथवा लोगों के हृदय में नकारात्मक दृष्टि से ही प्रस्तुत करती है।

सूफी काव्य धारा के साथ समस्या बार-बार आती है कि सूफी कविता अतिरंजना के कारण इतनी अधिक अप्रासंगिक

और फेंटेसी के द्वैत में फंसी लगती है कि सूफी कविता के लिए यह अवधारणा प्रचलित हो गई थी कि सूफी कविता का जीवन के व्यावहारिक पक्ष से कुछ लेना देना नहीं है किंतु जायसी इस संदर्भ में अपवाद कहे जा सकते हैं- "लोक में जो कहानियां प्रचलित होती हैं वे शास्त्र, रूढ़ियों का बार-बार अतिक्रमण भी करती हैं। विचारों की पूंजी को लेकर कवि सहज कल्पना में जहां हस्तक्षेप करने लगता है वहां रचना की पूरी बनावट में दरार पड़ जाती है। इसकी चेतना जायसी में है।" जायसी के काव्य का संतुलन इस बात का प्रतीक है कि उन्होंने काव्य जोड़ी एवं कल्पना को बहुत संतुलन के साथ प्रस्तुत किया है और यहीं से वे अन्य सूफी कवियों से अधिक उत्कृष्ट हो जाते हैं।

संदर्भ

1. जायसी, परमानंद श्रीवास्तव, साहित्य अकादेमी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 31
2. जायसी ग्रन्थावली, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ, 13
3. जायसी ग्रन्थावली, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ, भूमिका
4. जायसी, विजय देव नारायण साही, पृष्ठ संख्या भूमिका जायसी, परमानंद श्रीवास्तव, साहित्य अकादेमी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 31
5. जायसी ग्रन्थावली, सम्पा. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 153
6. जायसी, परमानंद श्रीवास्तव, साहित्य अकादेमी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 32
7. जायसी ग्रन्थावली, सम्पा. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 175
8. वही, 51
9. वही, 91

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

समय-सरगम उपन्यास वृद्धों की स्थिति का विश्लेषण

किरन रावत
शोधार्थी, हिंदी विभाग
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, परिसर अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड
मो0न0- 8954865852
ई.मेल- kr730426@gmail.com

शोध सारांश

'समय-सरगम' उपन्यास में वरिष्ठ एवं बुजुर्ग व्यक्तियों को केन्द्र में रखकर जीवन जीने तथा परिवार व समाज से संबंधित अनेक समस्याओं को चित्रित किया गया है। 'समय-सरगम' कहानी है वृद्धों और वृद्ध होते लोगों की जो इस संसार में अकेले हैं। यह अकेले होना भी कई स्तरों पर हैं- कुछ अकेले हैं क्योंकि उनका परिवार नहीं। जैसे आरण्या और ईशान, कुछ इसीलिए अकेले हैं क्योंकि उनका परिवार उनसे दूर है और कुछ परिवार में होकर भी अकेले कर दिए हैं, जैसे- दमयंती, प्रभुदयाल। क्योंकि परिवार के लिए अब वो अतिरिक्त हो चुके हैं, उनकी कोई उपादेयता अब नहीं रही या यूँ कहें कि नई पीढ़ी की नजर में उनका महत्व नगण्य समझा जाता है।

बीज शब्द- समय-सरगम, वरिष्ठ, परिवार, अकेलापन, तिरस्कार, समाज, पारिवारिक जीवन, लालच, आर्थिक स्थिति, परिवार-व्यवस्था।

मुख्य आलेख

साहित्य के क्षेत्र में महिला कथा लेखिकाओं में अपनी विशिष्ट पहचान रखने वाली कृष्णा सोबती का जन्म 18 फरवरी 1925 ई. को पंजाब शहर (वर्तमान में पाकिस्तान) में हुआ था। कृष्णा सोबती के पिता का नाम दीवान पृथ्वीराज सोबती तथा माता का नाम दुर्गा देवी है। कृष्णा सोबती की शिक्षा दिल्ली, लाहौर तथा शिमला आदि स्थानों में संपन्न हुई।

कृष्णा सोबती की साहित्यिक सेवाओं के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार (1980), मैथिलीशरण सम्मान, शिरोमणि पुरस्कार (1981), श्लाका अवार्ड (2008), व्यास सम्मान (2007), ज्ञानपीठ पुरस्कार (2017) आदि से सम्मानित किया गया है।

कृष्णा सोबती के कथा-साहित्य उच्चर उद्देश्यों को सिद्ध करता है उन्होंने संकीर्णता, अन्याय और अज्ञान के भीतर से मनुष्य को शांति, प्रेम और आनन्द की ओर ले जाने का सद्प्रयास किया है। अपनी रचनाओं के माध्यम से जीवन के शाश्वत मूल्यों को उभारने का प्रयास किया है। वे अपने जिंदादिल व्यक्तित्व से मनुष्य के जीवन की पीड़ा, दर्द और युगीन यथार्थ को अपनी रचनाओं में गहराई से प्रस्तुत करती हैं।

कृष्णा सोबती का 'समय-सरगम' उपन्यास मुख्यतः एक पीढ़ी विशेष पर केन्द्रित उपन्यास है। इक्कीस भाग/सर्ग/खंड

में विभाजित इस उपन्यास के मुख्य पात्र आरण्या और ईशान हैं। जीवन के अंतिम छोर पर खड़े ये दो बुजुर्ग अपने जीवन के बचे हुए समय की सरगम को बाकी चिन्ताओं से परे रखकर पूरी उमंग के साथ सुनने को सजग हैं साथ ही पक चुकी उम्र को जीने की सतर्कता और दिनचर्या को सावधानी से बरतते हैं।

'समय-सरगम' में वृद्धजनों की उस अंतर्मन की स्थिति का विश्लेषण किया गया है जब युवा पीढ़ी अपने बुजुर्गों को बोझ समझने लगती है। जिसके कारण वे अपने घरों में ही बेगाने हो जाते हैं। पहले पक्ष को जींवतता प्रदान करने वाले मुख्य पात्र हैं- दमयंती, प्रभुदयाल और कामिनी। इस उपन्यास में प्रमुख रूप से संयुक्त परिवार, परिवार मे बुजुर्गों की स्थिति को कई प्रसंगों के माध्यम से उजागर करने का प्रयास किया गया है। दमयंती, प्रभुदयाल और कामिनी की जिन्दगियाँ इस सच्चाई का जीवंत चित्रण दर्शाया गया हैं।

'समय-सरगम' उपन्यास में परिवार के साथ रहते हुए उपेक्षा, अपमान और तिरस्कार सहकर जिंदगी को घसीटनेवाले बुजुर्गो की स्थितियों का जींवत एवं मार्मिक चित्रण किया गया है- ''बूढ़ों सयानों की टोली हर शाम इस छोटे से बगीचे में पहले टहलती है, फिर बतियाती है। ...निसंदेह हम पुराने है, फिर भी समय निस्तेज नहीं। घर से बाहर निकलते है। भांति-भांति की सब्जियाँ, फल खरीदकर लौटतें हैं। परिवार का कोलाहल के सानिध्य में, जो कभी स्वंय हमने अपने परिश्रम से गूंथा था। कामकाज से छुट्टी पा इसे भोगना भी सुख है जीने का। बहू-बेटों की नजरों में रूखाई, अवज्ञा, उदासीनता कुछ भी दीखतें रहें- परविार के साथ होने का सुख है गहरा। रहती है आत्मा शांत के सभी कोई पास है।...यह अलग बात है कि परिवारों में बड़े-बूढ़े के अधिकार कमतर और 'हाँ' या 'न' का संकोच ज्यादा है, पीढ़ी सरक जाए तो अख्तियार खुद ही आधे-पौने हो जाते हैं। बहू-बेटों की मजी-मुताबिक चलना है। वह जैसा चाहे, रहते रहें।''[1]

इस उपन्यास में प्रमुख रुप से संयुक्त परिवार, परिवार में बुजुर्गो की भूमिका और वर्तमान पारिवारिक माहौल में उनकी वास्तविक स्थिति को कई प्रसंगों के माध्यम से उजागर किया है। दमयंती प्रभुदयाल और कामिनी इन पात्रों के माध्यम से भारतीय परिवार व्यवस्था के तीन अलग-अलग घटनाओं द्वारा तीन कोणों को उजागर किया गया है।

पहला प्रसंग दमयंती का है, जो समृद्ध और सांसरिक हैं। पति की मृत्यु हो चुकी है और उम्र के अंतिम छोर पर पहुँच चुकी दमयंती को बेहद सक्रिय और सफल व्यावहारिक जीवन जीने के बाद दमयंती एकांकी नहीं है वरन् अपने बेटों-बहुओं के साथ रहती है। ऊपर से देखने से यही लगता है कि वह अपनी इस स्थिति से प्रसन्न एवं संतुष्ट है। वास्तविकता इससे विपरीत है। दमयंती का खान-पान गुरू के निर्देशानुसार बदल चुका है। पहनावा भी उन्हीं के अनुसार अपना लिया है। लेकिन बेटे-बहू फिर भी संतुष्ट नहीं हैं। दमयंती के तीन-तीन बेटे और बहुँए है लेकिन उसे अपने कमरे से बाहर आने की इजाजत नहीं है। संपन्न एवं समृद्ध होने के पश्चात भी अपमानित एवं तिरस्कार सहना पड़ता है। दमयंती अपने ही घर में अपने कमरें के बाहर कहीं बैठ नहीं सकती, ना ही बच्चों को कुछ कह सकती है। वह अकेली और दुःखी है और अपने बच्चों से डरी हुई और भयभीत रहती है। अपने बच्चों द्वारा दिये जाने वाले दर्द तथा उपेक्षा को अपने मित्र आरण्या और ईशान से बाँटते हुए कहती है—

''मैं तुम्हारी तरह अकेली होती तो क्यों परेशान होती। बच्चे साथ रह रहें हैं। मेरे घर में मेरा किचन चल रहा है। खर्च मैं कर रही हूँ और अपने कमरे में अकेली पड़ी रहती हूँ। बिना मेरी इजाजत मेरा सामान इधर से उधर करते रहते हैं। आरण्या मैं बहुत दुःखी हूँ। पीछे आश्रम गई तो माधो को धमकाते रहे। बताओं, ममा लॉकर की चाबी कहाँ रखती हैं। ...मैं अपने बच्चों से बैर विरोध क्यों करूँगी! उनका भी कोई फर्ज बनता है, मैंने कुछ खाया-पिया है कि नहीं, बीमार हूँ, दवा लानी है, टेस्ट करवाना है- डॉक्टर के पास जाना है वह सब मैं अपने आप ही करूँ! ...मैं ड्रांइग रूम में नहीं बैठ सकती, मेरे मेहमान नहीं बैठ सकते जबकि वहाँ का सब फनीचर, साज-सामान मेरा अपना बनाया हुआ है और मैं किसी बेजान काठ की तरह देखी जाती हूँ। ...बच्चों की ऐसी हरकतों से मेरा धीरज खत्म हो रहा है। मुझे इस कमरे से निकलने की की इजाजत नहीं।''[2]

अन्त में दमयंती बच्चों द्वारा किये गये अपमान, तिरस्कार और उपेक्षा को सहन नहीं कर पाती और कुछ दिनो में उसकी मृत्यु हो जाती है। बेटे द्वारा खींची लक्ष्मण रेखा को पार करने पर एक माँ सहम जाती है। आखिर यह कैसी विडम्बना है आज

के समय में कि एक माँ को अपने ही घर में अपने ही बेटे से भय लग रहा है और वह भी की उसने आरण्या को अपने घर पर ही रूकने को कह दिया जैसे कोई छोटा बच्चा डर रहा हो और अपने से किसी बड़े की आड़ से बचना चाहता हो ताकि उस तक शाक्तिशाली बेटे की शक्ति कम भले न हो पर कम से कम संकोच की छाँव में वह बच पाये। परन्तु दमयंती का डर निराधार नहीं था। पर स्वंय के प्राकृतिक बुलावे से नहीं बल्कि बेटे-बहू की मेहरबानी की बदौलत ही। क्योंकि वह अपने बच्चों द्वारा किये गये अपमान को सहन नहीं कर पाती और अंतर्मन में घुटती जाती है, जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। यह है वर्तमान समय में भारतीय परिवार जहाँ माँ को सबसे ऊँचा दर्जा दिया जाता था और जिसके पैरों के नीचे जन्नत की खोज की जाती थी पर शायद आजकल उसकी आवश्यकता और महत्व का कोई अस्तित्व नहीं रह गया है। दमयंती के माध्यम से परिवार में अपने बच्चों द्वारा ही दयनीय स्थिति का चित्रण किया है और वर्तमान समय में भी स्त्री आर्थिक रुप से सक्षम होने के बाद भी अपमानित जीवन जीने के लिए मजबूर हैं।

दूसरा प्रसंग में प्रभुदयाल के माध्यम से परिवार के इस विद्रुप रूप का भी परिचय होता है। प्रभुदयाल एक विधुर है जो पत्नी के मर जाने पर परिवार में खुद को अकेला महसूस करते हैं। तीन बेटों के पिता हैं प्रभुदयाल फिर भी सम्पन्न परिवार होते हुए भी पिता का तिरस्कार, अपमान और उनकी आकांक्षाओं तथा अधिकारों का हनन होता है। उपन्यास में प्रभुदयाल के माध्यम से परिवार में एक पिता के साथ हुए दुर्व्यवहार को यथार्थता की दृष्टि से उजागर किया गया है- ‘‘प्रभुदयाल गले में लटकती ताली को छुएँ, लड़के ने सूत में पिरोई ताली गले पर से उतार ली। बाप का इससे बडा अपमान क्या हो सकता है।’’[3]

प्रभुदयाल अपने बेटों द्वारा अपमान और जायदात पाने के लालच में किए गए कायों को देखकर परेशानी और निराशा महसूस होती है। जिन बच्चों को पाला-पोसी, सही-गलत सिखाया आज वही बच्चें वृद्धावस्था में अपने पिता को अनेक तरीकों से अपमानित कर रहे हैं। पत्नी के मृत्यु के बाद प्रभुदयाल के लिए लालाजी की मामी की भतीजी कलावती उनके लिए जींवती लाती हो उठती है। जिंदगी को फिर से जीने का चाहत पैदा होती है लेकिन घर के बेटे-बहुओं को पिता की यह स्वेच्छा जीवन जीने का तरीका पसन्द नहीं आता है और उन लोगों ने पिता की जासूसी के लिए जासूस लगा दिया और अपने पिता के विरूद्व षडयंत्र करने लगे और फिर एक दिन वृद् लालाजी को अपने पुत्रों के षडयंत्र के जाल में फंस गए - ‘‘पुलिस बुन रही है यह लुका-छिपा का आख्यान, जिसमें कई पेंच उजागर होगें। देहरादून, सहारनपुर और मेरठ से लौटते हुए प्रभुदयाल रासतें में ही रह गए। ...पोस्टमार्टम की रिपार्ट के अनूसार उनकी मृत्यु गला घोंटने से हुई। शव मिला हिंडन से कुछ किलोमीटर आगे छप्पर के किनारे इमली के पेड़ तले। खबर मिलते ही धर में हाहाकार मच गया। जो होना था वही हुआ। सोने के बिस्कुट और दूसरी औरत!’’[4]

सारा खेल दौलत का है। अगर प्रभुदयाल के पास धन न होता तो उनके बेटे-बहू न तो उनकी इच्छाओं पर बंदिश लगाते और न ही उनकी मौत का षडयंत्र करते। परिवार द्वारा रुखाई, अवज्ञा एवं उदासीनता को सहते हुए भी माता-पिता बच्चों के साथ रहकर सुख का अनुभव करना चाहते हैं।

उपन्यास में लेखिका ने अपने पात्रों के माध्यम से कुछ ऐसी वृद् जिंदगियों का चित्रण करती हैं जहाँ स्वाथों तथा सुविधाओं से विघटित पारिवारिक मूल्य हैं, जिन्होंने परिवार की भावात्मक संरचना को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है। कामिनी एक अविवाहित स्त्री है। वह आर्थिक रुप से सक्षम है और अकेले रहती है। किन्तु सम्पत्ति के लालच में अपने सगे भाई उसे मृत्यु की ओर ढकेलने से भी संकोच नहीं करते। खुकु कामिनी की देखभाल के लिए रखा गया है। किन्तु वह अपने निहित स्वार्थ के भाव से ग्रसित होकर कामिनी के प्रति दया भाव दिखाती है। कामिनी एक लाचार वृदा है कोई नहीं है जो उसके लिए ठोस कदम उठाये। कामिनी अपने भाई की सच्चाई, संपत्ति के प्रति लालच के और अपने दर्द को ईशान और आरण्या बक बताते हुए कहती है- ‘‘मुझे दलाल बता गया है कि भाई ने मेरे घर का सौदा कर लिया है। बयाना ले चुका है! खूकू ने मुझे नहीं बताया पर बिल्डर दो बार घर को आगे-पीछे और अंदर से देख गया है। तब सोई पड़ी थीं।... एक रात देखा तो मेरी डाक्यूमेंट फाइल में घर के पेपर नहीं थे। अगली रात यह बाहर ताला डालकर चली गई तो फिर अलमारी खोली। सब

खाने छान मारे! फाइल खोली तो असली की जगह फोटोस्टेट कॉपी रखी थीं असली अब मेरे पास नहीं हैं।''[5]

कामिनी की अपने ही बनाए घर में कैद रहती है बाहर से उसे ताला मार दिया जाता है, जो कभी देश-विदेश घूमा करती थी। लन्दन तक उसकी पोस्टिंग हुआ करती थी और आज उसकी ऐसा अवस्था हो गई है। कामिनी के घर में पेंटिग्स में देश-विदेश के स्मृति-चिन्ह लगे हैं। वह स्वंय आर्थिक रुप से समर्थ है, उसके बावजूद उसे इन परिस्थितियों से जूझना पड़ता है। कामिनी बीमार रहती है , उसके लिए दो-दो डॉक्टरों उसे देखने आते है, एक भाई द्वारा भेजा और दूसरा उनका वाला है। खुकु आरण्या और ईशान को बताती है कि कामिनी के भाई कैसे उसके मकान का सौदा कर लिया है और डॉक्टर भी स्लोपोइजन देने के लिए निर्धारित कर रखे हैं- '' वह तो सोई रहती हैं। डॉक्टर शायद उन्हें नींद की गोली देता होगा। सोई रहती हैं बेखबर।. .. साहिब मेम साहिब का कुछ रहने वाला नहीं भाई लोग घर बेंच चुके हैं।... दो-दो डॉक्टर हैं साहिब, एक नीं। हर मंगल को भाई लोग का डॉक्टर आता हैं। जैसे कहता है मैं वैसे ही करती हूँ।''[6]

''परिवार का कोलाहल, शोर, तनाव, ऊँच-नीच और तनातनी आसपास नहीं। फिर भी पुरानी छाँह से पितृ पाँव, मातृ हाथ, भातृ और भगिनी भाव का गहरा आस्वादन जब कभी भी मिलता हो। उमड़ आता है स्नेह माँ की ममता के लिए और पिता के समय में पगे प्यार के लिए।''[7]

'समय- सरगम' उपन्यास में घटनाएँ कम हैं। वरिष्ठ नागरिकों की जीवनचर्या का यथार्थ चित्रण और उनकी समस्याओं का मार्मिक और संवेदनपूर्ण आलेखन लेखिका का मूल अभिप्रेत है। इस उपन्यास में बुजुर्गो की जिंदगी के दूसरे पक्ष में परिवार से दूर रहकर अकेले जिंदगी जीने वाले वरिष्ठ नागरिकों का यथार्थ चित्रण किया गया है और इस पक्ष को जींवतता प्रदान करने वाले मुख्य पात्र हैं- आरण्या और ईशान।

आरण्या एवं ईशान एक ही अपार्टमेण्ट के अलग-अलग ब्लाकों के फ्लेटों में रहते हैं। कभी साथ में सैर करने जाते हैं तो कभी साथ में खाना खाते हैं। ईशान को परिवार से बिछुड़नें का दुःख जरूर है पर भाग्य में परिवार का इतना ही सुख लिखा होगा, यह मानकर जीते हैं। ईशान विधुर है काल कवलित बेटे की स्मृतियाँ याद करते हैं। वे रिटायर्ड अफसर हैं इसलिए आर्थिक संकट नही है। ये कृष्णमूर्ति के अध्येता हैं और भारतीय दर्शन आत्मा, परमात्मा और जीव जगत के चिंतन में रूचि है। सवेरे-सवेरे स्नान, ईश्वर की स्तुति और पैदल चलना उनका रोज का कार्य है। वे भारतीय संस्कृति की परिवार व्यवस्था में विश्वास रखते हैं। ईशान और आरण्या परस्पर विरोधी विचार के होते हुए भी मैत्री भाव के हैं। आरण्या स ार के आसपास होते हुए भी स्वावलंबी, स्वाभिमानी, सक्रिय और चुस्त दुरस्त है। टीवी देखना, कैसेट सुनना उनकी दिनचर्या के अनिवार्य हिस्से हैं। वे लेखिका हैं (कथाविन्यास में लेखकीय संदर्भ नही है और न ही उनके आर्थिक स्रोत पर कोई वर्णन है)। परन्तु अभी भी बारिश में छाता लेकर घूमने की ललक और रेंस्ट्रॉ में डिनर करने का उत्साह बना हुआ है। ऐसी जीवंत आरण्या के बलबूते पर ही उपन्यास की पाठनीयता की रूचि अंत तक रहती है। ईशान और आरण्या के बीच समान यही है कि वे मृत्यु के प्रति भयभीत नहीं हैं और परस्पर निजता में हस्तक्षेप न करते हुए सरगम गाते हैं, सुनते हैं। ''अकेले-अकेलों की अपनी जीवन शैली है। करते रहते हैं स्व निर्माण और आराम। परिवार का कोलाहल शोर, तनाव, ऊँच-नीच, अपमान, उपेक्षा और तनातनी आसपास नहीं आनंदपूर्वक जीवनयापन करते हैं।''[8]

आरण्या अपने गुजर चुके जीवन से ऊबी नहीं। वह जीवन के बाकी क्षणों में वही आकर्षण महसूस करती है। यह संदेश बुजुर्ग हो चुकी पीढ़ी के लिए है कि प्रकृति और समय नित नवीन है, फिर हम क्यों स्वंय की जरावस्था को अपने परिवेश पर लादें। ''समय तो हमारे बीहर भी है और आगे भी। वही है जो हमें आंतकित करता है। ...आगे बढ़कर क्षण को पकड़ लो जो तुम्हारा है। यह शाम, यह क्षण, यह बारिश लपककर हथेली में समेट लो। एक बार चूकी तो हमेशा के लिए खिसक जाएगी।''[9]

इस उपन्यास में दोनों सयाने पात्र अपने आस-पास की जिन्दगियों, नए और पुरानी पीढ़ियों के बीच के फासले, वृद् व्यक्तियों की जीवन शैली, उनकी समस्याओं पर अपने संवादों के द्वारा प्रकाश डालने का प्रयास किया है। साथ ही लेखिका ने संयुक्त परिवार की समस्याओं, वरिष्ठों की विवशता, जीवन की गहराती सांझ में वृदों का अकेलापन, उनके प्रति परिवार के

सदस्यों का उपेक्षा भाव, उनके प्रति बरती जाने वाली क्रुरता, परिवार में उनके शून्य अस्तित्व आदि का अंकन गहन अनुभूति के साथ किया है।

अन्त में लेखिका दो विपरीत स्वभाव वाले ईशान और आरण्या को एक साथ कर स्पष्ट करना चाहती है कि प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी मोड़ पर एक-दूसरे का सहारा चाहिए। खासकर वृद्वावस्था में, क्योंकि वह मनुष्य की नैसर्गिक आवश्यकता है। दोनों एक-दूसरे के पड़ोसी थे किन्तु हाथ बढ़ाते-बढ़ाते जीवन साथी बन जाते हैं। वे सोचते हैं कि दोनों शेष जीवन के सुख-दुःख को साथ-साथ बाँटे।

समय-सरगम उपन्यास है खुशी ढूंढ़ने की, जो पास बचा है उसमें संतोष करने का। उम्र के अंतिम पड़ाव पर पहुँच कर बुजुर्ग पछताते है कि वह क्या नहीं कर पाए और जो पा सकते थे उसे क्यों न पा सके और इसका कारण जो सामने आता है वह अधिकांशतः है-परिवार। वही परिवार जिसमें आज उनका कोई महत्व नहीं समझा जाता। उनके बलिदान-त्याग का कोई मूल्य नहीं समझा जाता और ऐसे परिवार की सहूलियत और खुशी के लिए उन्होंने लुटा दिया, अपना समय-सामर्थ्य और व्यक्तिगत खुशियाँ। आरण्या बुजुर्गों की इस स्थिति से बखूबी परिचित है इसीलिए उसे परिवार न होने का कभी पछतावा नहीं होता। वह परिवार की कमी को महसूस नहीं करती क्योंकि वो जानती है कि परिवार का होना कई मायनों में खतरनाक भी है विशेषकर वृदों के लिए। आरण्या ऐसा नहीं सोचती कि वह अकेली है और उसके आगे-पीछे नहीं तो कौन अंतिम समय में उसका कार्य करेगा, बजाए इसके वह आनंद से जीती जाती है और अपने जीवित और आनंदमय जीवन जीने पर प्रसन्न हैं।

''समय-सरगम।
समय एक राग।
नहीं, समय में निबंद्ध हैं अनेक राग।
अनेक बंदिशें।
राग-अनुराग और विराग, नेह-प्यार और दुलार,
समय बहाने-बहाने सम्मोहित करता है।
उदास करता है।
अंदर का पाखी उड़ान के लिए फड़फड़ाता है।
सिर्फ उदासी नहीं,
इसी के साथ टँका जीवितों के लिए गहरा आदर-भाव।........
समय के सातों स्वर परस्पर आबद्व हैं एक गूँथ में।
एक गहरे नेह का नाता बाँधे रहता है,
उन्हें स्थायी अंतरे में।...
संचित जीवन का यही राग।
आदिम षडज और निषाद।
पहला स्वर आदिम। जन्म-स्वर।
षडज, तरुणाई-स्वर।
निषाद इस मानवीय आख्यान का अंतिम स्वर।
बचपन, यौवन और यह पकते हुए मौसम का सुन्दर निषाद।
जब तक हो, इन्हें गुँथे रहने दो।
तभी है यह सरगम।
समय-सरगम।''[10]

संदर्भ

1. कृष्णा सोबती, समय-सरगम, राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष-2000, पृ. 89-90
2. वही, पृ. 74
3. वही, पृ. 110
4. वही, पृ. 111-112
5. वही, पृ. 98
6. वही, पृ. 99
7. वही, पृ. 108
8. वही, पृ. 108
9. वही, पृ. 17
10. वही, पृ. 152-153

यात्रा और जीवन : हिन्दी साहित्य में अनुभवों की विविधता

जगदीश सिंह रावत
शोधार्थी : (हिन्दी विभाग)
टाँटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

प्रस्तावना

यात्रा मानव जीवन का अभिन्न अंग है, जो न केवल भौगोलिक सीमाओं को लांघती है, बल्कि मानसिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक क्षितिजों का भी विस्तार करती है। हिंदी यात्रा साहित्य इस अनुभव को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। यह साहित्य मात्र स्थलों का वर्णन नहीं करता, बल्कि उसमें जीवन के विविध रंग, संस्कृतियों की झलक, सामाजिक विषमताएं, मानव संबंधों की गहराई और व्यक्तित्व विकास के संकेत भी मिलते हैं। हिंदी के यात्रा वृतांतों में लेखक न केवल पर्यटक होते हैं, बल्कि संवेदनशील दृष्टा भी होते हैं, जो अपने अनुभवों के माध्यम से जीवन की बहुरंगी तस्वीर पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं। चाहे वह राहुल सांकृत्यायन की बौद्ध भूमि की यात्रा हो, अथवा निर्मल वर्मा, प्रभा खेतान सभी में जीवन के विविध आयाम देखने को मिलते हैं।

यह मूल्यपरक अध्ययन हिंदी यात्रा साहित्य के माध्यम से जीवन के इन बहुरूपी आयामों की पहचान और विश्लेषण करने का प्रयास है। इसमें यह देखा जाएगा कि यात्रा वृतांतों में लेखक किस प्रकार जीवन के विविध मूल्यों जैसे मानवता, सहिष्णुता, जिज्ञासा, स्वतंत्रता और आत्मबोध को उद्घाटित करते हैं। यह शोध न केवल साहित्यिक दृष्टि से, बल्कि जीवन-दर्शन के स्तर पर भी एक समृद्ध अनुभव प्रदान करता है।

यात्रा साहित्य केवल स्थल विशेष का वर्णन मात्र नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के अंतर्जगत, समाज और समय से संवाद करने का माध्यम भी है। हिंदी यात्रा साहित्य, विशेषतः उत्तर-स्वतंत्रता काल से लेकर अब तक, जीवन के विविध रंगों को जिस संवेदनशीलता और आत्मीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है, वह इसे साहित्य की अन्य विधाओं से विशिष्ट बनाता है। प्रस्तुत शोधपत्र में यात्रा साहित्य को जीवन के बहुरूपी आयामों , आत्मबोध, सांस्कृतिक संवाद, प्रकृति चेतना, सामाजिक यथार्थ, स्त्री दृष्टि और मूल्य विघटन के आधार पर मूल्यांकन किया गया है।

उद्देश्य

इस शोध का प्रमुख उद्देश्य हिंदी यात्रा साहित्य में निहित जीवन के बहुरूपी आयामों का मूल्यपरक विश्लेषण करना है। यात्रा साहित्य केवल स्थलों का विवरण न होकर जीवन, समाज, संस्कृति और मानव अनुभवों का गहन प्रतिबिंब होता है। इस शोध के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि हिंदी यात्रा वृतांतों में लेखक किस प्रकार जीवन के विविध पक्षों जैसे सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक विविधता, आध्यात्मिक अनुभूति, मानव संबंधों और आत्मबोध को प्रस्तुत करते हैं।

शोध का उद्देश्य यह भी है कि यात्रा-वृत्तांतों में व्यक्त मूल्यों जैसे मानवता, सहिष्णुता, स्वतंत्रता, जिज्ञासा और जीवन-दर्शन

को उजागर किया जाए तथा यह देखा जाए कि ये मूल्य पाठकों के चिंतन और दृष्टिकोण को कैसे प्रभावित करते हैं। साथ ही, यह अध्ययन हिंदी यात्रा साहित्य को एक मूल्यपरक दस्तावेज के रूप में स्थापित करने का प्रयास करता है, जो न केवल साहित्यिक महत्व रखता है, बल्कि जीवन-दृष्टि को भी समृद्ध करता है।

बीज बिन्दुः- मूल्यपरक, आत्मबोध, अंतस्संवाद, सह-अस्तित्व ,वैचारिक संघर्ष, आत्म-चिंतन, अस्मिता, आत्मसंवेदन, सामाजिक यथार्थ, स्त्रीदृष्टि, आत्मविश्लेषण।

यात्रा और जीवन : हिन्दी साहित्य में अनुभवों की विविधता

यात्रा मानव जीवन की अनवरत परंपरा रही है। प्रारंभ में यह आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु थी - जल, भोजन, और आश्रय की खोज में। धीरे-धीरे यह जिज्ञासा, अनुभव और आत्मबोध का माध्यम बनी। यात्राओं ने सभ्यताओं को जोड़ा, संस्कृतियों का संगम कराया। राम की वनयात्रा हो या बुद्ध की ज्ञानयात्रा प्रत्येक ने जीवन को नई दिशा दी। आधुनिक युग में यात्रा केवल गंतव्य तक पहुँचना नहीं, बल्कि आत्म-अन्वेषण की एक साधना बन गई है। यह परंपरा आज भी विकसित होती जा रही है, तकनीक और सुविधा के संग, परंतु इसकी आत्मा आज भी अनुभव और परिवर्तन में निहित है। यात्रा साहित्य केवल स्थानों के विवरण तक सीमित न होकर सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों का सजीव दस्तावेज होता है। यह साहित्य यात्रियों के अनुभवों के माध्यम से विभिन्न समाजों की जीवनशैली, रीति-रिवाज, भाषा, धर्म, कला और परंपराओं का चित्रण करता है। इससे पाठकों को अन्य संस्कृतियों को समझने, उनके दृष्टिकोण को अपनाने और पूर्वाग्रहों से मुक्त होने का अवसर मिलता है। यात्रा साहित्य सामाजिक संरचना, वर्ग भेद, लैंगिक भूमिकाओं और सांस्कृतिक विविधताओं को उजागर करता है, जिससे समाज की गहन समझ विकसित होती है। यह सांस्कृतिक संवाद और सह-अस्तित्व को बढ़ावा देता है। इतिहास, भूगोल और मानवता को जोड़ते हुए यात्रा साहित्य समय और स्थान की सीमाओं को पार कर वैश्विक चेतना का विस्तार करता है। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में इसकी प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ गई है, क्योंकि यह मानवता को जोड़ने वाला एक सेतु बन चुका है। यात्रा मनुष्य की जिज्ञासा, विस्तार और चेतना की अभिव्यक्ति है। भारतीय संस्कृति में यात्रा को 'तीर्थयात्रा' के रूप में एक आध्यात्मिक साधना माना गया है। यही यात्रा जब साहित्य के माध्यम से अनुभव की अभिव्यक्ति बनती है, तो वह केवल स्थल चित्रण न रहकर सामाजिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक संवाद बन जाती है।

हिंदी साहित्य में यात्रा-वृत्तांत एक समृद्ध विधा के रूप में विकसित हुआ है। राहुल सांकृत्यायन, जिन्हें यात्रा साहित्य का जनक कहा जाता है, अतः इसे साहित्यिक और दार्शनिक दोनों धरातलों पर प्रतिष्ठित किया। उनकी यात्राएँ केवल इतिहास या भूगोल का दस्तावेज नहीं, बल्कि विचारों की यात्रा थी।[1]

यात्रा का साहित्यिक स्वरूप मानवीय अनुभूतियों, अनुभवों और संवेदनाओं की अद्भुत अभिव्यक्ति है। जब मनुष्य यात्रा पर निकलता है, तो वह केवल स्थान नहीं बदलता, वह समय, संस्कृति और आत्मा की गहराइयों में उतरता है। यात्रा-वृत्तांत, यात्रानुभव, यात्रास्मरण साहित्य की ये विधाएँ यात्राओं को शब्दों के माध्यम से जीवंत करती हैं। कालिदास की मेघदूत से लेकर राहुल सांकृत्यायन की तिब्बत यात्रा तक, यात्राएँ साहित्य का माध्यम बनकर पाठकों को एक नए संसार से परिचित कराती हैं। इन रचनाओं में केवल भौगोलिक चित्रण नहीं होता, बल्कि जीवन-दर्शन, मनोभाव, और सामाजिक परिप्रेक्ष्य की गूढ़ झलकियाँ मिलती हैं। यात्रा साहित्य न केवल स्थानों का, बल्कि भीतर की यात्राओं का दस्तावेज़ होता है, जो पाठक को भी सहयात्री बना लेता है। इस प्रकार, यात्रा साहित्य अनुभव का वह सेतु है, जो स्थान, समय और आत्मा को जोड़ता है।

प्रारंभिक हिंदी यात्रा साहित्य धार्मिक यात्राओं और तीर्थयात्रा विवरणों तक सीमित था, लेकिन जैसे-जैसे सामाजिक और राजनीतिक चेतना का विकास हुआ, यात्रा साहित्य में विचारों, संस्कृतियों, और मनोवैज्ञानिक जटिलताओं की गूंज भी सुनाई देने लगी। यात्रा लेखक अपनी दृष्टि, संवेदना और वैचारिकता के साथ एक नए क्षेत्र, सभ्यता, संस्कृति से जुड़ता है और पाठक के लिए एक नई अनुभव-यात्रा की रचना करता है। हेमंत शर्मा यात्रा साहित्य को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखते हुए लिखते हैं - "यह साहित्य केवल दृश्य विवरण नहीं, सामाजिक संरचना की परछाई भी है।"

आत्म-खोज और अनुभव की प्रक्रिया एक गूढ़ और गहन यात्रा है, जो बाहर नहीं, भीतर की ओर प्रवाहित होती है। यह यात्रा न तो पगडंडियों पर चलती है, न ही किसी गंतव्य की तलाश में होती है; यह मौन के माध्यम से आत्मा के आलोक तक पहुँचने का प्रयास है। जब व्यक्ति संसार की चकाचौंध से हटकर स्वयं के प्रश्नों से साक्षात्कार करता है, तब भीतर की यात्रा आरंभ होती है। यह यात्रा साधना है, आत्म-मंथन है, जहाँ हर अनुभव एक दर्पण बनकर खड़ा होता है। कबीर के दोहे, उपनिषदों के विचार, या रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि सभी आत्म-खोज की इस प्रक्रिया को शब्दों में बाँधते हैं। यह यात्रा संघर्षो से भरपूर होती है, परंतु अंततः यही व्यक्ति को उसकी असली पहचान से जोड़ती है। भीतर की यात्रा आत्मा का साक्षात्कार है, जहाँ शांति, सत्य और जीवन का परम उद्देश्य मिलता है।

वैचारिक संघर्ष की यात्रा मनुष्य की चेतना के द्वंद्व से उपजती एक गहन और निरंतर प्रक्रिया है। यह यात्रा बाहरी नहीं, बल्कि विचारों के मंथन से जन्मी भीतरी आग है, जहाँ विश्वास, परंपरा, तर्क और अनुभव आपस में टकराते हैं। यह वह पथ है जिस पर चलते हुए व्यक्ति अपनी जड़ताओं से प्रश्न करता है, रूढ़ियों को चुनौती देता है, और नवीन दृष्टिकोणों को आत्मसात करता है। बुद्ध का संन्यास, गाँधी का सत्य और असहयोग का मार्ग, या विवेकानंद का आत्मबोध, ये सब वैचारिक संघर्ष की ही परिणतियाँ हैं। साहित्य में यह यात्रा पात्रों के भीतर की उथल-पुथल से प्रकट होती है - धर्मवीर भारती के अंधायुग से लेकर मोहन राकेश के आषाढ़ का एक दिन तक। यह संघर्ष मनुष्य को मात्र विचारशील नहीं, आत्मबोध की ओर उन्मुख करता है। वैचारिक संघर्ष की यह यात्रा अंततः ज्ञान, विवेक और सत्य की ओर एक निर्णायक प्रस्थान है।

हिंदी यात्रा साहित्य में अनेक कृतियाँ आत्म-खोज और आत्मबोध के आयाम को सामने लाती हैं। राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी तिब्बत यात्रा' न केवल बौद्ध धर्म और तिब्बती संस्कृति की खोज है, बल्कि लेखक की आत्मा की भी एक बौद्धिक यात्रा है। वे लिखते हैंः "जिस दिन मैं ल्हासा पहुँचा, मेरा मन बोझिल था, लेकिन वही से मेरी आंतरिक यात्रा आरंभ हुई।"[3]

यहाँ तक यात्रा में स्त्रीदृष्टि आत्मबोध की यात्रा सामाजिक बंधनों, परंपरागत अपेक्षाओं और लिंग आधारित अन्यायों के अंधकार से उभरती हुई चेतना की प्रकाश यात्रा है। यह यात्रा केवल अधिकारों की नहीं, बल्कि पहचान, अस्मिता और आत्मस्वीकृति की खोज है। वर्षो तक स्त्री को दूसरों की परिभाषाओं में बाँधने की कोशिश की गई, पर जब उसने स्वयं को समझना शुरू किया, तब उसका आत्मबोध जागा। यह यात्रा मीरा की भक्ति से लेकर महादेवी वर्मा की करुणा, अमृता प्रीतम की विद्रोहपूर्ण प्रेमभावना, और मन्नू भंडारी की यथार्थ चेतना तक फैली है। स्त्री का आत्मबोध उसके भीतर की चुप्पियों को भाषा देता है, उसे न केवल प्रेम में, बल्कि विचार, कर्म और स्वत्व में भी स्वतंत्र बनाता है। यह यात्रा निरंतर है, हर पीढ़ी की स्त्री इसे नए संदर्भों में जीती है। यह आत्मबोध उसकी सबसे बड़ी शक्ति है, जो उसे मौन से मुखरता और परतंत्रता से मुक्ति की ओर ले जाता है।

प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या' स्त्री अस्मिता की खोज है, जो विदेश यात्रा के बहाने स्वयं के अस्तित्व को नए रूप में परिभाषित करती है। वह यात्रा के संदर्भ में कहती हैं - "मैंने भारत को वहीं पर ढूँढा, जहाँ सबकुछ विदेशी था।" यह आत्म-प्रत्यय ही यात्रा साहित्य को एक गहरे भावबोध से जोड़ता है।

सांस्कृतिक अंतस्संवाद और मूल्य द्वंद्व एक जटिल, परंतु आवश्यक प्रक्रिया है, जहाँ विभिन्न सांस्कृतिक धारणाएँ, परंपराएँ और जीवन-मूल्य एक-दूसरे से टकराते, संवाद करते और अंततः किसी संतुलन की ओर बढ़ते हैं। यह अंतस्संवाद न केवल वैश्वीकरण के युग में तीव्र हुआ है, बल्कि भीतर ही भीतर समाज की चेतना को भी चुनौती दे रहा है। परंपरा और आधुनिकता, सामूहिकता और व्यक्तिवाद, नैतिकता और उपभोक्तावाद जैसे मूल्य जब एक ही सांस्कृतिक धरातल पर सह-अस्तित्व की कोशिश करते हैं, तब द्वंद्व उत्पन्न होता है।

साहित्य, सिनेमा और लोकवाणी इस द्वंद्व को सजीव बनाते हैं -जैसे सत्यजीत राय की चारुलता, अज्ञेय की शेखरः एक जीवनी, यह द्वंद्व कभी विघटनकारी होता है, कभी नव-सृजन का कारण बनता है। सांस्कृतिक अंतःसंवाद जहाँ विविधता को पोषित करता है, वहीं मूल्य द्वंद्व आत्ममंथन और नए संतुलन की संभावनाओं को जन्म देता है।

पूर्व और पश्चिम का द्वंद्व जब यात्रा के संदर्भ में देखा जाता है, तो वह मात्र स्थानों की दूरी नहीं, बल्कि जीवन-दृष्टियों

की भिन्नता का सजीव अनुभव बन जाता है। यात्राएँ जब पूर्व से पश्चिम की ओर होती हैं, तो यात्री केवल भौगोलिक सीमाएँ नहीं लांघता, वह सांस्कृतिक मूल्यों, परंपराओं और सोच के धरातलों पर भी एक मंथन से गुजरता है। पूर्व की गहराई, आध्यात्मिकता और सामूहिक चेतना जब पश्चिम की तर्कशीलता, स्वतंत्रता और भौतिक प्रगति से टकराती है, तब यह यात्रा आत्ममंथन का रूप ले लेती है।

निर्मल वर्मा की 'चीड़ों पर चाँदनी' में लेखक की संवेदना यूरोप की ठंडी सभ्यता में भारतीय ऊष्मा की खोज करती है। वे लिखते हैं - "यहाँ सबकुछ अनुशासित है, लेकिन संवादहीन। वहाँ की सड़कों पर चलते हुए मुझे बनारस की गलियाँ याद आईं, जहाँ अजनबी भी अपना लगता है।"[4]

यात्रा साहित्य परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य करता है। परंपरागत यात्रा साहित्य तीर्थयात्राओं, सांस्कृतिक मान्यताओं और स्थानीय जीवनशैली का चित्रण करता था, जिसमें स्थान विशेष की आध्यात्मिक और सामाजिक पहचान उभरकर सामने आती थी। वहीं आधुनिक यात्रा साहित्य व्यक्तिगत अनुभव, आत्मचिंतन और वैश्विक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। इसमें तकनीक, परिवहन और संचार साधनों के विकास के कारण यात्राएं अधिक सहज और व्यापक हुई हैं। यह साहित्य अब केवल स्थल-वर्णन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संवाद, सामाजिक बदलाव और पर्यावरणीय चेतना को भी समाहित करता है। परंपरा के प्रति सम्मान और आधुनिक दृष्टिकोण के समावेश से यह साहित्य विविधताओं को जोड़ता है। यात्रा साहित्य आज के दौर में सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित रखते हुए नई सोच, अनुभव और विमर्श को सामने लाने का सशक्त माध्यम बन चुका है, जो परंपरा और आधुनिकता को संतुलित रूप से प्रस्तुत करता है।

उदयन वाजपेयी की जापान यात्रा में अनुशासन और तकनीकी तरक्की की प्रशंसा है, पर वे भारतीय सहजता को कहीं अधिक मानवीय मानते हैं। उनका निष्कर्ष यह है कि "संस्कृति वह नहीं जो केवल बचाकर रखी जाए, बल्कि वह है जो संबंध बनाकर जी जाए।"[5]

आधुनिक यात्रा साहित्य केवल रोमांच और स्थलों के सौंदर्य-वर्णन तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि इसमें प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता और पर्यावरणबोध की भावना भी गहराई से जुड़ गई है। यात्राएं अब मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंध को समझने और उसे सहेजने का माध्यम बन रही हैं। जब एक यात्री किसी पर्वत, नदी, जंगल या समुद्र के पास पहुंचता है, तो वह केवल दृश्य नहीं देखता, बल्कि उस स्थान की जैव विविधता, पारिस्थितिक संतुलन और पर्यावरणीय समस्याओं का भी साक्षी बनता है।

यात्रा साहित्य के माध्यम से यह संभव होता है कि पाठक प्रकृति की सुंदरता के साथ-साथ उसके दोहन और विनाश के खतरों को भी समझें। इससे पर्यावरण संरक्षण की चेतना उत्पन्न होती है। सतत पर्यटन (सस्टेनेबल टूरिज्म) की आवश्यकता और जिम्मेदार यात्री बनने का संदेश इसी माध्यम से प्रसारित होता है। आज जबकि जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और वनों की कटाई जैसी समस्याएं विकराल रूप ले चुकी हैं, यात्रा साहित्य पर्यावरण के प्रति एक नई दृष्टि विकसित करने का कार्य कर रहा है। यह न केवल प्रकृति से जुड़ाव बढ़ाता है, बल्कि उसे बचाने की प्रेरणा भी देता है।

यात्रा साहित्य में प्रकृति के साथ तादात्म्य का भाव एक गहन अनुभव के रूप में प्रकट होता है। जब यात्री किसी पर्वत, नदी, वन या समुद्र की यात्रा करता है, तो वह केवल स्थल का निरीक्षण नहीं करता, बल्कि प्रकृति के साथ एक आत्मीय संबंध स्थापित करता है। यह साहित्य प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक जीवंत सहयात्री के रूप में प्रस्तुत करता है।

प्रकृति के विविध रंग, ध्वनियाँ और रूप यात्रियों की अनुभूति में गहराई जोड़ते हैं। यात्रा साहित्य प्रकृति के सौंदर्य, शांति और रहस्य को उजागर करते हुए मानव और प्रकृति के बीच के अंतरसंबंध को समझने में सहायक होता है। साथ ही यह पाठकों में संवेदनशीलता, संरक्षण और सह-अस्तित्व की चेतना भी जाग्रत करता है। इस प्रकार, यात्रा साहित्य प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर न केवल भौतिक यात्रा का, बल्कि आत्मिक यात्रा का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

धर्मवीर भारती की यात्रा रचनाओं में प्रकृति एक जड़ वस्तु नहीं, बल्कि 'प्राणी' के रूप में उभरती है। उनकी हिमालय यात्रा में वे लिखते हैं - "पहाड़ों से बात करते हुए मैं स्वयं को छोटा नहीं, बल्कि विराट अनुभव करता हूँ।"[6]

यात्रा साहित्य में पर्यावरणीय चेतना एक गहरी और प्रासंगिक भूमिका निभाती है। यह केवल प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण नहीं करता, बल्कि पर्यावरण से जुड़ी संवेदनाओं, संकटों और समाधान की खोज को भी उजागर करता है। लेखक जब किसी स्थान की प्राकृतिक विविधता, पारिस्थितिकी या स्थानीय जीवनशैली का वर्णन करता है, तो वह उस क्षेत्र की पर्यावरणीय चुनौतियों की ओर भी ध्यान आकर्षित करता है। यह साहित्य पाठकों को प्रकृति के संरक्षण, जैव विविधता की रक्षा और मानवीय हस्तक्षेप के दुष्परिणामों के प्रति जागरूक करता है, जिससे साहित्य सामाजिक जिम्मेदारी का माध्यम बनता है।

डॉ. सत्यव्रत शास्त्री अपनी विदेश यात्राओं में वहाँ की प्रकृति और वहाँ की मानवीय सभ्यता के संबंधों की तुलना करते हुए भारत के साथ उसके पर्यावरणीय जुड़ाव की भी चर्चा करते हैं। उनका मानना है ''कि प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता ही सांस्कृतिक परिपक्वता की पहचान है।''[7]

यात्रा साहित्य समकालीन चेतना और सामाजिक यथार्थ का सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। यह केवल स्थलों का वर्णन नहीं करता, बल्कि उन स्थानों की सामाजिक स्थितियों, आर्थिक विषमताओं और सांस्कृतिक बदलावों को भी उजागर करता है। लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखे गए सामाजिक अंतर्विरोधों, जातिगत भेदभाव, शहरीकरण के प्रभाव और स्थानीय जनजीवन की जटिलताओं को संवेदनशीलता से प्रस्तुत करता है। समकालीन मुद्दों जैसे विस्थापन, पर्यावरण संकट और सांस्कृतिक अस्मिता को भी यह साहित्य प्रभावशाली ढंग से सामने लाता है, जिससे पाठक समाज के बदलते यथार्थ से जुड़ पाते हैं।

यात्रा साहित्य केवल प्राकृतिक सौंदर्य या सांस्कृतिक विविधता का वर्णन मात्र नहीं है, बल्कि यह समाज की गहराइयों में छिपी असमानताओं और विडंबनाओं का भी सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। जब कोई लेखक किसी नए स्थान की यात्रा करता है, तो वह वहाँ की जीवनशैली, आर्थिक स्थिति, शिक्षा, जातीय संरचना और लैंगिक भेदभाव जैसे पहलुओं से भी रूबरू होता है। यही अनुभव उसके लेखन में सामाजिक विषमता का दस्तावेज बन जाते हैं।

अनिल यादव की 'वह भी कोई देश है महाराज' नेपाल की राजनीति, गरीबी और त्रासद यथार्थ का चित्र प्रस्तुत करती है। वे लिखते हैं - "सरहदें तय कर देती हैं कि कौन कितने रुपये में बिकेगा।"[8]

यात्रा साहित्य में राष्ट्र और भाषा का विषय अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि यह दोनों हमारी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक समरसता के मूल स्तंभ हैं। जब यात्री किसी राष्ट्र की भूमि पर कदम रखते हैं, तो वे केवल भौगोलिक सीमाओं का ही नहीं, बल्कि उस देश की भाषा, उसकी सांस्कृतिक विविधता और भावनात्मक जुड़ाव का भी अनुभव करते हैं। भाषा, राष्ट्र की आत्मा होती है, जो उसकी परंपराओं, इतिहास और लोकजीवन को संजोए रखती है।

यात्रा के दौरान भाषा के विभिन्न रूप और बोलियाँ यात्रियों के लिए नए अनुभव और समझ के द्वार खोलती हैं। यह प्रक्रिया राष्ट्र के भीतर विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच संवाद और सह-अस्तित्व को भी दर्शाती है। भाषा की यात्रा में स्थानीय भाषाओं की विविधता, उनका संरक्षण और उनकी भूमिका पर भी प्रकाश डाला जाता है।

अमृतलाल नागर की 'पूर्वी पाकिस्तान यात्रा वृतांत' न केवल राजनीतिक उथल-पुथल का सजीव दस्तावेज है, बल्कि यह भारतीयता की भाषाई एकता पर भी गहरी टिप्पणी करता है। वे लिखते हैं - "भाषा का झगड़ा कभी भी केवल भाषा का नहीं होता, उसमें अस्मिता की छाया होती है।"[9]

राजेंद्र यादव जैसे लेखक भी अपनी विदेश यात्राओं में जातीय और भाषायी भेदभाव की व्यथा को स्वर देते हैं। यह यथार्थ दृष्टि यात्रा साहित्य को सच्चे अर्थों में प्रगतिशील और विचारोत्तेजक बनाती है।

यात्रा साहित्य में स्त्री दृष्टि एक नया और सशक्त आयाम जोड़ती है, जहाँ यात्रा केवल भौतिक भ्रमण नहीं, बल्कि आत्म-खोज और स्वतंत्रता की अनुभूति बन जाती है। पारंपरिक समाज में जहां महिलाओं की सीमित भूमिकाएँ रहीं, वहीं यात्रा उनके लिए एक माध्यम होती है अपने बंधनों से मुक्त होकर स्वयं को पहचानने और व्यक्त करने का स्त्रियाँ यात्रा के दौरान नए स्थानों, संस्कृति और अनुभवों से अपनी सोच और दृष्टिकोण को विस्तृत करती हैं। यह यात्रा उन्हें सामाजिक बंधनों, लिंग आधारित भेदभाव और पारिवारिक जिम्मेदारियों से कुछ समय के लिए दूर लेकर आती है, जिससे उन्हें मानसिक,

भावनात्मक और सामाजिक स्वतंत्रता का अनुभव होता है।

स्त्री के लिए यात्रा का सामाजिक संदर्भ पारंपरिक सीमाओं और नए अवसरों के बीच का संघर्ष दर्शाता है। सामाजिक संरचनाओं में महिलाओं की यात्रा अक्सर सीमित मानी जाती थी, क्योंकि घर और परिवार की जिम्मेदारियाँ उन्हें बाहर निकलने से रोकती थीं। कई संस्कृतियों में महिला की स्वतंत्र यात्रा पर रोक-टोक और सुरक्षा संबंधी चिंताएँ आम थीं। लेकिन समय के साथ महिलाओं की यात्रा ने सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव लाना शुरू किया है। आज की स्त्रियाँ न केवल व्यक्तिगत अनुभव और आत्म-स्वतंत्रता के लिए यात्रा करती हैं, बल्कि शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, और सामाजिक अधिकारों की समझ बढ़ाने के लिए भी यात्रा को अपनाती हैं। यह उनके सामाजिक सशक्तिकरण और आत्मनिर्भरता का प्रतीक बन गई है।

कृष्णा सोबती, मृणाल पांडे, अनामिका और कुसुम अंसल जैसी लेखिकाओं की यात्राएँ सामाजिक बंदिशों से बाहर निकलने का उपक्रम हैं। कुसुम अंसल के यात्रा लेखन में स्त्री की भावनात्मक गहराई, दूरी और आत्मनिर्णय की व्यथा झलकती है। 'दूरी' उपन्यास में स्त्री पात्र की विदेश यात्रा उसे आत्मनिर्भर और आत्मविश्लेषी बनाती है - "यात्रा के हर मोड़ पर जैसे मेरी पहचान की एक परत और खुलती गई।"[10]

यात्रा स्त्री के जीवन में आत्मविश्वास और स्वाधीनता को बढ़ावा देने का एक शक्तिशाली माध्यम है। जब महिला अपनी सीमाओं को तोड़कर नए स्थानों की यात्रा करती है, तो वह अपने अंदर छिपी शक्ति और साहस को पहचानती है। यात्रा के दौरान सामने आने वाली चुनौतियाँ, नई परिस्थितियाँ और विभिन्न संस्कृतियों से संवाद स्त्री को मानसिक और भावनात्मक रूप से सशक्त बनाते हैं।

कृष्णा सोबती की 'यात्रिक' में स्त्री की यात्रा न केवल दैहिक गमन है, बल्कि वह चेतना और विचार की यात्रा है। वे लिखती हैं - "जो स्त्री चल पड़ती है, वह लौटने के लिए नहीं, बदलने के लिए निकलती है।"[11]

यात्रा साहित्य अब न केवल सूचना और ज्ञान का साधन है, बल्कि यह आत्मचिंतन, जीवन-मूल्य और सांस्कृतिक पहचान का गहन माध्यम है। हिंदी यात्रा साहित्य ने इस विधा को केवल स्थल विवरण से निकालकर भाव, विचार और दर्शन की भूमि पर प्रतिष्ठित किया है।

यह साहित्य यह भी सिद्ध करता है कि "यात्रा केवल बाहर जाने का नहीं, भीतर लौटने का नाम है।" यात्रा साहित्य समाज का दर्पण, व्यक्ति की आत्मा का संवाहक और समय की गति का संवेदनशील चित्रकार है। अजय तिवारी के अनुसार, "हिंदी यात्रा साहित्य ने अपने समकालीन यथार्थ और सांस्कृतिक अंतर्संबंधों को जिस निरंतरता से प्रस्तुत किया है, वह इसे एक विशिष्ट साहित्यिक विमर्श में परिवर्तित करता है।"[12]

सारांशः

हिंदी यात्रा साहित्य केवल स्थलों का वर्णन न होकर जीवन, संस्कृति, समाज और आत्मबोध की गहन अभिव्यक्ति है। यह साहित्य मानवता, सहिष्णुता, स्वतंत्रता, जिज्ञासा और पर्यावरण चेतना जैसे मूल्यों को उजागर करता है। राहुल सांकृत्यायन, निर्मल वर्मा, प्रभा खेतान, अमृतलाल नागर, अनिल यादव जैसे लेखकों ने इसे साहित्यिक, सामाजिक और दार्शनिक दृष्टि दी है। स्त्री-दृष्टि से यात्रा साहित्य आत्मनिर्भरता, अस्मिता और मुक्ति की अनुभूति बनता है। यह साहित्य सांस्कृतिक संवाद, मूल्य-द्वंद्व, सामाजिक विषमताओं और पर्यावरणीय चिंताओं को भी उजागर करता है। प्रकृति से तादात्म्य और वैश्विक चेतना इसमें प्रमुख हैं। परंपरा और आधुनिकता के बीच यह संतुलन स्थापित करता है। हिंदी यात्रा साहित्य अब न केवल सूचनात्मक बल्कि आत्मिक और वैचारिक अनुभव का सशक्त माध्यम बन चुका है, जो जीवन के बहुरूपी आयामों को गहराई से प्रस्तुत करता है और पाठक को आत्मचिंतन की यात्रा पर ले जाता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. हेमंत शर्मा - यात्रा साहित्य का समाजशास्त्र, आलोचना पत्रिका, नई दिल्ली।
2. राहुल सांकृत्यायन - मेरी तिब्बत यात्रा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. निर्मल वर्मा - चीड़ों पर चाँदनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. उदयन वाजपेयी - जापान यात्रा, संवाद प्रकाशन, भोपाल।
6. धर्मवीर भारती - संपूर्ण यात्रा लेखन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
7. सत्यव्रत शास्त्री - विश्व यात्रा साहित्य, साहित्य भारती, वाराणसी।
8. अनिल यादव - वह भी कोई देश है महाराज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. अमृतलाल नागर - पूर्वी पाकिस्तान यात्रा वृत्तांत, भारत भारती, इलाहाबाद।
10. कुसुम अंसल - दूरी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
11. कृष्णा सोबती - यात्रिक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. अजय तिवारी - हिंदी यात्रा साहित्य का विमर्श, आलोचना, 2012, नई दिल्ली।

जगदीश सिंह रावत
पता : वार्ड न.10, 24ASC-
नई मण्डी घड़साना, जिला गंगानगर।
मो.न. -9667359940
मेल आई.डी- jsrawatkr@gmail.com

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

आधुनिकीकरण और बुजुर्गों के प्रति युवाओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन

डॉ. चन्द्रशेखर सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

परिचय

वर्तमान समय में समाज में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है, जिसका प्रमुख कारण आधुनिकीकरण (Modernization) है। यह प्रक्रिया केवल भौतिक जीवनशैली को ही नहीं, बल्कि सामाजिक संरचनाओं, संबंधों और मूल्यों को भी प्रभावित कर रही है। विशेष रूप से पारिवारिक ढांचे और पीढ़ियों के बीच संबंधों में एक नया स्वरूप उभरकर सामने आ रहा है। पारंपरिक भारतीय समाज में बुजुर्गों को सम्मान, मार्गदर्शन और अनुभव का प्रतीक माना जाता था। वे परिवार के निर्णयों में केंद्रीय भूमिका निभाते थे। किंतु आधुनिकता की लहर ने युवा पीढ़ी की सोच, जीवनशैली और प्राथमिकताओं को नया आयाम दिया है।

शिक्षा, तकनीक, शहरीकरण, वैश्वीकरण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बढ़ती चेतना ने युवाओं को अधिक आत्मनिर्भर और व्यावसायिक दृष्टिकोण वाला बना दिया है। इसका प्रभाव यह पड़ा है कि अब बुजुर्गों के प्रति उनका दृष्टिकोण पहले जैसा श्रद्धा और समर्पण आधारित न होकर, व्यावहारिक एवं सीमित होता जा रहा है। कई मामलों में बुजुर्गों को अनुपयोगी या 'बोझ' समझा जाने लगा है, जिससे सामाजिक और भावनात्मक दूरी बढ़ती जा रही है।

इस शोध में हम यह विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार आधुनिकीकरण ने युवाओं की सोच में परिवर्तन किया है, विशेषतः उनके द्वारा बुजुर्गों के प्रति अपनाए जाने वाले व्यवहार, दृष्टिकोण और भावनात्मक संबंधों में किस प्रकार का बदलाव आया है। यह अध्ययन न केवल सामाजिक बदलाव को समझने में सहायक होगा, बल्कि बुजुर्गों के कल्याण और अंतःपीढ़ीय संबंधों को सुदृढ़ करने के संभावित उपायों की भी पहचान करेगा।

भारतीय समाज में सदियों से बुजुर्गों को ज्ञान, अनुभव और मार्गदर्शन का स्रोत माना गया है। वे पारिवारिक संरचना के प्रमुख स्तंभ होते थे, और परिवार में उनके निर्णयों को विशेष महत्व दिया जाता था। किंतु आधुनिकीकरण की तेज़ प्रक्रिया, जिसमें शहरीकरण, शिक्षा का प्रसार, तकनीकी विकास, वैश्वीकरण और व्यक्तिवाद शामिल हैं, ने पारिवारिक संबंधों की परिभाषा को पुनः गढ़ा है। विशेष रूप से युवा पीढ़ी के सोचने, समझने और व्यवहार करने के तरीके में बड़ा बदलाव आया है, जिसका सीधा प्रभाव बुजुर्गों के प्रति उनके दृष्टिकोण पर पड़ा है।

वर्तमान समय में युवा स्वतंत्रता, कैरियर प्राथमिकता और व्यक्तिगत जीवन की गुणवत्ता को अधिक महत्व देते हैं। इस कारण बुजुर्गों के प्रति उनकी संवेदनशीलता और सहभागिता में कमी देखी जा रही है। पारंपरिक संयुक्त परिवारों की जगह न्यूक्लियर फैमिली ने ले ली है, जिससे बुजुर्ग कई बार अकेलेपन, उपेक्षा और सामाजिक अलगाव का सामना कर रहे हैं।

वाराणसी क्षेत्र का संदर्भ

वाराणसी, एक प्राचीन सांस्कृतिक और धार्मिक नगरी होने के साथ-साथ, अब तेजी से शहरीकृत होता क्षेत्र बन चुका है। यहाँ शिक्षा, नौकरी और व्यापार की संभावनाएं बढ़ने से युवा वर्ग आधुनिक जीवनशैली की ओर अग्रसर हो रहा है। एक सर्वेक्षण के अनुसार—

- वाराणसी महानगर क्षेत्र में लगभग 68% परिवार न्यूक्लियर फैमिली संरचना में रहते हैं।
- 18-35 वर्ष के युवाओं में से 61% ने यह स्वीकार किया कि वे पारिवारिक निर्णयों में बुजुर्गों की राय को अब उतना महत्वपूर्ण नहीं मानते जितना पहले माना जाता था।
- वहीं, बुजुर्गों के साथ रहने वाले युवाओं में से 47% ने माना कि उनके पास बुजुर्गों के लिए पर्याप्त समय नहीं है।
- एक स्थानीय सामाजिक संगठन की रिपोर्ट (2023) में यह पाया गया कि बुजुर्गों में से 38% को सामाजिक उपेक्षा का अनुभव होता है, विशेषकर स्वास्थ्य, आर्थिक और भावनात्मक मामलों में।

आवश्यकता और उद्देश्य

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने वाराणसी जैसे पारंपरिक शहरों में भी पीढ़ियों के बीच दूरी बढ़ाई है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि युवाओं का दृष्टिकोण बुजुर्गों के प्रति क्यों और कैसे बदल रहा है, इसके सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक कारण क्या हैं, और इससे समाज पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

यह शोध न केवल पीढ़ियों के बीच बढ़ती दूरी को समझने का एक प्रयास है, बल्कि यह नीतिगत सुझावों की ओर भी संकेत करता है जो बुजुर्गों की सामाजिक स्थिति को सशक्त बना सकते हैं।

शोध उद्देश्य

1. यह विश्लेषण करना कि आधुनिकीकरण ने युवाओं की सोच, व्यवहार एवं जीवनशैली को किस प्रकार प्रभावित किया है।
2. बुजुर्गों के प्रति युवाओं के दृष्टिकोण में आए परिवर्तनों की पहचान करना, विशेषतः सम्मान, देखभाल और पारिवारिक सहभागिता के संदर्भ में।
3. वाराणसी क्षेत्र में युवाओं और बुजुर्गों के मध्य संबंधों का सामाजिक और भावनात्मक विश्लेषण करना।
4. संयुक्त परिवार बनाम एकल परिवार प्रणाली में बुजुर्गों की स्थिति की तुलना करना।
5. यह अध्ययन करना कि आधुनिक शिक्षा, तकनीकी उपकरणों, एवं डिजिटल संस्कृति ने अंतःपीढ़ीय संवाद (Intergenerational Communication) को किस रूप में प्रभावित किया है।
6. बुजुर्गों द्वारा अनुभव की जा रही उपेक्षा, अकेलापन और सामाजिक अलगाव की प्रकृति को समझना।
7. ऐसे सामाजिक और नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना जो युवाओं और बुजुर्गों के बीच संबंधों को सुदृढ़ बना सकें।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

1. टैलकॉट पार्सन्स का संरचनात्मक-कार्यात्मक सिद्धांत (Structural Functionalism)

पार्सन्स के अनुसार समाज एक संतुलित संरचना है, जिसमें प्रत्येक संस्था (जैसे परिवार) की अपनी भूमिका होती है। पारंपरिक समाज में परिवार एक मुख्य सामाजिक संस्था के रूप में कार्य करता था, जिसमें बुजुर्गों को सम्मान और निर्णय की भूमिका दी जाती थी।

किन्तु आधुनिकीकरण के प्रभाव से जब परिवार की संरचना बदलती है (संयुक्त से एकल परिवार की ओर), तब पारंपरिक भूमिकाएँ कमजोर हो जाती हैं और बुजुर्गों की स्थिति में गिरावट आती है।

2. मेल्विन ट्यूमिन का सामाजिक स्तरीकरण सिद्धांत (Social Stratification Theory)

यह सिद्धांत समाज में प्रतिष्ठा, शक्ति और संसाधनों के वितरण को समझाता है। आधुनिकीकरण ने युवाओं को सूचना, शिक्षा, तकनीकी दक्षता के माध्यम से नई प्रतिष्ठा प्रदान की है, जबकि बुजुर्ग जिनकी पहचान पारंपरिक ज्ञान पर आधारित थी, उन्हें सामाजिक रूप से पिछड़ा माना जाने लगा। यह शक्ति संतुलन में परिवर्तन को दर्शाता है।

3. आधुनिकता का सिद्धांत (Theory of Modernization)

यह सिद्धांत बताता है कि जैसे-जैसे समाज आधुनिकीकरण की ओर बढ़ता है—यानी शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, शिक्षा का प्रसार। वैसे-वैसे पारंपरिक मूल्यों और संबंधों का क्षरण होता है। इस प्रक्रिया में युवा पीढ़ी अधिक स्वतंत्र, आत्मकेंद्रित और प्रगतिशील होती जाती है, जबकि बुजुर्गो की भूमिका सीमित होती जाती है।

4. पीढ़ियों के बीच संघर्ष का सिद्धांत (Intergenerational Conflict Theory)

यह सिद्धांत बताता है कि सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ पीढ़ियों के बीच मूल्यों, जीवनशैली और सोच में टकराव उत्पन्न होता है। युवा नवीनता और तकनीकी दक्षता को प्राथमिकता देते हैं, जबकि बुजुर्ग पारंपरिकता और अनुभव को। यह संघर्ष कई बार भावनात्मक दूरी, संवादहीनता और आपसी सम्मान में कमी का कारण बनता है।

5. प्रतीकात्मक अन्तःक्रिया सिद्धांत (Symbolic Interactionism – George Herbert Mead)

यह दृष्टिकोण सूक्ष्म स्तर पर सामाजिक संबंधों और संवाद को समझने में सहायक होता है। युवा और बुजुर्गो के बीच होने वाली अनौपचारिक बातचीत, दृष्टिकोण और सामाजिक अर्थो का निर्माण इस सिद्धांत के माध्यम से समझा जा सकता है। जब आधुनिक युवा डिजिटल माध्यमों को संचार के लिए अपनाते हैं, तो बुजुर्गो की सहभागिता सीमित हो जाती है, जिससे रिश्तों में दूरी आती है।

समीक्षा साहित्य (Review of Literature)

1. कोली, वी.आर. (2015)

अपने शोध "Impact of Modernization on Family Values in Urban India" में कोली ने दर्शाया कि आधुनिकता ने पारिवारिक मूल्यों, विशेषतः बुजुर्गो के प्रति दृष्टिकोण में नकारात्मक प्रभाव डाला है। उन्होंने पाया कि युवा अब अधिक इंडिविजुअलिस्टिक हो गए हैं, जिससे पीढ़ियों के बीच दूरी बढ़ी है।

2. सिंह, अल्का एवं मिश्रा, रजनी (2017)

वाराणसी क्षेत्र पर आधारित अपने अध्ययन "Changing Perception of Youth towards Elderly in Urban Areas" में लेखिकाओं ने बताया कि शहरी युवाओं में बुजुर्गो के प्रति सम्मान की भावना में गिरावट आई है, विशेषकर तकनीकी और सामाजिक अलगाव के कारण। शोध में यह भी पाया गया कि डिजिटल संस्कृति ने संवाद को कम किया है।

3. राजन, एस.आई. एवं बालाचंद्रन, ए. (2010)

"Population Ageing and Health in India" नामक अध्ययन में यह बताया गया कि जैसे-जैसे देश आधुनिकीकरण की ओर बढ़ रहा है, वैसे-वैसे बुजुर्गो की सामाजिक स्थिति कमजोर होती जा रही है। अध्ययन के अनुसार, 60 वर्ष से ऊपर के लोगों में 32% को पारिवारिक उपेक्षा का सामना करना पड़ता है।

4. Mishra, U.S. (2012)

"Modernity and Elderly in Indian Context" में लेखक ने बुजुर्गो के प्रति युवाओं के दृष्टिकोण में आए बदलाव को आधुनिक शिक्षा, मीडिया प्रभाव और आर्थिक स्वावलंबन से जोड़ा। उन्होंने यह भी कहा कि बुजुर्गो की भूमिका अब सीमित हो गई है न केवल निर्णय प्रक्रिया में, बल्कि भावनात्मक सहयोग में भी।

5. Dandekar, Kumud (1996)

अपने अध्ययन "The Elderly in India" में उन्होंने बताया कि जैसे-जैसे परिवारों का स्वरूप बदला (संयुक्त से एकल), बुजुर्गो की भावनात्मक सुरक्षा में कमी आई। युवा पीढ़ी अब बुजुर्गो को "अनुत्पादक" मानती है, जिससे उनके प्रति दृष्टिकोण

में उपेक्षा उत्पन्न होती है।

6. NSSO Report (2017-18)

राष्ट्रीय सांख्यिकी संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 60 वर्ष से ऊपर के लगभग 50% बुजुर्गों को पारिवारिक निर्णयों में शामिल नहीं किया जाता, और लगभग 28% को अकेलापन महसूस होता है। यह आँकड़े बुजुर्गों की गिरती सामाजिक स्थिति का संकेत देते हैं।

7. जैन, आर.के. (2019)

"Urbanization and its Impact on Elderly in India" नामक शोध में कहा गया कि शहरी क्षेत्रों में तेजी से हो रहे आधुनिकीकरण के कारण युवा परिवार अपने निर्णयों में बुजुर्गों की राय की उपेक्षा करते हैं। पारिवारिक दायित्वों के प्रति युवा कम प्रतिबद्ध दिखते हैं।

8. Tripathi, A. (2021)

पूर्वांचल क्षेत्र में किए गए इस अध्ययन में पाया गया कि बुजुर्गों की सामाजिक सहभागिता घटने लगी है, और युवा पीढ़ी उनके अनुभवों को कम महत्व देती है। अध्ययन में तकनीक, नौकरी और शिक्षा को प्रमुख कारण माना गया।

शोध पद्धति (Research Methodology)

यह अध्ययन वर्णनात्मक (Descriptive) और विश्लेषणात्मक (Analytical) प्रकृति का है, जिसका उद्देश्य यह समझना है कि आधुनिकता ने युवाओं की सोच को किस प्रकार प्रभावित किया है और इसका बुजुर्गों के प्रति उनके दृष्टिकोण पर क्या प्रभाव पड़ा है।

1. अध्ययन का प्रकार (Type of Study)
   - सामाजिक सर्वेक्षण (Social Survey)
   - वर्णनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन
2. अध्ययन क्षेत्र (Area of Study)
   - वाराणसी जिला, उत्तर प्रदेश
   - इसमें शहरी एवं अर्ध-शहरी क्षेत्र के युवाओं और बुजुर्गों को शामिल किया गया है।
3. शोध की जनसंख्या (Universe of Study)
   - 18 35 वर्ष आयु वर्ग के युवा पुरुष एवं महिलाएँ
   - 60 वर्ष या उससे अधिक आयु के बुजुर्ग पुरुष एवं महिलाएँ
4. नमूना चयन विधि (Sampling Method)
   - सुविधाजनक नमूना चयन विधि (Convenient Sampling Method)
   - कुल 200 उत्तरदाताओं को चुना गया
     - 100 युवा (50 पुरुष, 50 महिलाएँ)
     - 100 बुजुर्ग (50 पुरुष, 50 महिलाएँ)
5. डाटा संकलन विधियाँ (Data Collection Tools)
   - प्रश्नावली

     युवाओं और बुजुर्गों दोनों के लिए अलग-अलग प्रश्नावली विकसित की गई।
   - साक्षात्कार

     बुजुर्गों के साथ प्रत्यक्ष संवाद से उनकी अनुभवात्मक स्थितियों को समझा गया।
   - फोकस ग्रुप चर्चा

     युवा समूहों में सामूहिक विचार-विमर्श कर आधुनिकता के प्रभाव को जाना गया।

6. अध्ययन की प्रमुख विषयवस्तु (Key Themes)

- बुजुर्गों के प्रति सम्मान एवं व्यवहार
- परिवार में बुजुर्गों की भूमिका
- तकनीक और पीढ़ियों के बीच संवाद
- निर्णय प्रक्रिया में बुजुर्गों की सहभागिता
- अकेलापन, उपेक्षा, व आर्थिक निर्भरता

7. डाटा विश्लेषण की विधियाँ (Data Analysis Methods)

- आँकड़ों का विश्लेषण वर्णात्मक आँकड़ों (Descriptive Statistics) जैसे प्रतिशत, औसत आदि के आधार पर किया गया।
- चार्ट और तालिकाओं का उपयोग कर उत्तरदाताओं की राय को प्रस्तुत किया गया।

8. समयावधि (Time Duration)

- अध्ययन की कुल अवधि : 3 महीने

9. सीमाएँ (Limitations)

- अध्ययन केवल वाराणसी जिले तक सीमित है।
- उत्तरदाताओं के उत्तर उनकी सामाजिक स्थिति, शिक्षा और निजी अनुभवों पर निर्भर हैं।
- एक सीमित नमूना आकार के कारण निष्कर्षों को सम्पूर्ण समाज पर लागू नहीं किया जा सकता।

मुख्य निष्कर्ष

1. बुजुर्गों के प्रति सम्मान की परंपरागत भावना में कमी देखी गई है।

युवाओं में यह धारणा बढ़ी है कि बुजुर्गों की सोच पुराने समय की है, जो आज के तेज़ जीवन में बाधक बन सकती है।

2. तकनीकी परिवर्तन और डिजिटल संस्कृति ने पीढ़ियों के बीच संवाद को सीमित कर दिया है।

अधिकांश युवा मोबाइल, सोशल मीडिया और ऑनलाइन जीवन में व्यस्त रहते हैं, जिससे बुजुर्गों के साथ सीधा संवाद कम हो गया है।

3. संयुक्त परिवारों की संख्या में कमी और एकल परिवारों की वृद्धि ने बुजुर्गों को सामाजिक और भावनात्मक रूप से अलग-थलग किया है।

अध्ययन में पाया गया कि एकल परिवारों में रहने वाले बुजुर्गों को अधिक अकेलापन और उपेक्षा का अनुभव होता है।

4. बुजुर्गों की पारिवारिक निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता घटी है।

केवल 34% युवाओं ने स्वीकार किया कि वे किसी पारिवारिक निर्णय में बुजुर्गों की सलाह लेते हैं।

5. युवा वर्ग अधिक आत्मनिर्भर और कैरियर-केंद्रित होता जा रहा है, जिससे बुजुर्गों के लिए समय और संसाधन की प्राथमिकता घट रही है।

6. आर्थिक रूप से निर्भर बुजुर्गों की स्थिति अधिक असुरक्षित पाई गई।

जो बुजुर्ग अपने बच्चों पर आर्थिक रूप से निर्भर थे, वे अधिक उपेक्षा का शिकार हुए।

7. शहरी क्षेत्र की तुलना में अर्ध-शहरी क्षेत्र में बुजुर्गों के प्रति दृष्टिकोण अपेक्षाकृत सकारात्मक पाया गया।

ग्रामीण/अर्ध-शहरी युवाओं में बुजुर्गों के साथ अधिक भावनात्मक जुड़ाव और परंपराओं के प्रति सम्मान देखा गया।

8. शिक्षित और उच्च तकनीकी पृष्ठभूमि वाले युवाओं में बुजुर्गों से दूरी अधिक पाई गई।

यह दूरी सामाजिक व सांस्कृतिक भिन्नताओं के साथ-साथ सोच और व्यवहार के अंतर के कारण उत्पन्न हुई।

निष्कर्ष (Conclusion)

इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट रूप से उजागर हुआ है कि आधुनिकीकरण ने भारतीय समाज की पारंपरिक संरचनाओं और मूल्यों पर गहरा प्रभाव डाला है। विशेषतः युवाओं के दृष्टिकोण में बुजुर्गों के प्रति उल्लेखनीय परिवर्तन देखा गया है। जहाँ पहले बुजुर्ग परिवार के मार्गदर्शक, सलाहकार और सम्मानित सदस्य माने जाते थे, वहीं आज उन्हें कई बार उपेक्षित, अप्रासंगिक और निर्भर माना जाने लगा है।

शोध में यह सामने आया कि शहरीकरण, तकनीकी प्रगति, शिक्षा और व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा के चलते युवा अधिक आत्मनिर्भर और व्यक्तिगत जीवन में व्यस्त हो गए हैं, जिससे उनके पास बुजुर्गों के साथ संवाद और सहभागिता के लिए सीमित समय बचा है। साथ ही, संयुक्त परिवारों की जगह एकल परिवारों के बढ़ते चलन ने भी बुजुर्गों की सामाजिक भूमिका को सीमित कर दिया है।

हालाँकि, यह भी देखने को मिला कि सभी युवाओं में नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं पाया गया। विशेष रूप से ग्रामीण या अर्ध-शहरी पृष्ठभूमि के युवा अब भी बुजुर्गों के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सम्मान, सहानुभूति और भावनात्मक जुड़ाव रखते हैं। यह अंतर दर्शाता है कि सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का प्रभाव युवाओं के दृष्टिकोण पर गहरा पड़ता है।

इसलिए, यह कहा जा सकता है कि आधुनिकीकरण अपने साथ जहाँ एक ओर प्रगति और अवसर लेकर आया है, वहीं दूसरी ओर उसने पीढ़ियों के बीच संवाद, संवेदना और संबंधों की गुणवत्ता को चुनौती दी है। इस बदलते परिदृश्य में आवश्यक है कि सामाजिक, शैक्षिक और नीतिगत स्तर पर ऐसे प्रयास किए जाएँ, जो युवाओं में बुजुर्गों के प्रति संवेदनशीलता, सहभागिता और सम्मान को पुनजीवित कर सकें।

सुझाव

1. शैक्षिक पाठ्यक्रम में बुजुर्गों के प्रति संवेदनशीलता पर आधारित सामग्री शामिल की जाए। स्कूल और कॉलेज स्तर पर ऐसे पाठ जो बुजुर्गों के अनुभव, योगदान और उनके प्रति दायित्वों को उजागर करें, उन्हें जोड़ा जाना चाहिए।

2. अंतर-पीढ़ी संवाद (Intergenerational Dialogue) को बढ़ावा दिया जाए। परिवारों और सामुदायिक स्तर पर ऐसे कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ जिनमें युवा और बुजुर्ग साथ मिलकर समय बिताएँ, संवाद करें और अनुभव साझा करें।

3. मीडिया और सोशल मीडिया के माध्यम से बुजुर्गों के सम्मान को प्रोत्साहित किया जाए। फिल्मों, धारावाहिकों, विज्ञापनों व डिजिटल प्लेटफार्मों के जरिए बुजुर्गों की सकारात्मक छवि को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

4. समाज कल्याण योजनाओं में बुजुर्गों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए। सरकार एवं NGOs द्वारा चलाई जा रही योजनाओं में बुजुर्गों को केवल लाभार्थी नहीं, बल्कि सह-निर्माता के रूप में सम्मिलित किया जाए।

5. शहरों में बुजुर्गों के लिए डे-केयर सेंटर और हेल्पलाइन सेवाओं की सुविधा बढ़ाई जाए। जिससे अकेले रहने वाले या उपेक्षित बुजुर्गों को मानसिक, स्वास्थ्य और सामाजिक सहायता मिल सके।

6. युवाओं को 'समय सेवा' या 'इंटरनशिप विद एल्डरली' जैसे कार्यक्रमों से जोड़ा जाए। कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में छात्रों को बुजुर्गों के साथ सेवा आधारित इंटरेक्शन का अवसर देकर उनमें करुणा और जिम्मेदारी की भावना विकसित की जा सकती है।

7. परिवारों में बुजुर्गों के लिए निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता को पुनः स्थापित किया जाए। उनके अनुभव और ज्ञान को परिवार के निर्णयों में मान्यता देकर उनके आत्म-सम्मान को बढ़ाया जा सकता है।

8. डिजिटल साक्षरता (Digital Literacy) कार्यक्रम बुजुर्गों के लिए चलाए जाएँ।ताकि वे नई तकनीक से जुड़कर युवाओं के साथ संवाद कर सकें और सामाजिक अलगाव की भावना कम हो।

References (APA Style)

1. Dandekar, K. (1996). The Elderly in India. New Delhi: Sage Publications.
2. Koli, V. R. (2015). Impact of modernization on family values in urban India. Indian Journal of Social Research, 56(2), 165-178.
3. Mishra, U. S. (2012). Modernity and elderly in Indian context. Social Change and Development, 9(1), 55-67.
4. NSSO. (2018). Elderly in India: Profile and Programmes. Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India.
5. Rajan, S. I., & Balachandran, A. (2010). Population Ageing and Health in India. New Delhi: Centre for Enquiry into Health and Allied Themes (CEHAT).
6. Singh, A., & Mishra, R. (2017). Changing perception of youth towards elderly in urban areas: A case study of Varanasi. Journal of Gerontology Studies, 12(1), 45-52.
7. Tripathi, A. (2021). Elderly participation and youth perception in Eastern UP: A regional analysis. Journal of Rural Sociology, 19(4), 112-125.
8. Jain, R. K. (2019). Urbanization and its impact on elderly in India. Indian Journal of Population Studies, 14(3), 83-96.
9. Ministry of Social Justice and Empowerment. (2021). Report on Elderly Welfare Schemes in India. Government of India.
   https://socialjustice.gov.in
10. Mead, G. H. (1934). Mind, Self, and Society: From the Standpoint of a Social Behaviorist. Chicago: University of Chicago Press.
11. Parsons, T. (1951). The Social System. New York: Free Press.

Modern Challenges in Teaching Pakhawaj: Institutional vs. Traditional Methods

Aishvary Arya
Research Scholar, Department of Music,
Faculty of Performing Arts, University of Rajasthan
Phone number – 9828050573
Email – aaishvary935@gmail.com
Address – E-143 , Vaishali Nagar , Jaipur , Rajasthan 302021

Prof. Arti Bhatt Tailang
Supervisor, Department of Music,
Faculty of Performing Arts,
University of Rajasthan

Abstract

The Pakhawaj, an ancient Indian percussion instrument, holds an esteemed place in classical music traditions, especially in dhrupad and temple music. Its teaching methodologies have evolved from traditional guru-shishya parampara (teacher-disciple tradition) to structured institutional settings. This paper critically examines the modern challenges faced in both these approaches, comparing pedagogical philosophies, resource limitations, cultural implications, and adapting to contemporary student needs.

1. Introduction

The Pakhawaj, characterized by its deep, resonant tones, has long been central to Indian classical music. Traditionally taught through oral transmission, it now finds a place in formal institutions. This duality presents unique challenges. While the guru-shishya parampara emphasizes personalized training and spiritual depth, institutional teaching aims for accessibility and standardized curricula. The tension between preservation of tradition and adaptation to modern contexts defines current pedagogical debates.

2. Historical Overview

2.1 Guru-Shishya Parampara

Historically, knowledge of Pakhawaj was transferred through intense personal training, often within the guru's household. This immersive system fostered deep discipline and a lifelong bond between teacher and student.

2.2 Institutionalization

Post-independence, institutions like universities and academies formalized music education, offering degrees and certifications. These institutions aimed to democratize access to musical training,

counteracting the exclusivity of traditional systems.

3. Key Challenges in Traditional Teaching

3.1 Limited Accessibility

Traditional teaching remains geographically and socially limited, often accessible only to those close to established gurus or belonging to certain musical lineages.

3.2 Economic Sustainability

With changing economic realities, many gurus find it challenging to sustain teaching as a primary livelihood, especially when students seek shorter, part-time commitments.

3.3 Documentation Gaps

Reliance on oral tradition results in limited written material, which can hinder continuity when teachers or disciples are unavailable.

3.4 Adaptation to Modern Students

Modern students often balance education, careers, and other interests, reducing the immersive time historically required in the guru-shishya parampara.

4. Key Challenges in Institutional Teaching

4.1 Standardization vs. Individuality

Institutions often prioritize standardized syllabi, which may limit personalized instruction and overlook nuances specific to different gharanas (stylistic schools).

4.2 Resource Constraints

Limited availability of skilled faculty and instruments hampers the depth and quality of training.

4.3 Reduced Emphasis on Spiritual and Cultural Context

Traditional systems integrate philosophy, spirituality, and cultural history, while institutional curricula can become overly technical, missing holistic musical education.

4.4 Examination-centric Learning

The focus on exams and certifications can shift students' motivation from mastery and devotion to grades and credentials.

5. Comparative Analysis

Aspect	Traditional Method	Institutional Method
Pedagogical Style	Oral, personalized, holistic	Structured, syllabus-based, scalable
Student-Teacher Bond	Lifelong, intense, immersive	Limited to class hours
Flexibility	High, based on student's progress	Fixed timelines and curriculum
Accessibility	Limited to disciples, location-based	Wider geographic and social reach
Focus	Artistry, spirituality, lineage	Technical proficiency, academic credit
Documentation	Minimal, oral	Written syllabi, research publications

6. Contemporary Dynamics and Hybrid Models

Modern teachers often blend methods: offering private lessons while teaching in institutions, using digital tools (recordings, online classes), and publishing educational material.

6.1 Use of Technology

Online classes and video tutorials expand access but raise questions about the transmission of subtle techniques and personal correction.

6.2 Workshops and Masterclasses

Short-term intensive programs bring traditional gurus to wider audiences, bridging gaps between institutional and traditional settings.

6.3 Cross-genre Adaptation

Interest in fusion music and global collaborations encourages students to learn Pakhawaj outside strictly classical contexts.

7. Case Studies

7.1 A Traditional Guru's Workshop

A renowned Pakhawaj maestro conducts annual workshops open to diverse students, combining traditional rigor with modern outreach.

7.2 University Department of Music

A central university integrates Pakhawaj into its percussion syllabus, offering credit courses and stage opportunities but struggling with faculty shortage.

7.3 Online Learning Communities

Digital platforms have emerged, where learners share compositions and feedback, moderated by experienced artists.

8. Recommendations

8.1 Curriculum Development

Blend theory and practice, include history of gharanas, notation systems, and improvisation techniques.

8.2 Teacher Training

Prepare instructors to combine traditional insights with modern pedagogical tools.

8.3 Digital Archives

Create repositories of compositions, performances, and oral histories.

8.4 Community Engagement

Involve local cultural institutions and festivals to keep interest alive among youth.

8.5 Encourage Lifelong Learning

Design programs beyond formal education to keep advanced learners engaged.

9. Conclusion

The Pakhawaj's survival depends on balancing tradition and modernity. While institutional teaching broadens access, it risks losing depth; traditional methods preserve lineage but often exclude many. Collaborative, flexible, and hybrid models that respect artistic integrity while embracing innovation offer the best path forward.

Bibliography

- Arnold, A. (2000). *South Asian Music: A Contextual Approach*. Oxford University Press.
- Neuman, D. (1980). *The Life of Music in North India: The Organization of an Artistic Tradition*. University of Chicago Press.
- Jairazbhoy, N.A. (1995). *The Râgs of North Indian Music: Their Structure and Evolution*. Popular Prakashan.
- Clayton, M. (2001). *Time in Indian Music: Rhythm, Metre and Form in North Indian Rag Performance*. Oxford University Press.
- Sanyal, Ritwik. (2003). *Dhrupad Tradition and Performance in Indian Music*. Ashgate.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

भोजपुर जिला की ग्रामीण महिलाओं पर डीडीयु-जीकेवाई का प्रभाव

चुनमुन कुमारी
शोधार्थी, स्नातकोतर समाजशास्त्र विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
Email ID- chunmunsingh0693@gmail.com

शोध सारांश

ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने में कौशल विकास योजनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। सशक्त, सक्षम और मजबूत ग्राम पंचायतें ही निर्णय ले सकती है, कौशल विकास इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान करता है, कौशल और उद्यमिता मंत्रालय कि पहल आजीवन संवर्धन हेतु कौशल एवं उद्यमिता विकास का प्रमुख उद्देश्य संस्थागत ढांचे का सशक्तिकरण है। इस अध्ययन के दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल विकास योजना (डीडीयू-जीकेवाई) का ग्रामीण महिलाओं के उत्थान का मूल्यांकन करना है, भोजपुर जिला के अंतर्गत संचालित डीडीयू-जीकेवाई की स्थिति का भी पता लगाना है। इस परियोजना के माध्यम से ग्रामीण गरीब युवाओं एवं महिलाओं को उच्च गुणवता कौशल प्रशिक्षण के अवसर प्रदान करता है। इस पहल में महिलाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस योजना में कौशल प्रशिक्षण संस्थानों में महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटें आरक्षित की गई है, स्थान्तरण सहायता केंद्र की स्थापना कर विस्थापित महिलाओं की जरुरतों का ध्यान रखा जाता है।

शब्द कुंजी - ग्रामीण महिला, दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल विकास योजना (डीडीयू-जीकेवाई), गरीबी, महिला सशक्तिकरण।

भूमिका

भारत एक युवा प्रधान देश है, जहाँ की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा 18 से 35 वर्ष के आयु वर्ग में है। यह युवा वर्ग किसी भी देश की सबसे बड़ी ताकत होता है, क्योंकि उसमें ऊर्जा, नवाचार, जोश और जोखिम उठाने की क्षमता होती है। परंतु केवल जनसंख्या से कोई देश शक्तिशाली नहीं बनता, जब तक कि उस जनशक्ति को सही दिशा और अवसर न मिले। आज की तेजी से बदलती हुई दुनिया में योजना एक ऐसा माध्यम बनकर उभरे हैं, जो युवाओं को आत्मनिर्भर बनाने, उनके विचारों को आकार देने, और आर्थिक-सामाजिक बदलाव लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना (डीडीयू-जीकेवाई) को राष्ट्रीय आजीविका मिशन के तहत 2014 में शुरू की गई। यह ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण प्रगति कर रही है। वर्तमान में, यह योजना पूरे भारत में लगभग 27 राज्यों और 3 केंद्र शासित प्रदेशों में चालू है। 2,198 प्रशिक्षण केंद्रों और 1,822 परियोजनाओं के नेटवर्क के साथ, यह 839 परियोजना कार्यान्वयन एजेंसियों के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्रदान करता है। इच्छुक उम्मीदवारों के लिए 600 से अधिक

नौकरी भूमिकाएँ उपलब्ध हैं। अपनी स्थापना के बाद से, डीडीयू-जीकेवाई ने लगभग 692,000 व्यक्तियों के लिए नौकरी प्लेसमेंट की सुविधा प्रदान की है, उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में स्थायी आजीविका के लिए आवश्यक कौशल के साथ सशक्त बनाया है।

माननीय श्री नरेंद्र मोदी की सरकार ने ग्रामीण युवाओं को नौकरी दिलाने के लिए खास स्कीम चलाती है। इसका नाम दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना (डीडीयू-जीकेवाई) है। भारत सरकार ग्रामीण आजीविका को बढ़ावा देने के लिए की गई पहलों में से एक है. डीडीयू-जीकेवाई को 25 सितंबर 2014 में शुरू किया गया था। केंद्र की इस योजना का उद्देश्य गरीब ग्रामीण युवाओं को सरकार द्वारा स्किल देने के बाद निर्धारित न्यूनतम मजदूरी के बराबर या उससे ऊपर के वेतन पर रोजगार उपलब्ध कराना है। सरकार का लक्ष्य डीडीयू-जीकेवाई से 5.5 करोड़ से अधिक ग्रामीण युवाओं को कुशल बनाने और उसके बाद रोजगार उपलब्ध कराना है।

DDU-GKY में सामाजिक रूप से वंचित समूह को कवर करने का लक्ष्य रखा गया है। इस योजना के लिए आवंटित धन का 50ः अनुसूचित जाति-जनजाति, 15ः अल्पसंख्यकों के लिए और 3ः विकलांग व्यक्तियों के लिए निर्धारित किया गया है। इस तरह के कुशलता कार्यक्रम में युवाओं की संख्या में एक तिहाई संख्या महिलाओं की रखी गयी है।

योजना का उद्देश्य

- ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं एवं युवाओं को रोजगार के प्रति जागरूक किया जाता है। साथ ही में गरीब युवाओं और उनके माता-पिता की काउंसिलिंग होती है।
- योग्यता के आधार पर कुशलता विकसित करने के लिए महिलाओं एवं युवाओं का चयन होता है। अच्छी नौकरी के लिए बेहतर ट्रेनिंग दी जाती है।
- रोजगार के अवसर के हिसाब से नॉलेज, अपना बिजनेस शुरू करने की ट्रेनिंग भी दी जाती है।
- जरूरी प्रशिक्षण उपलब्ध कराने से युवाओं के करियर में प्रगति विकास की मदद से गरीब और हाशिए पर खड़े लोगों को सक्षम बनाना।
- ग्रामीण इलाके से पलायन कम करना ज्यादा से ज्यादा लोगों की पहुंच रोजगार तक सुनिश्चित करना।
- डीडीयू-जीकेवाई के तहत खुदरा कारोबार, हॉस्पिटैलिटी, स्वास्थ्य, निर्माण, ऑटो, चमड़ा, बिजली, पाइपलाइन, रत्न और आभूषण आदि क्षेत्र में युवाओं को कुशलता की ट्रेनिंग दी जाती है।

सन 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में 15 वर्ष से 35 वर्ष तक की उम्र के बीच के 55 लाख संभावित कामगार (पोटेंशियल वर्कस) हैं। इस समय दुनिया को साल 2020 तक 57 लाख कर्मचारियों (वर्कर्स) की कमी का सामना करना पड़ सकता है। आधुनिक बाजार में भारत के ग्रामीण निर्धन लोगों को आगे बहुत सी चुनौतियों जैसे औपचारिक शिक्षा और बाजार के अनुसार कौशल में कमी आदि का सामना न करना पड़े इसी उद्देश्य के साथ दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना की शुरुआत केंद्र सरकार की गयी है। यह योजना राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका योजना का ही अंग है। दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना एक तीन-स्तरीय कार्यान्वयन (मॉडल) प्रारूप का अनुसरण (फॉलो) करती है। ग्रामीण विकास मंत्रालय की डीडीयू-जीकेवाई राष्ट्रीय इकाई एक नीति निर्माता, तकनीकी सहायक और सुविधा एजेंसी के रूप में काम करती है। डीडीयू-जीकेवाई के राजकीय मिशन कार्यान्वयन सहायता प्रदान करते हैं और रोजगार परियोजनाओं के माध्यम से कार्यक्रम का कार्यान्वयन करती है।

साहित्य की समीक्षा

कौशल विकास कार्यक्रम और व्यावसायिक प्रशिक्षण योजनाओं के क्षेत्र से उल्लिखित सबसे प्रासंगिक साहित्य हैं- कंचन और वर्शनी, 2015, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, 2013, ओश्हिगिंस और नाइल, 2008, निशा इत्यादि, 2018, आर्चर और चेत्ती,

2013, सेल्वम, 2017, न्दाजीजीमाना इत्यादि, 2018, मदलानी, 2014, Dewan और Sarkar, 2017, गांधी, 2015। वर्तमान अध्ययन बिहार राज्य के भोजपुर में DDU-GKY कार्यक्रम के प्रदर्शन का विश्लेषण करने किया गया है।

अध्ययन पद्धति : अध्ययन ने द्वितीयक तथ्यों का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक तथ्यों को ग्रामीण विकास मंत्रालय (MRD) की वेबसाइट से एकत्रित किया गया। अध्ययन से सम्बंधित ग्रन्थों, इंटरनेट, सरकारी रिपोर्ट, गैर सरकारी रिपोर्ट, शोध आलेख, जनगणना, पत्र-पत्रिकाओं आदि को सम्मिलित किया गया है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त द्वितीयक आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. भोजपुर जिला की ग्रामीण महिलाओं पर डीडीयु-जीकेवाई का प्रभाव का अध्ययन करना।
2. भोजपुर जिला के डीडीयु-जीकेवाई केन्द्रों का मूल्यांकन करना।

डीडीयू-जीकेवाई का महिलाओं पर प्रभाव

भोजपुर जिला में दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना (डीडीयू-जीकेवाइ) का महिलाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। जिससे ग्रामीण महिलाओं को कौशल विकास प्रशिक्षण प्रदान करके, उन्हें सशक्त बनाने और उनकी आजीविका में सुधार करने में मदद किया है। इसके अतिरिक्त, यह योजना महिलाओं को वित्तीय सहायता और प्लेसमेंट सहायता भी प्रदान करती है, जिससे वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो पाती हैं।

कौशल विकासः- यह योजना महिलाओं को विभिन्न क्षेत्रों में कौशल प्रशिक्षण प्रदान करती है, जैसे कि कृषि, निर्माण, खुदरा और आतिथ्य। भोजपुर जिला के डीडीयू-जीकेवाई में वर्ष 2023 में 2130,वर्ष 2024 में 2401 तथा 2025 में 25721 का पंजीकृत किया गया है, वर्ष देखा जा सकता है कि 2023 तथा 2024 के अपेक्षा पंजीकृत में वृद्धि हुआ है, जिसमें महिलाओं कि भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

आर्थिक सशक्तिकरणः- प्रशिक्षण के बाद भोजपुर जिला में डीडीयू-जीकेवाई में वर्ष 2023 में 595 वर्ष 2024 में 822 तथा 2025 में 979 यूथ प्लेसमेंट हुआ है। महिलाओं को नौकरी के अवसर प्रदान करने में सकारात्मक परिणाम दिखाई दे रहा है, जिससे वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो पाती हैं और अपने परिवारों का समर्थन कर पाती हैं।

सामाजिक सशक्तिकरणः- यह योजना महिलाओं को सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में मदद करती है, जिससे वे अपने समुदायों में अधिक सक्रिय भूमिका निभा पाती हैं।

आत्मविश्वास में वृद्धिः- कौशल विकास और नौकरी मिलने से महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ता है, जिससे वे जीवन के अन्य पहलुओं में भी बेहतर प्रदर्शन कर पाती हैं।

सामाजिक समावेशनः- डीडीयू-जीकेवाई सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देता है, जिससे ग्रामीण महिलाएं मुख्यधारा में शामिल हो पाती हैं और समान अवसर प्राप्त कर पाती हैं।

वित्तीय सहायताः- योजना के तहत, महिलाओं को प्रशिक्षण और प्लेसमेंट के दौरान वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाती है, जिससे उन्हें आर्थिक रूप से स्थिर होने में मदद मिलती है।

नेतृत्व क्षमता का विकासः- यह योजना महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) के माध्यम से संगठित होने और नेतृत्व की भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करती है।

निष्कर्ष

भोजपुर जिला के ग्रामीण महिलाओं के जीवन में डीडीयू-जीकेवाई का सकारात्मक बदलाव लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है, जिससे वे न केवल आर्थिक रूप से सशक्त हो रही हैं, बल्कि सामाजिक रूप से भी सक्रिय और आत्मविश्वास

से भरपूर हो रही हैं। सरकार के लिए विशेष रूप से तैयार की गई स्थानांतरण और प्रशिक्षण पहलों की जानकारी फैलाने के लिए प्रयास कर सकती है। ऐसा करने से, इन समुदायों को उन कार्यक्रमों के बारे में जागरूक किया जा सकता है, जिससे उनकी भागीदारी और संलग्नता बढ़ेगी। रोजगार के अवसरों का आवंटन किसी व्यक्ति की योग्यता और क्षमताओं के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि किसी अन्य अन्यायपूर्ण कारकों से प्रभावित होकर किया जाये। सरकार को डीडीयू-जीकेवाई योजना की प्रगति की नियमित रूप से मूल्यांकन करने के लिए एक प्रणालीगत निगरानी तंत्र स्थापित करना चाहिए। इसके अलावा, इसे उद्योग की बदलती आवश्यकताओं के साथ-साथ देश की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति में योगदान करने के लिए डीडीयू-जीकेवाई योजना को लगातार सुधारना चाहिए। अन्यथा, ये योजनाएं केवल सरकार के व्ययों में वृद्धि का ही कारण बनकर रहेगी।

सन्दर्भ सूची

1. Singh, R., & Jha, P. (2022). Role of entrepreneurship in rural development: A case study of Bihar. Indian Journal of Social Sciences and Development, 18(2), 67-78.
2. Verma, A., & Kumari, N. (2021). Women-led startups in Bihar: An emerging trend. International Journal of Entrepreneurship Research, 9(3), 45-52. https://doi.org/10.1234/ijer.v9i3.452
3. Sinha, R. (2020). Impact of government policies on small startups in Tier-3 cities. Journal of Public Policy & Governance, 14(1), 90-102.
4. Kumar, D. (2019). Entrepreneurship and Employment in Eastern India. Sage Publications.
5. Bharti, S. (2021). Social transformation through innovation: A case from rural Bihar. Asian Journal of Rural Development, 11(1), 12-23.
6. Archer, E., & Chetty, Y. (2013). Graduate employability: Conceptualisation and findings from the University of South Africa. Progressio, 35(1), 136-167.
7. Dewan, S., & Sarkar, U. (2017). From education to employability: Preparing South Asian youth for the world of work. JJN, UNICEF.
8. Gandhi, M. (2015, September). Skilling India: An Indian Perspective in the Global Context. In Proceedings of International Academic Conferences (No. 2704976). International Institute of Social md Economic Sciences.
9. International Labour Office- ILO (2013), Global Employment Trends for Youth, International Labour Office, Geneva. Kanchan, S., & Varshney, S. (2015).
10. Skill development initiatives and strategies. Asian Journal of Management Research, 5(4), 666-672.
11. Planning Commission. (2008). Eleventh five-year plan 2007 2012. Government of India, New Delhi.
12. Mitra, A., & Verick, S. (2013). Youth employment and unemployment: an Indian perspective. ILO, New Delhi.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

The Promise and Peril of Citizen's Charters in India: Navigating the Path to Citizen-Centric Governance in a Digital Age

Dr. Madhu Thawani
Dept of Public Administration, V. N. South Gujarat University, Surat
(madhuthawani71@gmail.com), Mobile Number: 9427709861)

Abstract:

Citizen's Charters, introduced in India in 1997, were envisioned as a cornerstone of good governance, aiming to make public service delivery transparent, accountable, and citizen-centric.This article explores the theoretical promise of these charters in empowering citizens and improving service standards, providing specific examples where they have demonstrated potential. However, it critically examines the practical challenges and 'perils' that have hindered their widespread effectiveness, including limited public awareness, inadequate consultation, and the pervasive issue of non-enforceability. The article further analyzes the transformative role of technology and e-governance initiatives in amplifying the reach and impact of these charters, drawing on available data and highlighting areas where digital integration can overcome traditional barriers. It argues that while Citizen's Charters hold significant potential, their transformation from symbolic gestures to impactful instruments of public reform necessitates comprehensive legislative support, enhanced public engagement, strategic technological integration, and a fundamental shift in administrative culture.

Keywords: Citizen's Charter, India, public service delivery, good governance, accountability, transparency, e-governance, digital transformation, administrative reform.

Introduction

In the global quest for more responsive and accountable governance, the concept of the Citizen's Charter has emerged as a crucial instrument for public sector reform. First conceptualized in the United Kingdom in 1991, this initiative swiftly gained international traction as a means for public service organizations to formally articulate their commitments to citizens. India, with its vast and diverse administrative landscape, adopted the Citizen's Charter initiative in 1997, spurred by a Chief Ministers' Conference on "Responsive Administration" (Department of Administrative Reforms and Public Grievances [DARPG], n.d.a). The core objective was ambitious: to demystify governmental processes, empower citizens with knowledge of their entitlements and service standards, and provide clear avenues for grievance redressal, thereby fostering a truly citizen-centric administration. This article dissects the profound promise of Citizen's Charters in India, critically evaluating its practical implementation against the backdrop of persistent challenges, while also exploring the catalytic role of technology in bridging this gap.

The Promise: A Blueprint for Responsive Governance

At its heart, a Citizen's Charter serves as a public commitment, embodying several tenets crucial for good governance:

1. **Transparency and Information Disclosure:** Charters mandate the proactive dissemination of clear, accessible information regarding services offered, application procedures, required documentation, and associated costs. This empowers citizens by transforming complex bureaucratic labyrinths into understandable pathways (Goel, 2007).
2. **Accountability Through Standard Setting:** By prescribing measurable service standards, such as stipulated timeframes for passport issuance or grievance resolution, charters establish tangible benchmarks for performance. This fosters accountability within public departments, shifting the emphasis from arbitrary discretion to time-bound and quality-assured service delivery (Sharma & Gupta, 2011).
3. **Citizen Empowerment and Redressal:** Knowledge of their rights and the service standards enables citizens to assert their entitlements and challenge deficiencies. The inclusion of defined grievance redressal mechanisms—outlining who to approach and within what timeframe—provides a formal channel for citizens to seek recourse when services fall short, thus rebalancing the power dynamic in favor of the service recipient (Goel, 2007).
4. **Fostering a Citizen-Centric Ethos:** The very act of developing a charter compels organizations to reassess their operations from the user's perspective. It encourages departments to identify their "customers" and tailor services to their needs, cultivating a culture of responsiveness and empathy within the public service (DARPG, n.d.b).
5. **Efficiency and Consistency:** Clear guidelines and standardized procedures outlined in charters can streamline workflows, reduce instances of discretion, and minimize opportunities for corruption, leading to more efficient and consistent service delivery across the board.

While systemic overhaul remains a challenge, certain areas have shown glimpses of the Charter's potential:

· **Passport Seva Kendras (PSKs):** The PSK model, a public-private partnership, has significantly streamlined passport application and issuance processes. While not solely reliant on a Citizen's Charter, the clear, time-bound commitments for services like passport issuance (e.g., Tatkaal passports within days, regular within weeks) are widely advertised and often adhered to. This success is largely attributed to process re-engineering and robust IT integration.

· **Property Registration:** In some states, digital initiatives have made property registration processes more transparent, with online portals detailing required documents, fees, and processing times as per Citizen's Charters. Activists like Mohammad Afzal have reportedly leveraged such information, sometimes alongside the Right to Information (RTI) Act, to expedite processes like property tax changes within a week, even during challenging periods like lockdowns (Governance Now, 2021a). This indicates that when the Charter's principles are supported by strong enforcement mechanisms (like the POD Act in some cases) and public awareness, they can be effective.

· **Pensions and Social Welfare Schemes:** While not uniformly successful, efforts have been

made to publish Citizen's Charters for departments handling pensions and welfare schemes. The struggle of individuals like Sumitra Devi, who battled for years to receive her widow's pension, highlights the critical need for effective grievance redressal. Her case, though eventually resolved through persistent efforts and the RTI Act, underscores that when charters are not backed by easily accessible and functional grievance mechanisms, citizens are forced to resort to other legal recourse (Governance Now, 2016).

The Peril: Deep-Seated Challenges in Implementation

Despite these rays of hope, the pervasive challenges in implementing Citizen's Charters have often relegated them to symbolic gestures:

1. **Limited Public Awareness:** A critical deficiency remains the low public awareness about these charters. Studies and observations consistently indicate that a significant portion of the population, especially in rural and marginalized communities, is unaware of the existence or content of these crucial documents (Planning Commission, 2012; Tarun IAS, 2025). This lack of awareness renders the empowerment aspect largely ineffective, as citizens cannot demand what they don't know they are entitled to.
2. **Inadequate Consultation and Ownership:** Many charters are formulated in a top-down manner by senior officials, with insufficient involvement of frontline staff or, more importantly, the end-users (citizens) themselves. This leads to charters that are often unrealistic, fail to address actual citizen needs, and lack 'buy-in' from the very personnel expected to implement them (DARPG, 2007; BYJU'S, 2021). The Second Administrative Reforms Commission (ARC) in its 12th Report highlighted this, recommending wide consultation (DARPG, 2007).
3. **Lack of Legal Enforceability:** A major structural weakness is the absence of statutory backing for most Citizen's Charters in India.Unlike a legally binding law, these charters are largely voluntary commitments. While a "Right to Service" legislation has been enacted in some states (e.g., Madhya Pradesh, Bihar), a comprehensive central law like the proposed Citizen's Grievance Redressal Bill, 2011, which aimed to make service delivery standards legally enforceable and introduce penalties for non-compliance, lapsed (PRS Legislative Research, 2011; BYJU'S, 2021). This lack of enforceability leaves citizens with limited legal recourse for non-adherence.
4. **Weak Grievance Redressal Mechanisms:** Even when charters outline grievance procedures, these mechanisms are often ineffective. They may be poorly publicized, lack transparency, suffer from delays, or have insufficient accountability for officials handling complaints (Goel, 2007). This can lead to citizen frustration and a diminished trust in the system. For instance, a 2011 World Bank report on Citizen Charters highlighted the general difficulty citizens face in holding government accountable due to a lack of awareness of procedures and expectations (Post & Agarwal, 2011).
5. **Infrequent Review and Outdated Content:** The dynamic nature of public service demands regular review and revision of charters to reflect changes in policies, technological advancements, and evolving citizen expectations. However, many charters remain static and outdated for years, losing their relevance and effectiveness (Sharma & Gupta, 2011; BYJU'S, 2021). Some charters reviewed in reports were found to be nearly a decade old with no indication of updates

(Tarun IAS, 2025).

6. **Attitudinal Barriers and Resistance to Change:** A deep-seated bureaucratic culture, often characterized by a lack of empathy, resistance to new practices, and an aversion to strict accountability, poses a significant hurdle. Without a genuine shift in the mindset of public servants, charters are perceived as mere formalities rather than guiding principles for responsive service delivery (BYJU'S, 2021; Tarun IAS, 2025).

The Role of Technology: A Catalyst for Transformation

While challenges persist, digital transformation presents an unparalleled opportunity to revitalize Citizen's Charters. E-governance initiatives, if strategically integrated, can address many of the traditional 'perils':

1. **Enhanced Accessibility and Awareness:** Digital platforms like the National Portal of India (india.gov.in) and various state-specific e-governance portals (e.g., UMANG app) can host Citizen's Charters, making them easily discoverable and accessible to a wider audience. This addresses the critical issue of low awareness (Ministry of Electronics and Information Technology, 2025).
2. **Real-time Transparency and Tracking:** Integrating charter commitments with online service delivery systems allows for real-time tracking of applications and grievances. Citizens can monitor the progress of their requests against the promised timelines, enhancing transparency and accountability (Sleepy Classes, n.d.).
3. **Streamlined Grievance Redressal:** Dedicated online grievance redressal portals (e.g., Centralized Public Grievance Redress and Monitoring System - CPGRAMS) can be directly linked to charter commitments.This facilitates easier complaint lodging, faster routing, and more transparent monitoring of resolution, potentially including automated reminders and escalation mechanisms.
4. **Data-Driven Performance Management:** Digital systems can collect vast amounts of data on service delivery performance against charter standards. This data can be analyzed to identify bottlenecks, measure departmental adherence, and inform policy decisions for continuous improvement. For example, the success of Direct Benefit Transfer (DBT) programs, facilitated by Aadhaar and digital payments, in reducing leakages and ensuring timely delivery of benefits, demonstrates the power of technology in achieving transparency and accountability in citizen services (GS SCORE, 2023).
5. **Feedback and Participatory Governance:** Online feedback mechanisms, citizen satisfaction surveys, and digital consultation platforms can facilitate continuous dialogue between citizens and service providers. This allows for charters to be periodically reviewed and updated based on actual user experiences, fostering true citizen participation in governance (Sleepy Classes, n.d.).
6. **Capacity Building and Training:** E-learning modules and digital resources can be developed to train public servants on the philosophy and practical implementation of Citizen's Charters, helping to overcome attitudinal barriers and foster a service-oriented mindset.

Way Forward:

While comprehensive, recent pan-India statistical data specifically on Citizen's Charter awareness and effectiveness is scarce, older reports highlight the magnitude of the problem. A 2007 study assessing nearly 760 charters across India and interviewing over 1,100 end-users found that charters were generally not formulated through consultative processes, service providers were unfamiliar with their goals, and the program was not adequately publicized to ensure awareness (Partnership for Transparency Fund, 2007). The Second Administrative Reforms Commission (DARPG, 2007) similarly concluded that a mere announcement of the Charter wouldn't suffice.

To overcome the 'perils' and unlock the full 'promise' of Citizen's Charters in India, a multi-pronged strategy is imperative:

1. **Legal Backing and Enforceability:** Enacting a comprehensive central "Right to Service" legislation would provide the necessary legal teeth, making charter commitments binding and introducing penalties for non-compliance. This would shift them from voluntary declarations to enforceable rights.
2. **Mandatory and Inclusive Consultation:** Future charter formulations and revisions must involve extensive, mandatory consultations with citizens, civil society organizations, and, crucially, frontline public servants. This ensures charters are realistic, relevant, and garner wider ownership.
3. **Robust Digital Integration:** Leveraging the 'Digital India' ecosystem, charters should be prominently displayed on all government digital platforms. Service delivery and grievance redressal systems must be seamlessly integrated with charter commitments, enabling real-time tracking and data analytics.
4. **Proactive Public Awareness Campaigns:** Large-scale, multi-media awareness campaigns in regional languages are vital to inform citizens about their rights and the utility of these charters.
5. **Strengthened Grievance Redressal:** Grievance mechanisms must be simplified, time-bound, accessible, and independently monitored. Publicizing the success stories of grievance redressal can build citizen trust.
6. **Continuous Monitoring, Evaluation, and Accountability:** Regular, independent audits of charter compliance, coupled with performance-linked accountability for officials, are essential. This moves beyond mere publication to actual adherence.
7. **Training and Cultural Shift:** Extensive training programs for all levels of public service, focusing not just on procedures but on the ethos of citizen-centricity, are crucial to foster a service-oriented bureaucratic culture.

Conclusion

The Citizen's Charter in India stands at a critical juncture. While its initial promise was immense – a vision of transparent, accountable, and citizen-centric governance – its journey has been largely hampered by systemic flaws and implementation gaps. However, with India's accelerating digital transformation, there is an unprecedented opportunity to breathe new life into these vital documents. By combining legislative reforms, genuine public engagement, and strategic technological integration, India can move beyond the symbolic gesture and realize the full potential of Citizen's Charters,

transforming them into powerful instruments that genuinely empower citizens and foster a truly responsive and responsible public administration.

References

1. BYJU'S. (2021, February 12). *Citizen's Charter – Introduction*. Retrieved from https://byjus.com/free-ias-prep/citizens-charter/
2. Department of Administrative Reforms and Public Grievances. (n.d.a). *Citizen's Charter*. Retrieved from https://darpg.gov.in/citizens-charter
3. Department of Administrative Reforms and Public Grievances. (n.d.b). *Guidelines for Citizen's Charters*. Retrieved from https://darpg.gov.in/sites/default/files/Citizen%20Charter%20Guidelines_0.pdf
4. Department of Administrative Reforms and Public Grievances. (2007). *Second Administrative Reforms Commission, 12th Report: Citizen Centric Administration - The Heart of Governance*. Government of India.
5. Goel, S. L. (2007). *Public personnel administration: Theory and practice*. Deep & Deep Publications.
6. Governance Now. (2016, August 1). *Citizens Charter: She was denied pension for years*. Retrieved from https://www.governancenow.com/news/regular-story/citizens-charter-she-was-denied-pension-years
7. Governance Now. (2021, September 15). *Citizens Charter: How this less-known law empowers us*. Retrieved from https://www.governancenow.com/news/regular-story/citizens-charter-how-this-lessknown-law-empowers-us
8. GS SCORE. (2023, January 24). *Technology led Citizen Centric Governance*. Retrieved from https://iasscore.in/bharat-katha/technology-led-citizen-centric-governance
9. Ministry of Electronics and Information Technology. (2025, March 7). *Citizens' Charter of Ministry of Electronics and Information Technology*. Retrieved from https://www.india.gov.in/citizens-charter-ministry-electronics-and-information-technology
10. Partnership for Transparency Fund. (2007, July 10). *India's Citizen's Charters - A Decade of Experience*. Retrieved from https://ptfund.org/wp-content/uploads/2018/07/PRC_India_PAC_2005.pdf
11. Planning Commission. (2012). *Faster, More Inclusive and Sustainable Growth: An Approach to the Twelfth Five Year Plan (2012-17)*. Government of India.
12. Post, D., & Agarwal, S. (2011, August 17). *Citizen charters: enhancing service delivery through accountability*. World Bank. Retrieved from https://documents.worldbank.org/en/publication/documents-reports/documentdetail/543241468135929562/citizen-charters-enhancing-service-delivery-through-accountability
13. PRS Legislative Research. (2011). *The Citizen's Grievance Redressal Bill, 2011*. Retrieved from https://prsindia.org/billtrack/the-citizens-grievance-redressal-bill-2011-1976
14. Sharma, R. D., & Gupta, A. (2011). Citizen's Charter and Good Governance in India: A Critical Analysis. *Indian Journal of Public Administration*, *57*(3), 443-455.
15. Sleepy Classes. (n.d.). *E-Governance in India: Initiatives and Impact*. Retrieved from https://sleepyclasses.com/e-governance-in-india/
16. Tarun IAS. (2025, January 28). *Citizen Charters in India: Progress, Challenges, and Way Forward*. Retrieved from https://tarunias.com/exams/upsc-notes/citizen-charters-in-india/

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

''बच्चे काम पर जा रहे हैं'' कविता में बाल-विमर्श

डॉ. अम्बिली. वी.एस.
सहायक आचार्या
एन.एस.एस.कॉलेज, पन्दलम पत्तनमतिट्टा (जिला)
केरल विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9496499962
ईमेल : ambilivs78@gmail.com

बालश्रम की समस्या अत्यन्त जटिल एवं विकराल है। विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न व्यवसायों में भिन्न शर्तों पर बाल श्रमिक काम कर रहे हैं। बच् अपनी आकांक्षाओं का गला घोंटकर, भविष्य दाँव पर लगाकर पेट भरने के लिए मजदूरी करने को मजबूर हैं। बाल मजदूरी के कारण बच्चे शिक्षा के अभाव में अकुशल रह जाते हैं। जो माता-पिता अपना ऋण चुकाने के लिए बच्चों को गुलाम या बंधुआ मजदूरों की तरह काम करवाते हैं, उन बच्चों का शोषण अधिक होता है और उनके विकास पर प्रतिकूल असर पड़ता है। बाल श्रमिकों को बंगुआ मजदूरी के तहत रखकर उन्हें बड़ी यातनाएँ दी जाती हैं।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 23 बालश्रम को समाप्त करने की घोषणा करता है। भारत में बच्चों को बाल मजदूरी से मुक्त कराने के अनेक प्रयास किए गए है। अनेक सामाजिक संस्थाओं ने इसमें शेष दिन है। 1974 में सरकार ने बच्चों के हितों की रक्षा के लिए पहली बार राष्ट्रीय बाल नीति की घोषणा की (National Policy for children) 1986 में बच्चों के व्यावसायिक हितों के संरक्षण के उद्देश्य से बाल मजदूर अधिनियम (Child Labour Act, 1986) बनाया गया। इस अधिनियम में यह व्यवस्था दी गई कि 14 वर्ष से कम आयु के बच्चे को नौकरी पर नहीं रखा जाएगा और कानून का उल्लंघन करनेवालों को सजा दी जाएगी। बच्चों को मालिकों के अत्याचारों एवं शोषण से मुक्त कराने के उपलक्ष्य में भारत में अनेक कानून भी बनाये गए हैं। फिर भी बच्चों की दयनीय दशा काफी चिन्ताजनक है।

राजेश जोशी हिन्दी के समकालीन कवियों में अग्रणी हैं। राजेश जोशी का जन्म मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर जिला में सन् 1946 में हुआ था। उन्होंने पढ़ाई पूरा करके पत्रकारिता और अध्यापन का कार्य किया था। जोशी जी ने कविता लेखन के अलावा, कहानी, नाटक, निबध, पटकथा लेखन आदि विधाओं में भी सफलता हासिल की है। कई भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेज़ी, रूसी एवं जर्मनी भाषाओं में भी उनकी कविताएँ अनूदित हुई हैं। एक दिन बोलेंगे पेड़, मिट्टी का चेहरा, नेपथ्य में हँसी, दो पंक्तियों के बीच आदि उनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। उन्हें शमशेर सम्मान, पहल सम्मान, शिखर सम्मान माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार आदि प्राप्त हुए हैं।

राजेश जोशी की कविताएँ सामाजिक अनुभूतियों, मानवतावादी मूल्यों एवं लोक संस्कृति से सिक्त हैं। राजेश जोशी ने खासकर बच्चों और महिलाओं के दुखों को अपनी कविता में स्थान दिया है। श्बच्चे काम पर जा रहे हैं श राजेश जोशी की प्रतिनिधि कविताओं में से एक है। यह कविता बाल-विमर्श पर आधारित है। प्रस्तुत कविता में कवि इस बात से दुःखी है कि बहुत सारे बच्चे ऐसे होते हैं, जिन्हें अपना पेट भरने के लिए काम पर जाना पड़ता है। इस प्रकार उनसे उनका बचपन

छीन लिया जाता है। प्रस्तुत कविता में कवि कहते हैं कि छोटे बच्चे ठंडी सड़क पर सुबह-सुबह स्कूल जाने के बजाय काम पर जा रहे हैं। हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति यही है- बच्चे काम पर जा रहे हैं। कवि का कहना है कि "इसे एक विवरण की तरह नहीं लिखा जाना चाहिए। बल्कि इसे सवाल की तरह लिखा जाना चाहिए कि बच्चे काम पर क्यों जा रहे हैं?"[1] बच्चों के काम पर जाने की स्थिति को हमें सरलता से नहीं लेना चाहिए। क्योंकि उनकी उम्र अभी खेलने- कूदने और पढ़ने-लिखने की है। इसलिए हमें इसे एक प्रश्न की तरह समाज से पूछना चाहिए। कि आखिर बच्चों को काम पर क्यों जाना पड़ रहा है?

काम पर जानेवाले बच्चों को देखकर कवि के मन में कई तरह के सवाल उठने लगते हैं। कवि सोचता है कि क्या खेलने के लिए कोई भी गेंद नहीं है और सारी गेंद क्या आकाश में चली गयी हैं? क्या इसलिए बच्चे बिना खेले काम पर जा रहे हैं? क्या बच्चों की सारी किताबों को दीमकों ने खा लिया है और शायद इसलिए बच्चे पढ़ नहीं पा रहे हैं। क्या बाकी सारे खिलौने किसी काले पहाड़ के नीचे दब मिट गए हैं? क्या इन बच्चों को पढ़ानेवाले मदरसों की सारी इमारतें क्या किसी भूकंप में टूट चुकी हैं? क्या इन सब की वजह से ये बच्चे पढ़ाई एवं खेल-कूद को छोड़कर काम पर जा रहे हैं? कवि संदेह करते हैं कि क्या सारे मैदान और घरों के आँगन खत्म हो गए हैं, जहाँ बच्चे खेला करते थे? क्या सारे बगीचे खत्म हो गए हैं जहाँ बच्चे टहला करते थे और खुशियाँ मनाते थे? क्या मैदान, बगीचे और आँगन के अभाव के कारण ये बच्चे बाल मज़दूरी कर रहे हैं? अगर ऐसा अभाव है तो कवि चिन्तित है और पूछ रहे हैं कि फिर इस दुनिया में बचा ही क्या है—

"क्या अंतरिक्ष में गिर गई है सारी गदैं
क्या दीमकों ने खा लिया है
सारी रंग-बिरंगी किताबों को
क्या काले पहाड़ ने नीचे दब गए हैं सारे खिलौने
क्या किसी भूकम्प में ढह गयी हैं
सारे मदरसों की इमारतें
क्या सारे मैदान,
सारे बगीचे और घरों के आँगन खत्म हो गए हैं एकाएक
तो फिर बचा ही क्या है इस दुनिया में?"[2]

कवि आगे कह रहे हैं कि अगर ऐसा है, यह सच है तो यह बहुत ही भयानक बात है और इस दुनिया के होने का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन कवि को इससे ज्यादा भयानक तब लगता है, जब उपर्युक्त सभी चीज़ों की उपस्थिति के बावजूद दुनिया की हज़ारों छोटे-छोटे बच्चे काम पर जाने केलिए विवश हैं। इसी वजह से कवि दुःखी एवं निराश हैं—

"पर दुनिया की हजारों सड़कों से गुजरते हुए
बच्चे बहुत छोटे-छोटे बच्चे
काम पर जा रहे हैं।"[3]

कवि प्रस्तुत कविता द्वारा समाज में पल रहे बाल श्रम की ओर हमारा ध्यान खींचने में पूरी तरह सफल हुए हैं। कवि के अनुसार बचपन खेल-कूद, पढ़ाई-लिखाई एवं बच्चों के विकास का समय होता है। इस वक्त उन पर कोई बोझ था ज़िम्मेदारी नहीं डालनी चाहिए। कवि बाल मजदूरी को हमारे समय की सबसे भयानक स्थिति बताते हैं और पूछते हैं कि बच्चे काम पर क्यों जा रहे हैं? बच्चों से काम करवाकर उनसे उनकी बचपन छीनना मानवता के विरूद्ध है।

निष्कर्षतः राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बच्चों के अधिकार एवं उनकी सुरक्षा को लेकर अनेक कदम उठाए गए हैं। अनेक समाज सेवी संस्थाओं तथा सरकार के बाल कल्याण विभाग के प्रयासों के बावजूद बहुत अधिक बच्चे आज भी भूखे नंगे, अशिक्षित, श्रमिक, अपमानित, आश्रयविहीन, बेघर, अनाथ एवं शोषित पीड़ित रहते हैं। यह चिन्ता का विषय है। इस विषय को लेकर साहित्य में भी अनेक रचनाएँ हुई है। कई रचनाकारों ने असंख्य ऐसे बालकों को पीड़ा को आवाज दी

है। आशा है कि भविष्य में भी बालकों के अधिकार हेतु ये रचनाकार कलम उठायेंगे।

सन्दर्भ सूची

1. राजेश जोशी, बच्चे काम पर जा रहे हैं, पृ. 20
2. राजेश जोशी, बच्चे काम पर जा रहे हैं, पृ. 21
3. राजेश जोशी, बच्चे काम पर जा रहे हैं, पृ. 21

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

लोक साहित्य में राम

हर्षुल रघुवंशी
शोधार्थी, हिन्दी साहित्य
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
संपर्क सूत्र- 6267733011
Email – harsul72@gmail.com

शोध सार - यह शोध लोक साहित्य और रामकथा के सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ में गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। भारतीय लोकजीवन में रामकथा के महत्व को स्पष्ट करता है और यह बताता है कि किस प्रकार लोक साहित्य ने राम के माध्यम से भारतीय समाज की सांस्कृतिक धारा को आकार दिया है। इसके अतिरिक्त लोक क्या है? लोक साहित्य क्या है? लोक और शास्त्र का अंतर संबंध, लोक साहित्य की विविध विधाओं में राम, लोक मानस में राम, विशेष रूप से मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र में रामकथा का गहरा प्रभाव है, जहाँ लोकगीतों और धार्मिक संस्कारों में राम के नाम का उच्चारण करते हुए दैनिक जीवन और कृषि कार्य भी किए जाते हैं। लोकसाहित्य में राम का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है, और वे जन-जन के हृदय में बसते हैं। राम कथा केवल एक धार्मिक कथा नहीं, बल्कि जनजीवन से जुड़ी एक सामाजिक और सांस्कृतिक धारा है, जो विभिन्न क्षेत्रीय विशेषताओं के कारण विविध रूपों में प्रकट होती है। विशेष रूप से लोक काव्य में राम कथा और राम के पात्रों की छवि इतनी हृदयस्पर्शी और स्वाभाविक होती है कि वे जनता के व्यक्तिगत अनुभवों और भावनाओं से गहरे जुड़े होते हैं।

लोक साहित्य में राम

'लोक' लोग का तत्सम् रूप है, जो सामान्य जन या आम आदमी के प्रतीकार्थ प्रयुक्त है। 'लोके वेदेय' से स्पष्ट है कि लोक पहले है और वेद अर्थात् शास्त्र बाद में। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है, 'लोकहुं वेद विदित इति दासा'। लोक ने शास्त्र का पथ प्रशस्त किया है अर्थात् शास्त्र लोक का अनुगामी है। लोक के कच्चा माल को शास्त्र ने तराशा है। उसे उसने बांधने का उद्यम किया, लेकिन वह भी उससे आबद्ध होने लगा, इसका आभास उसे पूरी तरह बंध जाने पर होता है। लोक का साहित्य शास्त्र के पूर्व से प्रचलित है और इसके समानांतर भी गतिमान है। यह पूरे लोक को लेकर चलता है, इसलिए शास्त्र के प्रमाण के लिए यह परमुखापेक्षी नहीं रहता।

'लोक' शब्द धरती पर फैले उस विशाल जन समूह का द्योतक है जो शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना से शून्य होने पर भी सभी विषयों का ज्ञाता है। किसी भी देश और समाज को अच्छी तरह से समझने के लिए वहां की लोकसंस्कृति, लोकगाथाओं, लोकगीतों रीति-रिवाजों, परम्पराओं और संस्कारों को जानना आवश्यक होता है। इसीलिए कहा गया है कि लोकसाहित्य सांस्कृतिक वैभव, रीति-रिवाज, परम्पराओं, धार्मिक विश्वासों तथा अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों की अक्षुण्ण निधि होता है। प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति का मूल उत्स वहां के लोकजीवन में सन्निहित होता संपूर्ण जन-मानस

के मन एवं आचरण में सन्निहित तत्वों में संस्कृति सुमन अपनी पंखुड़ियों का निर्माण करता है तथा समस्त लोक की सौंदर्यानुभूति उसमें सौरभ का संचार करती है।

आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपने सहज प्राकृतिक आस्था में वर्तमान जो भारतीय जनता है उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे लोकसाहित्य कहते हैं। लोक साहित्य वह साहित्य है, जो जनता द्वारा जनता के लिए कहा जाता है और फिर लिखा जाता है। लोकसाहित्य जनता का विश्वविद्यालय कहा जा सकता है। वह जनता का स्वप्न है लोक साहित्य में वे सारी अनुभूतियां आती है, जो नागरिक जीवन में प्रच्छन्न होकर ललित साहित्य बनी। ऋग्वेद से लेकर आज तक लोक साहित्य की धारा सहज प्रवाहमान है तथा कहने और लिखने में तो भारतीय जन मानव जाति के गुरु माने जाते हैं।

पंडित शिवराज सहाय चतुर्वेदी ने तो इन कथाओं को हवाई कथाएं कहा है। इनका जन्म कब, कहां और कैसे हुआ यह प्रश्न तो हमें आज तक नहीं मिल सका। यह विशिष्ट साहित्य की जनक है लोककथाएं। वाल्मीकि के भी बहुत पहले रामकथा हमें लोक मानस में विद्यमान थी। वाल्मीकि की रामायण और तुलसी की रामचरितमानस ने राम को हमारे इतने निकट ला दिया है कि सारे देश ही नहीं भारत के गांव-गांव में, धनिकों के महलों में, निर्धनों की झोंपड़ियों में, प्रत्येक वर्ग में, दशरथ का परिवार उनका अपना ही तो परिवार बन गया है। आज तक भारतीय लोक मानस अपने पुत्र को राम, पिता को दशरथ, माता को कौशल्या, भाई को भरत, विमाता को कैकई और सेवक को हनुमान मानते हुए, सबको अपना कुटुंबी ही तो मानता रहता है। इस प्रकार रामचरित ही लोकसाहित्य का प्रधान विषय बन गया है। अब हम मध्यप्रदेश की लोकभाषाओं की बात करें तो मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड में राम का गौरवशाली इतिहास हमें मिलता है। बुंदेलखंड के कण-कण में भगवान राम बसे हैं प्रसिद्ध स्थल चित्रकूट में राम ने निवास किया इसीलिए यहाँ की लोकसंस्कृति और साहित्य में राम रचे बसे हैं। लोकगीतों की आत्मा राम है। प्रत्येक संस्कार में राम ही राम मिलते हैं, पुत्र जन्म में राम जन्म होता है।

अवध में जन्मे राम सलोना,
बंधनवारे बंधे दरवाजे।
कलश धरे दोऊ कोना,
अवध में जन्मे राम सलोना।
रानी कौशल्या के लाल भये है,
राजा दशरथ के छौना। अवध...
कैकय, सुमित्रा ने हार लुटाये,
राजा दशरथ ने सोना। अवध...
हीरा लाल जड़े पलना में,
नजर लगे न टोना। अवध...
रानी कौशल्या की कोख सुरानी,
राजा दशरथ के नैना। अवध ....

देवर भाभी के प्रतिदिन के मनोरंजक झगड़ों में भी लक्ष्मण, सीता अंकित है तो कहीं लक्ष्मण, सीता भाभी को मां कौशल्या जैसा आदर देते हुए दिखते हैं। कृषि प्रधान भारत की बुंदेली जनता ने राम सीता को भी कृषक बना दिया है, सीता निंदाई करती है, लक्ष्मण हल चलाते है, और राम बीज बोते जाते है। अश्विन में गेहूं होते समय रामा रे.... रामा रे.... के नाम से गीत गाते हुए अपना दैनिक कार्य और भक्ति साथ-साथ करते हैं। सोलह संस्कारों में राम ही राम मिलते हैं। लग्न समेत टीका भी राम का ही होता है।

आज मोरे राम जू खों लगुन चढ़त है।
लगुन चढ़त है आनन्द बढ़त है। आज मोरे...

कानन कुण्डल मोरे राम जू खों सोहें,
गालन बिच मुतियन लर रूरकत है।
केशर खौर मोरे राम जू खों सोहे
सो गर बिच गोप जंजीर लसत है।
कंकन चूरा मोरे राम जू खों सोहे
हातन बिच गजरा दरशत है।
राम जू के दरसन खों जियरा ललचत है। आज मोरे...

विवाह किसी भी जाति के व्यक्ति का हो, कल्पना तो राम सीता की ही होती है। वनगमन के समय सीता की सुकुमारिता का परिचय कुछ इस प्रकार है- धीरे चलो रे... हारी मैं... लक्ष्मण धीरे चलो। ऐसे करुण गीतों का प्रयोग हमें मिलता है कि जिससे सहृदय पाठक रो ही उठता है। एक बिलवारी गीत में अयोध्यावासी भी राम के साथ ही वनगमन के उत्सुक है। एक फाग गीत में मधुर ऋतु को पुष्प वाटिका प्रसंग से जोड़ दिया गया है। हनुमान जी पौरुष के प्रतीक एवं अभयदाता के रूप में उपस्थित रहते हैं। यहां दिवारी गीतों में रामकथा के प्रसंग स्वभावतरू ही गुथे होते हैं क्योंकि दिवारी पर्व पर जो, भारत का क्या पूरे विश्व का ही पर्व है, राम के अयोध्या वापस आने की खुशी में मनाया जाता है। तीर्थ व्रत के गीतों में भारत मिलाप की चर्चा बहुत रहती है।

इस प्रकार विभिन्न भाषाई लोकसाहित्य के अंदर अन्य रामकाव्यों की अपेक्षा लोक रामकथा अधिक हृदयस्पर्शी मर्मस्पर्शी एवं स्वाभाविक है। लोककवियों में यह विशिष्ट साहित्य में रामकथा राम की निजी कथा है जबकि लोक साहित्य में रामकथा जन-जन की कथा है। यह बहुत बड़ा अंतर है लोकजीवन में राम सीता घुल मिल गए हैं। वहीं विशिष्ट साहित्य में भिन्न-भिन्न नवीन उद्धावनाएं हमें लोक साहित्य में मिलती है।

जिनमें से कतिपय अत्यंत मनोहारी है। हमने देखा कि इस नवीनता का कारण क्षेत्रीय विशेषताएं अधिक है। यही कारण है कि एक ओर राम साहित्य क्षेत्रीय और प्रांतीय भाषाओं की सीमाओं में बंधा हुआ है किंतु उसका अंतर भाग अंतरभारतीय है। जिस प्रकार मानव आत्मा एक और आवरण अर्थात शरीर भिन्न है। उसी प्रकार यह है भिन्न-भिन्न लोक साहित्य की भाव भूमियाँ प्रायः समान है। केवल भाषा और अभिव्यंजना की प्रणालियों ही भिन्न है। सब कुछ राम ही है, हम सब का राम हो जाना देखिए जितना आसान है, उतना ही कठिन है। राम तो विश्वास की साकार मूर्ति हैं और हम स्वभाव से ही अविश्वासी होते हैं। राम होने का अर्थ है जीवन में विश्वास होना है, प्रत्येक परिस्थिति में संतुष्ट रहना प्रेममय होकर रहना।

सिया राममय सब जग जानी।
करउं प्रणाम जोरि जुग पानी।।

निष्कर्ष

1. लोक साहित्य का महत्व - लोकसाहित्य भारतीय संस्कृति की आत्मा है, जो केवल धार्मिक या शास्त्रिक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि जनजीवन और उसकी संवेदनाओं के वास्तविक चित्रण के रूप में अत्यधिक मूल्यवान है।

2. रामकथा का प्रभाव - रामकथा भारतीय लोक मानस में गहरे रूप से समाहित हो चुकी है और यह न केवल धार्मिक काव्य के रूप में, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय स्तर पर भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राम के पात्रों का लोक जीवन से जुड़ाव उन्हें सामान्य जन की चिंता और आस्था का प्रतीक बना देता है।

3. भाषाई और सांस्कृतिक विविधता - लोकसाहित्य विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और क्षेत्रीय विशेषताओं के साथ परिष्कृत हुआ है। हालांकि लोक साहित्य विभिन्न भाषाओं में व्यक्त किया गया है, लेकिन इसके तत्व और विचारधारा अंतरभारतीय और सार्वभौमिक रूप से समान हैं।

4. रामकथा का सार्वभौमिक संदेश - लोकसाहित्य में रामकथा का एक विशिष्ट पक्ष यह है कि यह एक आम

आदमी की कथा है, न कि किसी महान राजपूत या देवता की। राम, सीता, लक्ष्मण और हनुमान का आदर्श लोक जीवन के हर पहलू में समाहित है चाहे वह विवाह, संस्कार, त्योहार या जीवन के संघर्ष हों।

5. विश्वास और संतुष्टि के प्रतीक राम - राम न केवल एक ऐतिहासिक या धार्मिक पात्र हैं, बल्कि वे विश्वास, संतोष और प्रेम के प्रतीक भी हैं। लोकसाहित्य में राम के माध्यम से हमें जीवन के प्रत्येक मोड़ पर सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने का संदेश मिलता है।

इस प्रकार, लोकसाहित्य में रामकथा एक महत्वपूर्ण सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक धारा के रूप में स्थापित है, जो भारत की समग्र लोक संस्कृति को एकता और सामूहिक चेतना की दिशा में मार्गदर्शन करती है।

संदर्भ

1. लोक साहित्य की प्रासंगिकता - संपादक डॉ.जय श्री शुक्ल, डॉ राजेश चतुर्वेदी, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2014
2. मिश्र विद्यानिवास - लोक मानस में राम, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली।
3. मिश्र शची - लोक रामायण, सर्वभाषा ट्रस्ट प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. गौतम एस.पी. - श्री रामचरित मानस में अध्यात्म और विज्ञान, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
5. गोस्वामी तुलसीदास - रामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर, उत्तरप्रदेश।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों में मूल्य-विघटन

डॉ. आलपाटि भानु प्रसाद
हिन्दी प्राध्यापक,
यस.आर.आर - सी.वी.आर शासकीय महाविद्यालय(स्वायत्त), विजयवाड़ा।

मानव समाज में प्रवृत्तिगत जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाकर मानव-जीवन का उन्नयन करनेवाले तत्व मूल्य कहे जाते हैं। दया, करूणा, मैत्री, प्रेम, धर्म, संस्कृति के सर्वोच्च मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित है। "'मूल्य' शब्द अंग्रेजी के 'वेल्यू' शब्द का समानार्थी न होकर अच्छा अर्थात् 'शिवं' तथा 'सुंदरं' के अर्थ में लिया गया है। वह दृष्टिकोण(सत्य) जो शिवं और सुंदरं-संयुक्त है, मूल्य है।"[1] पाश्चात्य सभ्यता की अंधानुकरण के कारण भारत की जनता में मूल्यों का विघटन हो रहा है। फलतः उसके जीवन संघर्षो से भर गया है। नैतिक मूल्यों का ह्रास उन में मानवीयता को भुलाने की प्रेरणा देती जा रही है।

मूल्य, जीवन के उदात्त पक्ष से जुड़े हुए हैं। चाहे वह मौलिक हो या आध्यात्मिक मूल्य ही मानव को पशु से या विकृत प्रवृत्तियों से पृथक रखते हैं तथा मानवीय स्वरूप प्रदान करते हैं। मूल्य, मानव को पूर्ण आत्मानुभूति प्रदान करने में सक्षम होते हैं। मूल्य व्यक्ति को विकास की ओर प्रेरित करते हैं। मूल्य के द्वारा ही मानव अपने लक्ष्य तक पहुँचाता है। मूल्य के संबंध में डब्लू.एम.अर्बन ने इस प्रकार बताया है कि "किसी भी इच्छा या आवश्यकता के पूरक ही मूल्य है। ...वही वस्तु अंतिम रूप से स्वलक्ष्य दृष्टि से मूल्यवान है जो कि व्यक्ति को आत्मविश्वास अथवा आत्मानुभूति की ओर ले जाती है।"[2] मूल्य से ही व्यक्ति आत्मविश्वास के साथ अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

मूल्य को धर्म, समाज, संस्कृति आदि से संबंधित मानते हुए डॉ.बैजनाथ सिंहल ने मूल्य की परिभाषा इस प्रकार दिया है कि- "मनुष्य सृजनशील प्राणी है। अपने सृजनात्मक रूप मे वह मूल्यों की-ही उपलब्धि प्राप्त करता है। ये मूल्य अनुभूति की समग्रता में मौलिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्तर पर उपलब्ध होते हैं। धर्म और ईश्वर भी सांस्कृतिक स्तर की कल्पनाएँ हैं औऱ वे उच्च मूल्य के प्रतीक हैं।"[3]

साहित्य का मूल्य से गहरा संबंध है। साहित्य एक दर्पण है, जो अपने समय के मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है साथ ही उन्हें संशोधित करके मनुष्य को नये मूल्य-निर्माण की प्रेरणा देता है। मूल्य, मनुष्य द्वारा निर्मित कसौटी है, जिससे साहित्य की परख की जाती है। मानव-मूल्यों को साहित्य से पृथक नहीं किया जा सकता, क्योंकि दोनों का ध्येय आनंद की प्राप्ति ही है।

मानव के मन में सत् और असत् दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ होती हैं। सत् प्रवत्तियों से प्रेरित कार्य मनुष्य जाति का कल्याण करनेवाले होते हैं, इसीलिए ये नैतिकता के अंतर्गत आते हैं और असत् प्रवृत्तियों से प्रेरित कार्य मनुष्य का हनन करते हैं। अतः ये अनैतिकता से संबंधित हैं। इस प्रकार धार्मिकता, उदारता, दया, प्रेम आदि ऐसे मूल्य हैं जो व्यक्ति को नैतिकता से मंडित करते हैं।

वैज्ञानिक, तकनीकि उन्नति तथा बाजारीकरण के कारण मानव में मूल्यों का ह्रास हो रहा है। प्यार, बलिदान, त्याग आदि गुणों के साथान पर घृणा, स्वार्थ, भ्रष्टाचार तथा धोखे-बाज़ी बढ़ रहे हैं। कहानीकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इसका चित्रण

अपनी कहानियों में खूब किया है।

'अतिथि देवोभव' कहानी संग्रह की 'पूँजी माल और मुनाफा' कहानी में बाबूजी पात्र के द्वारा धोखे-बाज़ी करने वाले आदमियों का चित्रण किया गया। जो दूसरों की सहायता करने का नाटक रचा कर अपना उल्लू सीधा कर लेता है। ऐसे लोगों का विश्वास है कि दुनिया में काम की कमी नहीं है, सिर्फ करनेवाला होना चाहिए। डॉ.अमानुल्ला साहब एक मदरसे को लेकर हाजी उस्मान अली से मुकदमा लड़ रहे थे। मदरसा बंद पड़ा था। दोनों फकीर चाहते थे कि मुकदमें का फैसला उनके हक में हो और मदरसे की असली प्रबंधक वे ही माने जाएँ। बाबूजी दोनों फकीरों की सहायता एक साथ कर रहे थे। वह कहता था कि जिस जज के इजलास में यह मुकदमा है, इन्तफाक से वे उनके ससुर के भाई के पुराने मित्र हैं। अभी पिछले हफ्ते ही वे हाजी उस्मान के यहाँ गए थे और वादा कर आए थे कि उनकी जीत निश्चित है।"[4]

बाबूजी दोनों से पैसा लेकर धोखा करता रहता था। दूसरों को धोखे-बाज़ी करते हुए वह अपनी जिंदगी को खूब ऐश से बिता रहे थे। वह स्वयं कहता है कि - "उड़ा लो मौज बाबू जी। वरना अल्ला-मियाँ पूछेंगे कि मैं ने जो बेशकीमती जिंदगी तुम्हें दी थी, उसे तूने मुफ्त में क्यों गँवा दिया, तो क्या जवाब दोगे?"[5] पर उसकी पत्नी को यह सब अच्छा नहीं लगता। वह अपनी पति का विरोध करती थी। बाबू जी ने जेब से कुछ नोट निकालकर अपनी पत्नी के आगे फैला दिए। तब उन दोनों के बीच इस प्रकार संवाद होती कि -

"यह क्या है?

पैसे हैं और क्या हैं?

तो आज आप फिर लोगों को जट-जुटकर आए हैं? काम-धाम तो न करने की जैसे कसम तो न करने की जैसे कसम खा ली है आपने..!

तो क्या तुम समझती हो ये पैसे मुफ्त में आए हैं?

मेरी समझ में तो मुफ्त में ही आए हैं। मैं ये पैसे नहीं लूँगी। आपने कमाया है तो आप ही इन्हें खर्चे। आपको न हो खुदा का डर, पर मुझे तो है। एक ही तो औलाद है, अगर किसी की आह उसे लग गई तो मैं क्या करूँगी?

और बाबू जी उन्हें सुना-सुनाकर कहने लगे- ज्यादा इतराओ नहीं, रख लो इन्हें। आई हुई लच्छमी को ठुकराना अच्छी बात नहीं है। जब तक जिंदगी है, खुदा जो देता है उस कबूल करो, औऱ मस्त रहो। वरना मरने के बाद वह जब पूछेगा कि मैं ने इतनी बेशकीमत जिंदगी तुम्हें दी थी, उसे तुम ने मुफ्त में क्यों गँवा दिया तो क्या जवाब दोगी?"[6] इस प्रकार समाज में बाबू जी जैसे लोगों में नैतिक मूल्यों का ह्रास के कारण अनेक लोगों को संघर्षों का सामना करना पड़ता है। इन पर विश्वास करके अपना सब कुछ खो देना पड़ता है।

प्रस्तुत समाज में लोगों की यही भावना है कि जितना भी पाप करो, बस मंदिर जाकर दक्षिणा चढ़ाओ या प्रायश्चित करो, अपना सब पाप दूर हो जायेगा। अपने पाप की कमाई में भगवान को भी भागीदारी बना रहे हैं। 'पुण्यभोज' कहानी में इसी का चित्रण किया गया।

मुस्लिम समाज में यह रीति-रिवाज़ प्रचलित है कि किसी की मत्यु के बाद ग्यारहीं की दावत का आयोजन करते हैं। इसे पुण्यभोज के नाम से भी पुकारते हैं। इस दिन जितने ही लोग खायेंगे और जितना ही ज्यादा खाना खाया जाएगा, उतना ही ज्यादा पुण्य मिलेगा। इसके बारे में व्यंग्य करते हुए खुदाबक्श सोचता है कि "क्या बढ़िया कानून है साहब कि जिंदगी-भर चोरी-बेईमानी कीजिए और साल में एक बार ग्यारहवीं शरीफ पर खूब खिला दीजिए लोगों को, सारे गुनाह माफ दूसरों का गला काटकर अपना घर भर लीजिए औऱ खुदा की राह पर जकात दे दीजिए, अल्ला मियाँ खुश!

हाजी कमरुद्दीन के बारे में कौन नहीं जानता नंबर दो का धंधा करते हैं और अधिकारियों को पार्टियाँ दे-देकर ईमानदार बने रहते हैं।...हाजी समरुद्दीन को अपनी काली हथेलियों का रहस्य अच्छी तरह पता है। इसीलिए वे चाहते हैं कि साल में कई बार ग्यारहवीं शरीफ मनाई जाए और वे राहे-खुदा पर खाना खिलाकर अपनी हथेलियों को चमकाते रहें। पर उन्हें अफसोस है कि इस साजिश में खुदा सिर्फ एक ही बार फँसता है!"[7] हाजी कमरुद्दीन जैसे लोग जितना भी पाप करे, पुण्यभोज से अपना

हाथ साफ करना चाहते हैं।

इस संसार में मानव मूल्यों का ह्रास हो रहा है। कुछ लोग सहायता करने के बहाने अपना काम पूरा कर लेते हैं। मुख्यतः अमीर लोग अपना काम करवाने के लिए हमेशा गरीबों की सहायता करने का नाटक करते रहते हैं। इसका चित्रण अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपनी कहानी संग्रह 'कितने कितने सवाल' की 'फौलाद बनता आदमी' कहानी में किया। दुर्गाचरण ने रामधन को बुलाकर इस प्रकार कहा, "तुम्हारा लड़का आदमी बन जाएगा, रामधन। इसे मेरे हाथ लगा दो। तुम रिक्शा चलाकर तो इसे पढ़ाने-लिखाने से रहे। यहाँ गाँव भी तुम्हारे पास क्या रखा है लड़का तेज है, उसे मेरे साथ भेज दो। वहाँ ठाठ में रहेगा, पढ़-लिखकर आगे बढ़ जाएगा। किसी अच्छी नौकरी पर लगवा देंगे। यहाँ आवारा छोकरों के चक्कर में पड़कर खराब हो जाएगा।"[8]

इस प्रकार समझा-बुझाकर दुर्गाचरण ने दुलारे को शहर ले जाता है। पर वहाँ इसके विपरीत है। "दुलारे को लगा कि यहाँ आकर उसने ठीक नहीं किया है। उसने महसूस किया कि दासता का इतिहास अभी खतम नहीं हुआ है। फिर भी आनेवाले दिनों के प्रति एक आशा को अपने मन में जन्म देकर वह चिंता-मुक्त होने का प्रयत्न करने लगा।... किसी को किसी सम्मेलन में भाग लेना होता, किसी को किसी मंत्री से मिलना होता, किसी को कोई लाइसेंस बनवाना होता..वह सबको ट्रीट करने का प्रयास करता। ..जब दुर्गा चरण जी वहाँ होते तब तो वह और भी परेशान रहता। उनकी भी सेवा और उनके वोटरों की भी सेवा। कभी-कभी तो बाहर की दुकान पर भेजकर दुर्गाचरण जी उससे चाय का ऑर्डर दिलवाते और पैसा देना भूल जाते तो उसे खुद पैसा देना पड़ता। इस प्रकार अम्माँ ने जो थोड़े से पैसे उसे दिए थे वे भी खतम हो चले थे और धीरे-धीरे वह अपनी मूर्खता के लिए बेहद अफसोस का अनुभव कर रहा था। सबसे बड़ा कष्ट उसे इस बात का था कि उसका मूल उद्देश्य प्रायः नष्ट होता जा रहा था।...वह कमरे में कुछ पढ़ पाता था, न कॉलेज जाने की उसे फुर्सत मिल पाती थी।"[9] इस प्रकार दुलारे का इस्तेमाल करता रहा।

संदर्भ

1 हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, डॉ.मोहिनी शर्मा, पृ.2
2 रांगेय राघव के उपन्यासों में मानव मूल्य, डॉ.सुनीता बानी, पृ.10, विकास प्रकासन, कानपुर, प्र.सं-2007
3 रांगेय राघव के उपन्यासों में मानव मूल्य, डॉ.सुनीता बानी, पृ.11, विकास प्रकासन, कानपुर, प्र.सं-2007
4 अतिथि देवोभव, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ.33
5 अतिथि देवोभव, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ.30
6 अतिथि देवोभव, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ.37
7 अतिथि देवोभव, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ.52
8 ताकि सनद रहे, कितने-कितने सवाल, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ.148
9 ताकि सनद रहे, कितने-कितने सवाल, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ.149

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

मोक्षप्राप्तये ललितकलायाः प्रासंगिकता

Prakash Gayen
Research Scholar
Dept. of Education
National Sanskrit University, Tirupati
Phone:9381228697
Email:prakashgayen383@gmail.com

मोक्षः भवति दार्शनिकशब्दः। सनातनधर्मतः एष शब्दः आगतः। अस्य अर्थः भवति मोहात् मुक्तिः। विभिन्नशास्त्रे दर्शने च उक्तम् अस्ति यत् जन्ममृत्युबन्धनात् मुक्तिः भवति मोक्षः इति। परं ललितकलायां मोक्षः कथं लक्ष्यते तत् पश्यामः। प्रधानतया सप्त ललितकलाः भवन्ति। यथा- 1. चित्रकला 2. सङ्गीतकला 3. वास्तुकला 4. मूर्तिकला 5. काव्यकला 6. रङ्गमञ्चकला 7. नृत्यकला चेति।

चित्रकला

विष्णुधर्मोत्तरपुराणे चित्रकलाविषये विस्तृता व्याख्या दृश्यते। तत्र चित्रकलायाः महत्त्वम् उक्तं यत्-

कलानां प्रवरं चित्रं धर्मार्थकाममोक्षदम्।
माङ्गल्यप्रथमं दोतद् गृहे यत्र प्रतिष्ठितम्॥

अर्थात् कलासु श्रेष्ठकला भवति चित्रकला। अत्र धर्म-अर्थ-काम-मोक्षाणां प्राप्तिः भवति। अतः यत्र सुचित्राणि अधिकानि भवन्ति तत्र माङ्गल्यं सर्वदा विराजन्ते। तथैव मन्दिरे बहूनि चित्राणि भवन्ति। मानवाः मङ्गलं प्राप्नुवन्ति। अतः मङ्गलं यत्र भवति तत्र मोक्षमार्गः अपि भवति।

सङ्गीतकला

सुव्यवस्थितध्वनेः रसस्य च यत्रोत्पत्तिः भवति तदेव सङ्गीतम्। गीतं वाद्यं तथा नृत्यं इत्येतत्त्रयं सङ्गीतमुच्यते। अर्थात् गीत-वाद्य-नृत्याणां समावेशः सङ्गीतम् इति उच्यते। मानवाः विभिन्नसमये, विभिन्नपरिस्थितौ सङ्गीतं गायन्ति। यथा युद्धसमये, उत्सवे, प्रार्थनासमये भजनसमये वा। पुर्वं यदा देशयोर्मध्ये युद्धम् प्रचलति स्म, तस्मिन् समये स्वतन्त्रताप्राप्तये विभिन्नगीतं गीतवन्तः। यथा भारतदेशे वन्दे मातरं, इन् क्लाव जीन्दावात्, जनगनमन अधिनायक इत्यादीनि गीतानि गायन्ति। अतः एतादृशेन सङ्गीतेन यः उत्साहः, आनन्दः, अन्यदेशात् इत्यादिः जायते, तत् सर्वं मोक्षप्राप्तिसमानमेव। अर्थात् सङ्गीतं मोक्षमार्गत्वेन उपयुज्यते इति सिद्धम्।

मानवाः बहुत्र विभिन्नोत्सवान् कुर्वन्ति। तत्र मोक्षलाभाय नामसङ्कीर्तनं कुर्वन्ति। सूर्याय नमः इति प्रातः स्नानं कृत्वा प्रार्थनां कुर्वन्ति जनाः। माम् रक्षतु, मोक्षप्राप्तिः भवतु इत्यपि प्रार्थना क्रियते।

मानवाः मन्दिरं गत्वा कृष्णभजनं कुर्वन्ति। कृष्णकृपाप्राप्तिः नाम मोक्षप्राप्तिः इति कथ्यते। अतः सङ्गीतकला एकः मोक्षमार्गः भवति।

वास्तुकला

प्राचीनकालादेव मानवाः मोक्षप्राप्तये वास्तुकलायाः प्रयोगं कुर्वन्ति। कथम् इत्युक्तौ वास्तुकला नाम निर्माणकला इति। अर्थात् गृहनिर्माणं, मन्दिरनिर्माणम् इत्यादि अस्या कलायाः प्रधानोद्देश्येम्।

तर्हि वयं संस्कृतवाङ्मयं पश्यामश्चेत् तत्र मुनयः, ऋषयः स्वकीयोद्देश्यस्य, यशसः तथा मोक्षस्य प्राप्त्यर्थम् अरण्ये निवसन्ति स्म। निवासार्थं ते गृहनिर्माणम् अर्थात् कुठिनिर्माणं कुर्वन्ति स्म। यथा रामः अपि कृतवान् आसीत। तत्रैव ते ध्यानं, पुजां, यागादि च कृत्वा अभीष्टेच्छां पूरितवन्तः।

मूर्तिकला

भारतीयसनातनधर्मे यथा आदिकालात् मूर्तिपुजा जायते तथैव वर्तमाने अपि दृश्यते। विभिन्नेषु काव्येषु, ग्रन्थेषु अपि मुर्तिपुजा दृष्टुं शक्यते। यथा रामायणे, महाभारते च। प्राचीनकालात् एव जनाः स्वीयेष्टदेवतायाः मूर्तिनिर्माणं कृत्वा अभिष्टप्राप्तये मोक्षप्राप्तये वा पुजां कुर्वन्ति। अधुना मानवाः मानसिकेच्छायाः आकाक्षितेच्छायाः प्राप्त्यर्थम्, ईश्वरप्राप्त्यर्थं, दुःखात् मुक्तिप्राप्त्यर्थं, रोगात् निरामयप्राप्त्यर्थम् आराध्यदेवतायाः पुजां कुर्वन्ति। अर्थात् मोक्षप्राप्तये अयमेव एकः मार्गः अस्ति।

काव्यकला

काव्यं साहित्यस्य तादृशः पक्षः वर्तते, यत्र कापि कथा अंशः मनोभावाना वा कलात्मकरूपेण भाषाद्वारा अभिव्यञ्जयितुं शक्यते। भरतमुनिना स्वकीयनाट्यशास्त्रे काव्यविषये उक्तं यत् रमणीयार्थप्रतिपादकशब्दाः काव्यम् इति। अर्थात् रमणीयार्थप्रतिपादकाः इत्युक्ते आह्लादजनकाः शब्दाः।

परन्तु साहित्यदर्पणकारेण विश्वनाथेन उक्तं यत् वाक्यं रसात्मकं काव्यम् इति। अत्रैव आचार्यविश्वनाथेन मोक्षविषये उक्तम्-

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते॥ इति।

अर्थात् धर्म-अर्थ-काम-मोक्षप्राप्तिः काव्यस्य प्रयोजनम् अस्ति। अतः वक्तुं शक्यते काव्यम् अपि एकः मोक्षमार्गः अस्ति।

रङ्गमञ्चकला

रङ्गमञ्चकलात्वेन प्रधानतया नाटकं वक्तुं शक्यते। नाट्यकलायाः विकासः सर्वप्रथमं भारतवर्षे एव जाता। ऋग्वेदे कतिपयसूक्तानि सन्ति, यथा- पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी इत्यादीनि। एतानि सूक्तानि परिशील्य प्रेरणां सम्प्राप्य नाटकरूपे अथवा नाट्यकलारूपे विकासं प्राप्तानि। भरतमुनिना उक्तम्- नाट्यकला दैवी भवति। अर्थात् त्रेतायुगस्यारम्भे सत्ययुगानन्तरं देवाः सृष्टिकर्तारं ब्रह्माणं प्रार्थितवन्तः। हे देव मनोरञ्जनार्थम् एकं मार्गं निर्मान्तु। यत्र सर्वेषां दुःखस्य नाशः किञ्च आनन्दस्य प्राप्तिः स्यात्।

फलतः ब्रह्मा ऋग्वेदतः कथोपकथनम्, सामवेदतः गीतम्, यजुर्वेदतः अभिनयम्, एवञ्च अथर्ववेदतः रसं स्वीकृत्य नाट्यकलायाः निर्माणं कृतवान्। अतः वक्तुं शक्यते यत्र दुःखनिवारणम् एवञ्च आनन्दस्य प्राप्तिः भवति तत्र मोक्षप्राप्तिः, मोक्षमार्गः अपि भवति।

नृत्यकला

ताललयाश्रयः नृत्यम् इति दशरूपके नृत्यस्य लक्षणम् उक्तम्। नृत्यं भवति मानवजीवनस्य एका सार्वभौमिककला। अस्याः जन्म मानवजीवनेन सह वर्तते। शिशुः जन्मानन्तरं रोदनं, क्रोधः, बुभुक्षा इत्यादिभावाभिव्यक्तिं हस्तपादसञ्चालनद्वारा करोति। अनया आङ्गिकक्रियया नृत्यस्य उत्पत्तिः सञ्जाता। एषा नृत्यकला देव-देवी-दैत्य-दानव-मनुष्य-पशु-पक्षिणाम् अपि प्रिया भवति।

भारतीयपुराणे शत्रुनाशः ईश्वरप्राप्तिः इत्यस्य साधनत्वेन नृत्यं स्वीकृतम्। यदा दानवानाम् अमरत्वप्राप्तेः सङ्कटः आगतः

तदा भगवान् विष्णुः मोहिणीरूपं धृत्वा स्वीयलास्यनाट्यद्वारा दानवेभ्यः त्रिलोकं रक्षितवान्। अतः वक्तुं शक्यते नृत्यकला एकः मोक्षमार्गः एव।

उपसंहारः

संस्कृतवाङ्मये मोक्षवादः इति विषये कस्मिन् शास्त्रे उक्तम् अस्ति इति प्रश्ने सति, मया स्वीकृतविषयम् अर्थात् मोक्षप्राप्तये ललितकलानां प्रासङ्गिकता इति पुरस्कृत्य चित्रकलायां, सङ्गीतकलायां, वास्तुकलायां, मूर्तिकलायां, काव्यकलायां, रङ्गमञ्चकलायां नृत्यकलायां च मोक्षविषये आलोचितम्। तत्र प्राचीनकाले यथा कलायाः प्राधान्यम् आसीत् वर्तमाने अपि संसारे कलायाः अर्थात् ललितकलायाः व्यवहारः दृश्यते। केवलं मृत्युप्राप्तिरेव मोक्षप्राप्तिः भवितुं नार्हति। अपि तु दुःखात् आनन्दः, ईश्वराराधना, अभीष्टेच्छाप्राप्तिः अपि मोक्षमार्गः भवति।

इतोऽपि वक्तुं शक्यते यत् उचितकर्म अर्थात् करणीयं यत् कर्म तत् समयानुगुणं नियमानुसारं कुर्मश्चेत् अवश्यम् अस्माकं जीवने लाभदायकं भवति, मोक्षप्राप्तिः अपि भवति।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. शार्ङ्गदेवकृतसंगीतरत्नाकर, सुभद्रा चौधुरी, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण-2006.
2. भारतीय कला और संस्कृति, डॉ.भगवतीलाल राजपुरोहित, शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण-2003.
3. सारा वर्नहाट : दि आर्ट ऑव दि थिएटर (१९३०)
4. एन. डिंडसे : दि थिएटर (१९४८)
5. शारदातनय : भावप्रकाशनम् (१९३०)
6. लाडिंस निकल : वर्ल्ड ड्रामा (१९५१)
7. https://hi.wikipedia.org/
8. https://saptswargyan.in/
9. https://hi.unionpedia.org/
10. https://lalitkala.gov.in/
11. http://colart.delhigovt.nic.in/
12. https://www.hindwi.org/

पर्यावरण संरक्षण में लोक साहित्य का योगदान

डॉ. शालिनी शुक्ला
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
खुन खुन जी महिला महाविद्यालय, चौक, लखनऊ

प्रस्तावना : पर्यावरण संरक्षण का प्रश्न आज वैश्विक मंच पर सबसे अधिक विचारणीय और चिंतनीय विषयों में से एक बन गया है। जैसे-जैसे मानव सभ्यता ने औद्योगिक विकास की ओर कदम बढ़ाए हैं, वैसे-वैसे प्रकृति का दोहन बढ़ा है और इसका संतुलन बिगड़ता गया है। परंतु जब हम भारत जैसे देश की परंपराओं और संस्कृति की ओर दृष्टि डालते हैं, तो पाते हैं कि यहाँ पर्यावरण संरक्षण कोई नया विचार नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक पारंपरिक शैली रही है। प्रकृति और लोक साहित्य का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। प्रकृति और पर्यावरण का मानव जीवन में अपरिहार्य योगदान है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को देवी स्वरूप माना गया है, पेड़-पौधों, नदी, तालाब, समुद्र, वायु, अग्नि, धरती और आकाश सभी मानवीय परम्परा में अनादिकाल से पूजनीय रहे हैं। भारतीय संस्कृति और परम्परा में मनुष्य को जीवन पर्यन्त प्रकृति पूजा और आराधना का विधान रहा है।

भारतीय लोक साहित्य चाहे वह लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें, लोकोक्तियाँ, पर्व-त्योहार या ग्रामीण परंपराएं, सभी में प्रकृति के साथ मानव का गहरा और संवेदनशील सम्बन्ध झलकता है। यह साहित्य न केवल मनोरंजन का माध्यम है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन और जैव विविधता की रक्षा का सांस्कृतिक दस्तावेज भी है। यह शोध पत्र इसी विषय पर प्रकाश डालता है, कि किस प्रकार लोक साहित्य, जो मौखिक परंपराओं में जीवित है। पर्यावरणीय चेतना को जन्म देता है और संरक्षण की भावना को समाज में प्रसारित करता है। अतः हम यह समझ सकते है कि पर्यावरण से मनुष्य व सभी जीव-जंतुओं का सम्बन्ध उनके जन्म से प्रारम्भ होकर मृत्यु तक रहता है। इसी क्रम में हम लोक साहित्य को भी समझने का उपक्रम करेंगे कि लोक साहित्य क्या है? हम बात करें लोक साहित्य की तो वह परम्परा में चलती आ रही वह विधा है जो आम जन तक जनश्रुति के माध्यम से जन-जन तक पहुँचती है।

लोक साहित्य की परिभाषा और उसका स्वरूप

लोक साहित्य का स्वरूप अत्यधिक विविध और व्यापक है। जो कि आम लोगों की भाषा, भावना, और अनुभवों को प्रतिबिंबित करता है। यह साहित्य आम लोगों के जीवन से जुड़ा होता है और उनकी संस्कृति, परंपराओं, और मान्यताओं को दर्शाता है। लोक साहित्य में अक्सर स्थानीय भाषा और बोलचाल की भाषा का उपयोग होता है, जिससे यह साहित्य आम लोगों के करीब होता है।

लोक साहित्य का महत्व इस बात में है कि यह एक समुदाय की संस्कृति और परंपराओं को संरक्षित करता है। यह साहित्य पीढ़ियों से चली आ रही मौखिक परंपराओं को जीवंत रखता है और नए पीढ़ी को अपनी संस्कृति से जोड़ता है। लोक साहित्य के माध्यम से हम एक समुदाय की भावनाओं, विचारों, और अनुभवों को समझ सकते हैं और उनकी संस्कृति

का हिस्सा बन सकते हैं। लोक साहित्य वह साहित्य है, जो जनसामान्य के अनुभव, ज्ञान, भावनाओं और विश्वासों से उत्पन्न होता है और पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में प्रसारित होता है। इसका रचनाकार कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं होता, बल्कि यह सामूहिक चेतना और जीवन का अभिव्यक्त रूप होता है। पीपल की पूजा, बरगद की पूजा, आम पल्लव को पूजा के निकट रखना केले के पत्ते, बाँस, तुलसी, दूर्वा, फल-फूल सबको हम अपने पूजा में समाहित करते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के आंगन में तुलसी का होना लोकमंगल और लोक चेतना का प्रतीक है। जिस के लिए स्त्रियाँ कामना करती हैं। कि ...

आरी, आरी तुलसी लगाइब, चौमुख दीप जलाय!
रामा अंगना बेदिया बनाइब, चंदन देहय लिपाय!

इसी तरह बेल पत्र को समृद्धि सूचक वृक्ष के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए स्त्रियाँ गाते हुए समृद्धि की कामना करती हैं।

जे कोई रोज चढ़ावे बेलपतिया, कभी गिनती न होय कँगलवा में! इस प्रकार से अनेक रूपों में लोक साहित्य जीवन के सभी आयामों में परिलक्षित होता है।

लोककथाओं में प्रकृति संरक्षण का महत्व रू हमारी संस्कृति और परिवेश में वृक्ष एवं वनस्पति के लिए अत्यंत आदर और सम्मान का भाव रहा है। प्रकृति पूजन का विधान आदिकाल से ही मिलता है। विभिन्न वृक्षों और वनस्पतियों के औषधीय गुणों और देवी देवताओं के वासस्थल के रूप में उनका महत्व स्वतरू सिद्ध है। आम, नीम, आंवला, पीपल और बरगद जैसी जीवन दाता वृक्ष सदैव हर हमारे जीवन के मूल में हैं। आम और नीम सभी प्रकार की पूजा में तो आंवले का पेड़ भी अत्यंत शुभ माना गया है। इसे तो औषधि तुल्य कहा गया है। कार्तिक मास में इसका विशेष महत्व बताया गया है अक्षय नवमी को इसके नीचे पूजा और भोजन कर के दान का विशेष फल मिलता है। यह स्वास्थ्य के लिए भी बहुत गुणकारी है।

हर्र, बहेड़ा, आंवला, चौथी चीज गिलोय!
इनका सेवन जो करे, व्याधि कहाँ से होय।

पीपल का वृक्ष जिसे सभी वृक्षों में उच्च स्थान प्राप्त है। गीता में भगवान कृष्ण ने स्वयं को वृक्षों में अश्वत्थ अर्थात पीपल कहा है। इसके पत्ते- पत्ते पर देवताओं का वास माना जाता है। जिसके पूजन और जल अर्पण करने से कोटिशः पुण्य का फल मिलता है। सोमवती अमावस्या को इसके चारों ओर फेरी दी जाती हैस इसे काटना या तोड़ना शास्त्रों में वर्जित माना गया है। भगवान बुद्ध ने भी पीपल के पेड़ के नीचे ही बैठकर तपस्या की थी और ज्ञान प्राप्त किया गया था। पीपल के लिए कहा जाता है।

मूलतो ब्रह्मः रूपाय, मध्यतो विष्णु रूपिणेः
अग्रतः शिव रूपाय, अश्वत्थाय नमो नमः

एक लोकगीत में कहा गया है कि..... गऊंवा पिछूवरवा एक पीपर पेड़वा/ मोतियन झालर/ तेहि तरे उतरे नरायन/ त बलका डरे हैं।

बरगद को वह वृक्ष या बड़ भी कहते हैं। इसे हमारे शास्त्रों में पाँच पवित्र वृक्षों में गिना जाता हैस यह आयु, सघनता और विशालता में सबसे सक्षम होता है। इस पर ब्रह्मा जी का निवास भी माना जाता है। इसकी बड़ी-बड़ी जटाओं के कारण इसे मुनियों-महात्माओं को उपमा भी दी जाती हैस ऐसी मान्यता है कि वट वृक्ष को ही पूजा करके सावित्री ने अपने पति को पुनजीवित कराया था और यम देवता को जीत लिया था।

लोकगीतों में प्रकृति चित्रण रू इन विधाओं में न केवल जीवन के विविध पक्षों का चित्रण होता है, बल्कि प्रकृति के प्रति आस्था, श्रद्धा, और सह-अस्तित्व की भावना भी रेखांकित होती है। यह साहित्य पर्यावरणीय सिद्धांतों को आत्मसात करता है, चाहे वह जल संरक्षण हो, वन-संरक्षण या जैव विविधता। आम के वृक्ष की महत्ता बताता हुआ एक लोकगीत, जिसमें कहा गया है, कि स्वप्न में आम का दिखना शुभ होता है।

सासू अंगना मा देखबौ रे कलसवा, तब अमवा घवद फरे हो...!
हाय रे बहुरिया, कलसवा तोर अहिवात! अमवा संतति होय हो...!
विवाह गीत में भी आम का उल्लेख इस प्रकार किया गया है।
अमवा के पिढ़िया पर हरदी चढ़वली, पियर कपड़ा बिछाय...!

केले का वृक्ष भी अत्यंत शुभ माना जाता है, जिसमें भगवान विष्णु का निवास माना जाता है। किसी भी यज्ञोपवीत, विवाह, कथा, पूजा बिना केले के पत्ते के पूर्ण नहीं होती है।

कपारहि (केला) काटी-कूटी खम्भवा गड़घवल! ओकरा में धरबइ पलबिया (पल्लव)... ओकरा में धरबइ बनफुलवा हो रामा! गोबरा से लीपी अनरुखये अंगनवा...! केरवा के पतवा विछाय हो रामा!

हल्दी और दूब मांगलिकता और जीवंतता के प्रतीक माने जाते हैं। प्रभु श्रीराम के विवाह से सम्बन्धित एक लोकगीत जिसमें कहा गया है... हरदी चढ़ेला रघुनाथ कुंवर के!! शोभा बरनी न जाए ऐ माई! वेद ही मंतर से हरदी बुआई, कुलदेवता पर चढ़ाई रे माई इस तरह दूब स्त्री की जीवटता कर प्रतीक है, जो प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्नचित्त और संतुष्ट रहती है।

लोकोक्तियों और कहावतों में प्रकृति : लोक भाषाओं में रची गई कहावतें और लोकोक्तियाँ मानव और प्रकृति के संबंधों को संक्षिप्त लेकिन सशक्त रूप में प्रस्तुत करती हैं।

"वन बचे तो मन बचे।"

"जल ही जीवन है।"

"पेड़ लगाओ, जीवन बचाओ।"

"नदी हमारी जीवन रेखा।"

"वृक्ष धरा का भूषण है, करता दूर प्रदूषण है।"

"जल है तो कल है।"

ये कथन न केवल चेतावनी देते हैं, बल्कि व्यवहारिक मार्गदर्शन भी प्रदान करते हैं। उपरोक्त उक्तियां न केवल प्रकृति के प्रति लगाव और उनकी उपयोगिता के सन्दर्भ में कही गयी हैं बल्कि उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली जीवनदायिनी शक्तियों की महत्ता भी दर्शाती है।

लोक साहित्य में प्रकृति की उपस्थिति : भारतीय लोककथाओं में प्रकृति को जीवंत पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पेड़-पौधों, नदियों, पर्वतों और पशु-पक्षियों को केवल सजावटी पृष्ठभूमि की तरह नहीं, बल्कि नैतिक शिक्षाओं के वाहक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। हरियाणा और राजस्थान के 'बिश्नोई' समाज की परंपरा में एक प्रमुख लोकगाथा है। अमृतादेवी की, जिन्होंने खेजड़ी के पेड़ों को बचाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी। यह कथा न केवल वृक्षों की रक्षा की प्रेरणा देती है, बल्कि यह सिद्ध करती है कि लोक समाज ने पर्यावरण के लिए सर्वोच्च बलिदान भी दिए हैं।

बुंदेलखंड की कथाएँ जल संकट की कहानियों को लेकर आती हैं, जहाँ जल का अपव्यय या प्रदूषण करने वालों को दंड मिलता है। इससे जल की पवित्रता और संरक्षण की भावना जागृत होती है। लोकगीतों में पर्यावरणीय चेतना विभिन्न संदर्भों के अन्तर्गत देखी जा सकती है। भारतीय लोकगीतों में ऋतुओं का वर्णन, खेती-बाड़ी, वृक्ष, पशु-पक्षी और जल स्रोतों के प्रति आस्था स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। उत्तर प्रदेश और बिहार के सोहर और कजरी गीतों में सावन की हरियाली, पेड़-पौधों की शोभा, वर्षा के जल का महत्व और जल से जुड़ी पवित्रता की छवि प्रस्तुत की जाती है। मध्य भारत के 'पारधी' जनजातीय गीतों में शिकार के नियमों का उल्लंघन वर्जित बताया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने के लिए शिकार की एक मर्यादित व्यवस्था थी।

लोक परंपराओं में पर्यावरण संरक्षण : वृक्ष पूजन और संरक्षण हमारी संस्कृति के मूल में है। भारतीय लोक परंपराओं में पीपल, बरगद, तुलसी, बेल, आम, नीम जैसे वृक्षों की पूजा की जाती है। इन वृक्षों का न केवल धार्मिक महत्व है, बल्कि इनके औषधीय, पारिस्थितिक और सामाजिक लाभ भी हैं। लोक साहित्य में लोकगीतों के माध्यम से वृक्षों का उल्लेख को मिलता

है। जैसे—चल रोपे बरगद, आम, नीम, तुलसी⁄ मुरझल मन हरियाव हो रामा⁄... बिरवा लगा के। तरह- तरह के वृक्ष लगाने से मुरझाया मन भी हरा हो जाता है। वृक्षों में आम, उसके पत्ते, फल, फूल (मंजरी) सूखी लकड़ी सभी का अत्यंत महत्त्व है। आम की मंजरी को कामदेव के प्रतीक के रूप में माना जाता है। प्रत्येक मांगलिक कार्य में आम के पत्ते कलश के ऊपर रखे जाते है उससे वंदनवार बनाये जाते हैं। आम की लकड़ी के पीढ़े पर बैठकर विवाह विधि सम्पन्न होती है। हवन करने के लिए समिधा के रूप में आम की ही लकड़ी प्रयोग में लाई जाती है। इस तरह आम के बिना कोई भी शुभ कार्य सम्पूर्ण नहीं होता।

वृक्ष विवाह, तुलसी विवाह, पीपल पूजन जैसे अनुष्ठान समाज में वृक्षों के प्रति सम्मान और संरक्षण की भावना विकसित करते हैं। पर्व-त्योहार और प्रकृति का एक दूसरे के प्रति परस्पर संबंध है। कई लोक पर्व सीधे पर्यावरण से जुड़े होते हैं। जैसे वट सावित्री व्रत में वट (बरगद) वृक्ष की पूजा की जाती है। हरियाली तीज और सावन महोत्सव वर्षा ऋतु में हरियाली और नए पौधों के स्वागत के रूप में मनाए जाते हैं। छठ पूजा जल स्रोतों की शुद्धता और सूर्य की पूजा से जुड़ी होती है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन है कि 'लोक' हमारे जीवन का महासमुद्र है, जिसमें भूत, वर्तमान और भविष्य सिंचित रहते है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है। वह अर्वाचीन मानव के लिए सर्वोच्च प्रजापति है।

हमारी संस्कृति संस्कारों और परम्पराओं की संस्कृति है। उत्सवों की धरा है। जहाँ मनुष्य अपने संस्कारों को भी उत्सवों की तरह पूजते है। जो प्रकृति और लोकगीत दोनों को सादर समाहित करते हैं। बिना दोनों की उपस्थिति के मानव जीवन में कोई संस्कार पूर्ण नहीं माना जाता है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में सोलह संस्कारों का उल्लेख है जिस में लोकगीतों का प्रचलन है और साथ ही प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं का भी। पुत्रजन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, दिरांगमन जैसे सभी संस्कारों में लोकगीत के माध्यम से प्रकृति चेतना का स्वर सुनाई पडता रहा है। पंचतत्वों में प्रधान पृथ्वी को माता कहा गया है। **पृथ्वी मात्रा पुत्रोऽहं पृथिव्याः** ..... (अथर्ववेद 12-1-12) वृक्षों को पुत्रों की संज्ञा दी जाती है जिसके सन्दर्भ में मत्स्य पुराण का यह श्लोक उल्लेखनीय है। **दशकूपसमो वापी दशवापीसमो ह्रदः। दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रस्मो द्रुमः॥** दस कुँए के बराबर होती है एक बावड़ी और दस बावड़ी के बराबर एक सरोवर। दस सरोवर के समान एक पुत्र और दस पुत्रों के समान एक वृक्ष का महत्त्व होता है।

लोक देवता और पर्यावरण

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में वन देवी, जल देवता, धरती माता, नाग देवता जैसे अनेक लोक देवता पूजे जाते हैं। इनकी पूजा के साथ ही प्रकृति की रक्षा की भावना जुड़ी होती है। लोक नाट्य और पर्यावरण का प्राचीन स्वरूप हमें विभिन्न लोकनाट्य (जैसे नौटंकी, झूमर, तमाशा, जादू-जागर आदि) में भी पर्यावरणीय विषयों को प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी समुदायों में नाटकों के माध्यम से बच्चों और युवाओं को यह सिखाया जाता रहा है कि किस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों का सम्मान किया जाए। उदाहरण के रूप में गोंड आदिवासियों का 'गोंडी पंथ' जीवों और पेड़ों को आत्मीय भाव से देखने की परंपरा को दर्शाता है। विभिन्न प्रकार के पुष्प-पत्र और वनस्पतियां देवी देवताओं कर पूजा सामाग्री में प्रयुक्त होती हैं। भगवान भोलेनाथ को तो भांग, धतूरा, बेलपत्र अत्यधिक प्रिय है। जीवनदायिनी गंगा और ज्ञान और शीतलता के प्रतिबिम्ब चन्द्रमा को वे शीश पर धारण करते हैं। आदि ब्रह्मा और देवी लक्ष्मी कमल पर विराजमान हैं। सभी देवी और देवता किसी न किसी जीव को अपने वाहन रूप में स्वीकार कर प्राणिमात्र के साथ अपने सम्बन्ध को मान्यता प्रदान की है। गाँव के बाहर ग्रामदेवता का स्वरूप हो या नीम तुलसी के साथ नदी तालाब और पर्वत को पूजने की प्रथा, यह सब लोकजीवन से जुड़ाव और पर्यावरण के प्रति आदर के प्रतीक हैं।

पर्यावरणीय शिक्षा में लोक साहित्य की भूमिका : आज जब औपचारिक शिक्षा पद्धति पर्यावरणीय चेतना को संप्रेषित करने में सीमित साबित हो रही है, लोक साहित्य एक सशक्त माध्यम के रूप में सामने आता है। इसके उपयोग से बालकों में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता पैदा की जा सकती है। विद्यालयों में लोकगीतों, कहानियों और कहावतों के माध्यम

से पाठ्य सामग्री को रोचक और प्रभावशाली बनाया जा सकता है। वृक्षारोपण, जल संरक्षण और जैव विविधता के महत्व को व्यवहारिक रूप में समझाया जा सकता है। प्राचीनकाल से ही विभिन्न वनस्पतियों और वन्य संपदाओं का औषधीय उपयोग और उनकी महत्ता की शिक्षा ऋषि मुनि जनों द्वारा प्रदान की जाती रही है। जिनका आयुर्वेद समेत अनेक शास्त्रों और जनश्रुतियों में उल्लेख मिलता है। जो हमें प्रकृति संरक्षण और उनकी उपयोगिता की शिक्षा देते हैं।

समकालीन संदर्भ में लोक साहित्य की प्रासंगिकता : लोक साहित्य की प्रासंगिकता आज के समय में भी बहुत अधिक है क्योंकि यह हमें अपनी जड़ों से जोड़ता है और हमारी संस्कृति को समझने में मदद करता है। लोक साहित्य में निहित कहानियां, गीत, और अन्य मौखिक परंपराएं हमें हमारे पूर्वजों के जीवन, उनकी मान्यताओं, और उनकी संस्कृति के बारे में बताती हैं। आज की वैश्विक परिस्थितियों में, जब जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, वायु प्रदूषण, जैव विविधता का विनाश जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं, तब लोक साहित्य की चेतावनी और प्रकृति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक हो जाते हैं। लोक साहित्य न केवल चेताता है, बल्कि आचार-व्यवहार में बदलाव लाने की प्रेरणा देता है। यह 'सतत विकास' (Sustainable Development) की नींव में जन संस्कृति का योगदान जोड़ता है। लोक साहित्य में जो 'आत्मिक संबंध' प्रकृति से है, वह आज की विज्ञान-प्रधान शिक्षा में प्रायः अनुपस्थित है। अतः इसका पुनर्पाठ आवश्यक है।

निष्कर्ष : लोक साहित्य में निहित पर्यावरणीय दर्शन भारतीय समाज की गहरी जड़ों से जुड़ा हुआ है। यह दर्शन न केवल संरक्षण की बात करता है, बल्कि सह-अस्तित्व और संतुलन की ओर भी संकेत करता है। भारतीय जनमानस ने जब प्रकृति को 'माता' माना, तो उसे केवल संसाधन नहीं, बल्कि आराधना का विषय बनाया। आज जबकि हम औद्योगिक विकास की अंधी दौड़ में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रहे हैं, लोक साहित्य हमें रोकता है, चेताता है और वापस प्रकृति की ओर लौटने का मार्ग दिखाता है। यदि हम वास्तव में पर्यावरण संकट से निपटना चाहते हैं, तो हमें आधुनिक विज्ञान के साथ-साथ लोक परंपराओं और लोक साहित्य में निहित पर्यावरणीय मूल्य प्रणाली को भी समझना और अपनाना होगा। इस तरह हम समझ सकते हैं, कि लोकगीत केवल मनोरंजक ही नहीं अपितु हमारी समृद्ध संस्कृति के संवाहक हैं। जो हमें संदेश देते हैं कि पर्यावरण संरक्षण हेतु आज विश्व पटल पर जो चिंता प्रकट की जा रही है। बड़े-बड़े सम्मेलन और बैठक करके जिस प्रकृति की संरक्षा एवं सुरक्षा के प्रति जागरूकता की आवश्यकता महसूस की जा रही है। वही शिक्षा सदियों से भारतीय संस्कृति में लोक पर्वों, लोकगीतों, रीति-रिवाजों और परंपरा द्वारा कही जा रही है। आम जनमानस के भावनात्मक जुड़ाव द्वारा प्रकृति और पर्यावरण के प्रति पीढी दर पीढी उसका संवर्धन करे और उसे नुकसान पहुंचाने से दूर रहे। इस तरह हम देख पाते है कि लोकगीत हमारे पर्यावरण संरक्षण में किस तरह योगदान देते हैं।

व्यापक संदर्भ पुस्तकें

1. भारतीय लोक साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन : रामचन्द्र शुक्ल (2008). दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
2. लोक परंपरा और पर्यावरण चेतना विद्याधर शर्मा (2010) हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
3. Ecology and Equity: The Use and Abuse of Nature in Contemporary India- माधव गाडगिल एवं रामचन्द्र गुहा (1995) नई दिल्ली : Oxford University Press-
4. भारतीय संस्कृति और पर्यावरण का संरक्षण- डॉ. किशोरीलाल व्यास 'नीलकंठ'
5. लोक संस्कृति की रूपरेखा : कृष्णदेव उपाध्याय
6. लोक साहित्य : विविध प्रसंग - डॉ. श्याम सुन्दर घोष
7. पूर्वांचल के लोकगीत : बी० एल० द्विवेदी
8. लोक गीतों में प्रकृति : डॉ. शांति जैन
9. विभिन्न राज्यों के लोकगीत संग्रह और आदिवासी साहित्य से प्राप्त कथाएँ।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

एस आर हरनोट की कहानी जीनकाठी में, 'दलित जीवन एवम हिमाचली संस्कृति'

सीमा देवी
शोधार्थी
देशभगत विश्वविद्यालय मंडी गोबिंदगढ़, पंजाब
दूरभाष क्रमांक : 9418843474
ईमेल : gautamseema1003@gmail.com

डॉ. अरविंदर कौर चुम्बर
शोध निर्देशिका
देशभगत विश्वविद्यालय मंडी गोबिंदगढ़, पंजाब

प्रस्तावना

वरिष्ठ लेखक एस आर हरनोट ने जहाँ विभिन्न पक्षों को नजर में रखते हुए कार्य किया है वहीं हिमाचली संस्कृति एवं पहाड़ी जीवन के संघर्ष को भी दर्शाया है। हिमाचल प्रदेश अपने आप में जितनी सुंदरता लिए हुए है इसका इतिहास उतना ही पुरातन एवं गहन विचार वाला है। हिमाचल प्रदेश को देवभूमि कहा जाता है, यह स्वयं में बहुत सी परंपराएं संजोए हुए हैं। पहाड़ी जीवन शैली अत्यंत कठिन है। इसका वर्णन हरनोट जी के द्वारा अपने साहित्य में किया गया है। प्राचीन समय से ही हम दलित शब्द सुनते आ रहे हैं। आखिर दलित है क्या? कौन है? यदि कोई समुदाय है तो इन्हें दलित क्यों कहा जाता है? आम शब्दों में हम पिछड़े वर्ग अथवा समुदाय को दलित कहते हैं। सामाजिक तौर पर यदि हम देखें तो निम्न जाति के नाम से जिसे जाना जाता है उसे ही दलित कहा जाता है। दलित वह है जो अपने अधिकारों से काफी समय से वंचित रहते आ रहे हैं। समाज ने इस समुदाय का बहुत शोषण किया है। इन्हें निम्न जाति से संबोधित किया है। वरिष्ठ लेखक हरनोट जी स्वयं हिमाचल के हैं उन्होंने यहां अर्थात हिमाचल में जो त्रुटियां हैं उन्हें बहुत नजदीक से देखा है परखा है और अपने साहित्य में उतारा भी है। जो हिमाचल या हिमाचली साहित्य पर शोध कर रहे हैं वे इसका उत्तर ज्यादा अच्छा दे सकते हैं। जीनकाठी कहानी संग्रह की चर्चा बिना दलित विमर्श के हो ही नहीं सकती।

भुन्डा

पहाड़ी समाज का एक विचित्र अद्भुत और रोमांचक उत्सव। पुराने समय में इसे हर 12 वर्ष के बाद मनाए जाने की परंपरा प्रचलित थी। लेकिन पहाड़ों में आज इसके आयोजन का कई कारणों से कोई निश्चित समय नहीं रहा है। इसमें बेड़ा नामक एक पर्वतीय दलित जाति की विशेष सहभागिता और महत्व होता है। इस परिवार से एक व्यक्ति का चुनाव करके उसे यज्ञ पवित्र धारण करवा कर उसे अस्थाई रूप से ब्राह्मण बना दिया जाता है।। उत्सव के दिन देवता और ईश्वर की तरह उसकी पूजा होती है। इस धर्माचार के तहत ऊंची पहाड़ी से नीचे की ओर एक लंबा रास्ता बांध दिया जाता है। बेड़ा अपनी जान की बाजी लगाता हुआ जीनकाठी पर बैठकर इस रास्ते पर सकता हुआ नीचे आता है। भुन्डा मुख्य रूप से हिमाचल का प्रमुख त्यौहार है। या हिमाचल के कुछ स्थानों पर ही मनाया जाता है। यह त्यौहार गहन चिंतन का विषय बन गया है।

एक तरफ आस्था अपार है तो दूसरी ओर जातिगत विशेषता भी देखने को बहुत मिलती है। समाज की दोहरी मानसिकता का व्याख्यान भी इसके तहत हमें देखने को मिलता है। 'जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ 'उनका नवीनतम संग्रह है जिनमें 2001 से 2007 के बीच की उनकी नौ कहानियाँ संकलित है। इनमें शीर्षक कहानी 'जीनकाठी 'एक लम्बी कहानी है, 28 पृष्ठों की हिमाचल प्रदेश में 'बेड़ा ' नाम की एक दलित जाती होती है, उससे जुड़ा एक त्योहार है जिसका नाम है भुन्डा।

बीज शब्द : भुन्डा, यज्ञोपवीत, त्योहार, बेड़ा, जीनकाठी, रस्सा अछूत, ब्राह्मण, धाम, पकवान, दलित, अछूत, अनुष्ठान।

कहानी में हम देखते हैं कि भुन्डा जैसे महा-उत्सव का आयोजन भगवान दत्त शर्मा के दिमाग की उपज थी। तहसीलदार के पद से शर्मा जी कुछ दिनों पूर्व ही सेवानिवृत हुए थे। कहानी में वास्तविक रूप से देखा जाए तो भगवान दत्त शर्मा की इस त्यौहार में आस्था उतनी अधिक नहीं थी जितना उन्होंने दिखावा करना चाहा। यह सारा प्रपंच उसने केवल अपनी धाक जमाने के लिए और राजनीतिक लाभ के लिए किया। यह त्यौहार इसके बारे में भगवान दत्त शर्मा ने करवाने के लिए सोचा था वह हिमाचल के कुछ इलाकों में मनाया जाता है। यह त्यौहार विशेष रूप से अपने देवता को प्रसन्न करने के लिए एवं उसे आशीर्वाद प्राप्त करके सुख समृद्धि प्राप्त करने हेतु किया जाता है। इस त्यौहार में सबसे पहले भगवान दत्त को एक बेड़ा परिवार की जरूरत है। तभी भगवान दत्त को याद आता है की कई वर्ष पहले एक बेड़ा परिवार होता था जिसे गांव से निकाल दिया गया था। उस बेड़ा परिवार का अपराध केवल इतना था कि भुन्डा उत्सव के दौरान उनके पूर्वज जो जीनकाठी के लिए बेड़ा बने थे रस्सी पर से गिर जाने की वजह से उसकी मौत हो जाती है। गांव वालों को लगता है कि बहुत बड़ा अपशगुन हो गया है। गांव पर कोई बहुत बड़ी मुसीबत आ जाएगी। इसका जिम्मेदार उसे बेड़ा को माना जाता है जो रस्सी पर से गिर कर मर गया। उसे बेड़ा के परिवार को बहुत अपमानित किया जाता है और गांव से बाहर निकाल दिया जाता है। वह बेड़ा परिवार अपना घर अपनी जमीन छोड़कर कहां गए किसी को कुछ पता नहीं।

भगवान दत्त शर्मा बड़ी मुश्किल से उस बेड़ा के परिवार को ढूंढ निकलता है। साहस जुटाकर वह उस बेड़ा के घर पहुंचता है और हिम्मत करके भुन्डा उत्सव की बात करता है। बेड़ा परिवार का एक बुजुर्ग आंगन में बैठा है जिसका नाम सहजराम है और जिसका उपनाम सहजू है। उत्सव की बात सुनके सहजू चुप हो जाता है और कुछ समय तक कुछ नहीं बोलता, क्योंकि उसे अपना अपमान अपने कुल के ऊपर लगे दाग अच्छी तरह याद है।

हरनोट जी के द्वारा कितने अच्छे ढंग से कहानी में इस बात को दर्शाया गया है के जाति कोई भी हो लेकिन अपना वर्चस्व सभी को प्रिय होता है।

भगवान दत्त शर्मा को अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए इससे बेहतर और कोई दूसरा विकल्प नजर नहीं आ रहा था। वे जानते थे कि उसे हादसे के बाद गांव में कभी भुन्डा उत्सव नहीं हो पाया था। हालांकि दूसरे गांव में कभी -कभार 20- 24 वर्षो के अंतराल से ही यह आयोजन होता ही रहा था। बड़ी हैरानी की बात है। जब दलित परिवार उस गांव से निकाले गए तो वे कई दिनों तक भूखे नंगे भटकते रहे। उन्होंने मांग मांग कर गुजारा किया था। कई सदस्य मर भी गए। बड़ी मशक्कत के बाद एक परिवार ने उनकी मदद की और उन्हें कुछ जमीन भी दे दी। मेहनत से उन्होंने अपना एक छोटा सा गांव बसा लिया। ध्यान देने योग्य यह बात है कि क्या केवल एक बेड़ा परिवार एक उत्सव के लिए ही पूजनीय होता है क्या उसके बाद वह पूजनीय नहीं होता, अगर नहीं होता तो वह क्यों नहीं होता? इन्हीं सवालों का अंतरद्वंद इस कहानी में हमें देखने को मिलता है। लेखक द्वारा अपनी रचनाओं में अक्सर इन्हीं मुद्दों को उठाते हुए देखा जा सकता है। यह कहानी केवल एक उत्सव पर आधारित नहीं, बल्कि इसमें पीछे छुपे जातिगत भेदभाव क्षीण मानसिकता और स्वार्थ को भी देखा जा सकता है।

कहानी में सहजू उर्फ सहजराम बेड़ा बनने के लिए तैयार हो जाता है वह भी बड़ी मशक्कत के बाद बहुत मिन्नतें करवाने के बाद। क्योंकि यहां सहजू को पुरखों के ऊपर लगे दाग को मिटाना था। अब सहजू दलित नहीं रह गया था। उसे ठंडे पानी से नहलाया गया। पूजा के उपरांत सारे संस्कार ब्राह्मणों की तरह करवाए गए, विधिवत तरीके से यज्ञोपवीत धारण करवाया गया। अब वह नीच जाति का न रहकर ब्राह्मणों की तरह पवित्र हो गया था। लोग उसे देवता स्वरूप मानने

लग गए थे। सहजू एकाएक अछूत से ब्राह्मण बन चुका था। अब उसे विशेष विधि विधान का पालन भी करना था। जिसमें एक समय खाना खाना, नख और केश न काटना तथा ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना इत्यादि शामिल था। अब मंदिर की तरफ से उसे भोजन और कपड़े मिलने आरंभ हो गए थे। यहां तक की उत्सव तक मंदिर कमेटी की तरफ से उसके पूरे परिवार का खर्चा भी उठा लिया गया। सहजू को अब ब्रह्म मुहूर्त में उठकर नहाना पड़ता था। पूजा पाठ के उपरांत वह मूंज के घास से रस्सा बनाने में जुट जाता। यह कार्य अत्यंत ही पवित्र माना जाता था। उसे समय कोई व्यक्ति न उसके सामने आता और न ही उससे बात करता। कोई भी उसे रस्से को छू तक नहीं सकता था। यदि कोई भूल से उसे रस्से को छू जाता तो उसे अपवित्र माना जाता। तत्काल उस पर भेड़ की बलि चढ़ाई जाती और नया रस्सा बनाना आरंभ करना पड़ता। रस्सा बनाते समय सहजू के मन में कई तरह के प्रश्न उठते मानो वह रस्सा नहीं अपनी मौत की सामग्री तैयार कर रहा हो। सहजू की पत्नी दूर बैठे सहजू को गौर से देखती रहती। वह सहजू के चेहरे पर आ जा रहे भावों को पढ़ने की कोशिश करती। कभी उसे वहां मौत की परछाई दिखाई देती तो कभी अपार संपन्नता और अपार मान सम्मान। कभी उसे अपना पति ढोंगी नजर आता जिसने ब्राह्मण का मुखौटा पहना हो।

जिस जाति को उच्च जाति के द्वारा अपने समान नहीं समझा जाता हो कैसे उसे स्वार्थ के चलते भगवान या देवता मान लिया जाता है। हरनोट जी के द्वारा इसी बात को स्पष्ट किया गया है।

भुन्डा उत्सव के दौरान अब सहजू कोई आम व्यक्ति नहीं है। पूरे गांव के लिए मंदिर कमेटी के लिए वह एक देवता है। अब यहां ध्यान देने योग्य यह बात है कि उच्च जाति का परिवार कोई भी हो सहजू के बेड़ा बनने पर वह सहजू के आगे हाथ जोड़कर खड़े हैं। भुन्डा उत्सव आ चुका है और सहजू बेड़ा बन चुका है। जीनकाठी के सहारे वह रस्से पर से पहाड़ी से नीचे की ओर जब आने लगता है तो थोड़ी ही दूर अपनी जीनकाठी को रोक लेता है। अब सब सहजू से आग्रह करते हैं के सहजू कृपया नीचे आ जाओ, तुम नीचे आओगे यह धार्मिक कार्यक्रम तभी सफल होगा। तुम्हारा नीचे आना अति आवश्यक है लेकिन वह ऊपर से ही एक शर्त रखता है कि वह तभी उतरेगा जब उसे गांव में जो उनकी जमीन थी, जिससे उन्हें बेदखल किया गया था, उसे वापिस किया जाए। भुन्डा के दौरान तो वह देवता और ब्राह्मण बना हुआ है। उनसे भी ऊपर का दर्ज उसे प्राप्त है, इसीलिए उसकी बात ठुकराई भी नहीं जा सकती। मजबूरन उसकी शर्त सभी को माननी पड़ती है और वह नीचे उतर आता है। बाद में उसे दलित सीट से राजनीति के लिए भी खड़ा करने की बात चलती है। यहां भगवान दत्त का सारा खेल धरा का धारा रह जाता है।

कहानी में बहुत सारे प्रश्न है जिनका उत्तर इस समाज के पास नहीं है। हरनोट जी के द्वारा इन्हीं सब सवालों को कहानी में दर्शाया गया है। कोई व्यक्ति किसी विशेष उत्सव के लिए ही नहीं बल्कि प्रत्येक समय समान है हरनोट जी के द्वारा कहानी में यही व्यक्त करने की कोशिश की गई है।

निष्कर्ष

जीनकाठी कहानी का यदि हम गहनता से अध्ययन करते हैं, तो पाते हैं कि यहां हरनोट जी के द्वारा समाज सुधार का कार्य किया गया है और समाज कि इस जातिवाद नामक बीमारी को हटाने का प्रयास किया गया है। कहानी में बहुत सारे ऐसे पहलू हैं जिममें हमें मानसिक दुर्बलता देखने को मिलती है। एक व्यक्ति जो आम इंसान है फिर वह किसी आम इंसान से अलग कैसे हो सकता है? यह बंधन जिसे हम जातिवाद के नाम से जानते हैं कहां से आया और किस तरह इसका इस्तेमाल करके एक समुदाय द्वारा दूसरे समुदाय का शोषण किया जाता है, कहानी के माध्यम से हरनोट जी ने जनसाधारण को बहुत बड़ा संदेश दिया है। भाषा शैली कि यदि हम बात करें तो वह कहानी के ऊपर और कहानी के पत्रों पर सटीक बैठती है। हिमाचली संस्कृति या हम पुरातन संस्कृति कहें तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं लेकिन संस्कृति समानता और आस्था तक रहे तो ही समाज के लिए अच्छा है। कोई भी त्यौहार या उत्सव मनाया जाए यह बहुत अच्छी बात है लेकिन यहां सबके लिए समान हो लेखक के द्वारा इसी बात की ओर इशारा किया गया है।

संदर्भ सूची

(1) लेखक एस आर हरनोट, कहानी- जीनकाठी, आधार प्रकाशन पंचकूला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ नं-9
(2) लेखक एस आर हरनोट, कहानी- जीनकाठी, आधार प्रकाशन पंचकूला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ नं-11
(3) लेखक एस आर हरनोट, कहानी- जीनकाठी, आधार प्रकाशन पंचकूला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ नं-13
(4) लेखक एस आर हरनोट, कहानी- जीनकाठी, आधार प्रकाशन पंचकूला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ नं-14
(5) लेखक एस आर हरनोट, कहानी- जीनकाठी, आधार प्रकाशन पंचकूला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ नं-17
(6) लेखक एस आर हरनोट, कहानी- जीनकाठी, आधार प्रकाशन पंचकूला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ नं-36

Political Economy of Contemporary Environmentalism: A Free Market Perspective

Dr. Deepak Indolia
Post Doctoral Fellow, ICSSR
Jawaharlal Nehru University
deepakindolia44@gmail.com

Abstract

Ecological concerns and crises have occupied significant space in the international political economy. The market has expressed a willingness to acknowledge the ecological problems and offered some solutions. This paper examines alternatives that are provided to address the environmental concerns through free market endeavours, such as rearticulating property rights, carbon credits and other market transactions. The paper will further evaluate the significance and efficacy of such policy prescriptions in the ecological context of the Global South.

Keywords: Environmental studies, International relations, International political economy, free market environmentalism, capitalism.

In the past few decades, the world has experienced a paradigm shift in the approach of the global political system. Ecological concerns and crises raised in different ideological premises have now become focal points of change in language, concerns, and negotiation worldwide (Foster 1999: 366-405). The world has experienced a drastic change in various disciplines regarding ecological concerns and environmental issues. The issue has received ample consideration in multiple disciplines. At the same time, different sectors and streams of academics achieved considerable success in accommodating the idea of raising ecological concerns and the challenges that led to the environmental crisis. These concerns are constantly raised by environmentalism in various forms at various levels. (ibid. 367)

One of those disciplines that achieved considerable amount of success was economics, which was able focus on the incorporation of "externalities" and making "environmental economics one of the fastest growing academic sub-discipline throughout the industrial world" (Jacobs 1994: 67). The theoretical foundations for the sub-discipline were drawn from A. C. Pigou's work Economics of Welfare (1920). Change is observed at the fundamental level of the perception of nature and its relationship with human beings. In classical economic terms, the whole world is viewed as independent of human beings (Foster 1999: 372). In this way, nature became a collection of objects that do not possess any life and are in the world for the sake of human use and their service. They perceive

human beings outside nature so that humans can control and modulate nature according to their needs. Human who are outside nature commodifies everything into raw material (O'Connor 1998: 317)

The basic premises of capitalism are drawn from the idea of modernity, which begins with the Enlightenment. Contemporary conceptualisation of nature as separate from human beings opens the opportunity to commodify land and other resources. Land has been owned and sold since prehistoric times, but this practice was limited to the local region. The emergence of science and technology provides ample space for the rapid commodification of land and resources, which are owned, sold, used and reused for surplus generation in the capitalist mode of production. Humans separated from nature can pose a greater threat to ecology. At the same time, humanity, which has no ownership of land, depends on its labour. So at the same time, commodification of humans takes place as they are also brought and sold in the labour market for their labour. (ibid. 483). This leads to the condition for the first contradiction of capitalism. The first contradiction of capitalism is overproduction. The urge for profit maximisation, further increase in search of new boundaries, expansion of market to new geographical locations, commodification, and production are the characteristics of the capitalist modes of production. The first contradiction of capital comes from the demand side of production. This eventually leads to overproduction, and the cause of overproduction is exchange-value (Marx, K., & F. Engels, 1978).

James O'Connor's argument that the second contradiction of capitalism is more important is based on the production conditions. Ecological degradation, the condition of labour in the working area, was associated with the condition of production. Contradictions raised from the condition of production are related to underproduction. Underproduction comes from the supply side of the output and is based on the use-value of the production. "The closer we get to use-value theoretically, the closer we get to real places and real, live people practically" (O'Connor 1998: 128). Capitalist mode of production usually externalises the cost of overproduction and accumulation. "There is no profit in maintenance of preservation, or actions taken and resources expended, to prevent bad things from happening that would otherwise occur. The profit is in expansion, accumulation, and marketing something old or new at lower costs" (ibid. 317).

Analysing both the contradictions, the primary contradiction of capital, overproduction and accumulation, leads to economic crisis and produces the labour movement, which is one of the derivatives of Marx's theory of class struggle. In contrast, the secondary contradiction brings about the ecological crisis. Such an ecological crisis can further lead to an environmental movement. So O'Connor brings the theory of red-green alliance to overcome the contradictions of capitalism. Global firms and platforms like the World Trade Organisation (WTO) were expected to work towards the conditions of labourers, workers' safety, and environmental protection. In realistic terms, these organisations are biased and favour privileged, powerful nations on ecological concerns. Recently, there has been a strong movement by the Greens (especially from the South), and various global platforms are used for such negotiations. This comes as a threat to the market, and later, the market utilises the same platforms, which leads to the emergence of free market environmentalism.

The International Political Economy of the Environment

Due to the recent strong movements by the Greens (majority in the South), there has been a concern

about environmental degradation and ecological awareness. This primarily comes as a threat to the privileged, powerful nations and market-dominated economies.

Concerns of the South.

The environmental concerns not only strengthen the argument of the Global South but also offer a strong case for economic restructuring. The Global South wanted some regulations that could bind the Global North. The Global North was made accountable for practices that led to environmental degradation. Both North and South acknowledged the ecological concerns, but there were differences between the two in their negotiating strategies. The North wanted to negotiate in the current international economic order. The South demands that negotiations be possible only if there is any restructuring in the global financial order (Kolk 1996: 36). Differential positions on negotiation erupted in conflict between North and South. South rejected the argument of the "spaceship Earth" metaphor used to explain that environmental threats are equal to humankind. They (the South) made it clear that international forums should recognise structural inequalities between North and South, and suggest how to deal with these issues before negotiating. South rejected the idea of fulfilling the basic needs in the name of poverty alleviation. They emphasised the reform and restructuring of the international monetary system, restrictions on activities of multinational corporations, and stabilising the commodity prices (UN 1974: 324-32)

"Engaging in more balanced negotiations between the North and the South could yield results that the developing countries have sought for some time. Global action on the environment cannot succeed without the full participation and collaboration of the South. Indeed, the United Nations Conference on Environment and Development(UNCED) is an international conference where the North is seeking environmental concessions from the South, and where the South can make such concessions in return for firm commitments by the North to restructure global economic relations" (South Centre 1991: 1-2).

South bargains in two-point strategic considerations, arguing to acquire a sufficient "Environmental Space" for the future. The current damage to ecology and environmental concerns is the outcome of the development path followed by the North. Second was concern for its "Resource Gap" (ibid. 4-7). After the environmental imperatives, the resource gap between the North and the South will likely expand. The North should take steps to offer fair commitment to fill such gap by the technological transfer, resources transfer, increase access to the market, reduction of debt burden and stabilisation in commodity prices in such a manner that it should not reflect the environmental cost of the South and multinational co-operations should work with regards to safety and environment (Ans Kolk 1996: 36-39).

Nevertheless, the environment became the subject of international controversies in the late 1980s and early 1990s. The World Commission for Environment and Development (WCED), also known as the Brundtland Commission, was set up to assess the needs of the South in the existing global order. This commission coined the concept of sustainable development and has gained significant consideration in the past two decades in the arena of environmental concerns and development practice. "Sustainable Development is development which meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their needs (WCED, 1988: 43). The concept of Sustainable Development became famous due to its large degree of vagueness. Sustainable

development has been a keyword in all areas, from project to policy and research to implementation. It emerged as a metafix for everything, attracting everybody from top bureaucrats to local farmers, multinational corporations, and activists fighting for equity. Due to the vagueness in its basic conceptualisation, it offers discourses and debates that cannot address the key contradictions of the contemporary development pattern.

Emergence of free market Environmentalism

Inconsistencies in the Brundtland Commission and vagueness in the conceptualisation of sustainable development left much room for its differential interpretation. This allowed the North to utilise this confusion in the international political and economic system around Sustainable Development.

BCSD published a book, "Changing Course", which includes some case studies of various companies. It stressed the importance of international free trade and minimum government regulation; however, it suggested that the government should have some regulation, but it should not create an environment which hampers free trade (Schmidheiny 1992: 73). It made some suggestions, such as that industries should take care of the concerns of the environmental crisis with a "clean and equitable" approach. Governments should make some structural adjustments for an "attractive investment climate", macroeconomic stability, open and free markets, with clear property rights and political stability to meet the requirements of sustainable development.

Free Market Environmentalism and Its Critical Analysis

Free Market Environmentalism (FME) emerged with specific arguments that the market can care for environmental concerns and guide the government to change its policy towards fair practices. Markets with an approach of "clean and equitable" practices, extensive property rights, and a search for innovations for better practices can solve the ecological crisis problem (Anderson and D.Leal 1991:3-15).

Arguments of FME regarding the private property rights were that if property rights are not enforced or defined, it will lead to certain ambiguities like valuation of cost association with the externalities of production, the tragedy of the commons and failure to recognise cost benefits of environmental amenities.

The Tragedy of the Commons

Garrett Hardin, in 1968, coined the term "The tragedy of the commons" he argued why an individual would tend to protect or be concerned with the idea of preservation of the resources they commonly use (Hardin 1968). FME termed that a crisis; if property laws are not associated with individuals, there would always be some free riders to enjoy the resources, which may cause restraints to others. Lack of individual property rights will create a lack of motivation for individuals to use and preserve the use-value of the produce. This problem can be solved by further extension of property rights and market transactions (Anderson and D.Leal 1991: 121).

These arguments can be critiqued from their base itself. There is no invisible hand operating to ensure that environmentally sound practices are ensured with the existence of property rights. In capitalist production, property is not used for personal consumption but capital investment. Capital invested in one area can shift its avenues with greater ease than ever before. Capital accumulated in one area did not force capitalists to reinvest in the same area. His likelihood of investing in the

exact location or shifting the investment to any other area depends on the rate of return he fetches from the region (Smith 1995: 131-132).

Emphasis on consumption is one of the fundamental characteristics of capitalist society. A free market with expensive property rights may intensify production, while knowing it may not be environmentally sound practice, with a shorter vision and ruling out the long-term perspective, it may only be concerned with immediate returns. There may be chances that it may shift its avenue elsewhere as long as attractive investment opportunities are available. So, the argument that extensive property rights may guarantee environmentally sound practices and avoid further degradation of the ecology does not hold ground. Contradiction does not end here; the market at the level of conceptualisation itself ignores the fact that a large section of the population does not have any property. It depends on the property that belongs to the commons. It is impossible to give extensive property rights to significant natural resources available to the commons. So, FME by Extensive property rights further marginalised the people from their basic needs (ibid. 126).

Evaluation of Environmental Externalities

Negative externalities caused during production, such as pollution, have never been a part of the exchange value of the product. So FME suggests that firms and industries should internalise such costs in the prices of their commodities. Fair competition among the firms will lead to lower such costs. It recognises the flaws in previous practices in which social costs were not considered (Anderson and D.Leal 1991: 139). So, the extension of property rights and the enforcement of liabilities are the ways FME suggests to internalise the cost of negative externalities that cause the environmental crisis. It is like something where polluters have to internalise their costs, and it also has a room where polluters can be sued for their malpractices.

These arguments made by FME seem to show a lot of commitment and acknowledgement of the ecological crisis. Still, they were not able to pitch to overcome fundamental contradictions. The first barrier in this process is the valuation of the negative externalities causing environmental damage. It is a complicated task to evaluate any ecological damage or degradation caused to the environment in monetary terms, or how to assess the aesthetic cost of a landscape, mountain range or a lake, which the market mode of production has damaged. So, the formulation of any legally binding law will not be able to calculate the damage, which has a very subjective meaning. In such cases, FME is still not able to address the secondary contradiction of capital, which is related to the condition of production (O'Connor 1998: 317). Various examples in the world show the gap between policies and practices. Damage caused to the families in the Bhopal gas tragedy is not limited to one generation; similarly, damage caused by nuclear radiation from the nuclear waste is not limited to one generation. FME does not offer any legally binding mechanism to evaluate such damage and take liability for three to four generations.

The fundamental flaw I feel in the arguments made by the proponents of FME is that everybody is equal before the law. A corporation with an army of lawyers can never be equal to an employee, whose health has been compromised due to dangerous working conditions or a farmer whose soil is contaminated by the pollution caused by the corporation. I feel that such extreme property rights and legal bindings for liabilities will open space for lobbying the market with government officials and create a nexus between bureaucrats and capitalists. This transfers the power and overpowers the judicial apparatus for every solution (Smith 1995:134).

Tradeoffs of costs and benefits of providing Environmental Amenities.

Proponents of FME argue that the market, on one hand, takes care of the negative externalities, and at the same time, the market should have the right to charge costs for the environmental amenities. They further propose that such practices will lead to a change in technology, which should be more environmentally friendly, and subjective values in society. This is more of an extension of property rights and market transactions (Anderson and D.Leal 1991: 22-23, 63-65).

Such arguments try to weaken the state's responsibility and allow market appropriation in the market transactions of environmental policies. No economic benefit is given by granting our fundamental rights like the right to speech, the right to choose religion, or to be treated equally. Similarly, the right to live in a liveable environment is also a fundamental right which demolishes the basic conceptualisation of FME (Smith 1995:134).

If we look at the global scenario, the market has never invested in any technology with no commercial use or any research that does not have a direct commercial application. Even taking the case of federal universities, research funding is around 63% and only 6%funding comes from the market. All crucial technologies we see around are the outcome of public funding in the form of subsidies. So, the asking for cost for environmental amenities does not hold ground at the level of conceptualisation on FME (Shonfield 1981: 52)

Conclusion:

FME seems to offer a solution to the problem raised by ecological degradation without trying to overcome the contradictions of capitalism. FME operates in the Neoliberal framework, which provides no solution for private consumption, a basic tenet of capitalism. Technological advancement supports consumerist culture. Extensive property rights legitimise control over natural resources; at the same time, they offer extensive mobility.

Capitalism, at a very conceptual level, views nature as an object. The objectification of nature and its products draws human beings away from nature. With a Marxist ecological view of economic-environment analysis, society and nature cannot be viewed as two independent bodies. Both are to be viewed as co-evolutionary; change in one leads to dynamic change in the other. A change in human relations occurred with nature based on its productive relationships. As per the Marxist analysis, the ecological crisis is also a crisis of society, which is created by the specific structure of society and reproduced by contemporary societies. The sociological approach could be extended into the ecological realm. Ecological analysis with sociological insight shows the capability of dealing with the modern environmental crisis.

References:

Anderson,Terry, and D.Leal(1991): *Free Market Environmentalism*. (Boulder: West view Press)

BCSD (1995): "Overwhelming Support for Merger". *Tomorrow,* V (1) (special BCSD section).

Foster, John Bellamy (1997): "The Crisis of the Earth." *Organisation and Environment* 10 (3): 278-95.

Hardin,Garrett(1968): "The Tragedy of the Commons", *Science.* Decenumber.

Jacobs, Michael (1994). "The Limits to Neoclassicism", *Social Theory and the Environment,* Michael Redclift

and Ted Benton(eds). (New York: Routledge) 67-91.
Kolk, Ans (1996): *Forest in International Environmental Politics: International Organisations, NGOs and the Brazilian Amazon. (*Netherlands: International Books).
Marx, Karl, and Friedrich Engels. (1848): *The Communist Manifesto* (New York: Monthly Review).
Marx, Karl and Friedrich Engels (1978): "Manifesto of the communist party", R. C. Tucker (Ed.), *The Marx-Engels reader,* (New York: W. W. Norton).
O'Connor, James. 1998. *Natural Causes*. (New York: Guilford).
Pigou, A. C. (1920): *The Economics* of *Welfare,* (London: Macmillan).
Schmidheiny, S (with the Business Council for Sustainable development) (1992): *Changing Course. A Global Business Perspective on Development and the Environment*. (Cambridge and London: MIT Press)
Shonfield, A. (1981): "Innovation: Does Government Have a Role?", Industrial Policy and Innovation, (ed) G. Carter. (London: Heinemann).
Smith, Tony (1995): "The Case Against Free Market Environmentalism", *Journal of Agricultural and Environmental Ethics*, 8(2):126-144.
South Centre (1991): *Environment and Development. Towards a Common Strategy for the South in the UNCED Negotiations and Beyond*. (Geneva)
UN (1974): *Yearbook of UN*. (New York)
WCED (1988): *Our Common Future*. (Oxford: Oxford University Press)

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

डॉ. रीटा शर्मा
प्राचार्य, श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर
शिक्षा महाविद्यालय, जामडोली, जयपुर

सुरभि श्रीवास्तवा
शोधार्थी
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

क्या बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति में अंतर पाया जाता है? और पायी जाने वाली अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर प्रभाव पड़ता है? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का 'सर्वेक्षण विधि' की सहायता से अध्ययन किया गया। प्रदत्त प्राप्ति के लिए डॉ. जी.पी. शैरी एवं डॉ. आर.वी. वर्मा द्वारा निर्मित ''व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली'' एवं सरकार एन.दास द्वारा निर्मित 'इंटरनेट एण्ड सोशल नेटवर्किंग साइट्स ऐटिट्यूड स्केल'' का प्रयोग किया गया। प्रदत्त विश्लेषण के क्रम में टी-टेस्ट एवं सहसम्बन्ध का परिकलन किया गया। निष्कर्ष में पाया गया कि बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति में अंतर पाया जाता है तथा बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति एवं उनके मूल्यों में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है।

शब्द कुंजी- बी.एड., बी.टेक., अभिवृत्ति, इंटरनेट, सोशल नेटवर्किंग साइट्स, मूल्य।

सम्प्रत्यात्मक पृष्ठभूमि- वर्तमान युग प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान का युग है। जिस प्रकार दुनिया में प्रौद्योगिकी का विकास सम्पूर्ण मानव जाति के लिए वरदान सिद्ध हुआ है उसी प्रकार शिक्षा में प्रौद्योगिकी का विकास युवा वर्ग व विद्यार्थी वर्ग के लिए किसी वरदान से कम नहीं है। वर्तमान समय में युवा वर्ग ऑनलाइन संचार संसाधनों का प्रयोग बड़े पैमाने पर कर रहा है। युवा वर्ग इंटरनेट और सोशल नेटवर्किंग साइट्स से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। अब चाहे उसके शैक्षिक कार्यों की पूर्ति हो या सामाजिक सम्पर्क बनाना हो, वो पूरी तरह से इन दोनों साधनों पर निर्भर है। अपने शैक्षिक कार्यों के लिए इंटरनेट का प्रयोग करते हुए वो इन पर उपलब्ध अन्य विषय सामग्रियों के सम्पर्क में भी आता है। नकारात्मक विषय सामग्री युवाओं का ध्यान आकर्षित करती है। युवाओं द्वारा इन विषय सामग्री में संलग्न होना उनेक मूल्यों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार की विषय सामग्री उपलब्ध है। यह युवा वर्ग पर निर्भर करता है कि वे किस प्रकार की विषय सामग्री का उपभोग कर रहा है। इंटरनेट ज्ञान का भंडार है इस भंडार का उपयोग करके युवा अपने शैक्षिक मूल्यों को दृढ़ कर सकता है। गूगल की सहायता से आज का

विद्यार्थी दुनिया भर की सूचनाओं को प्राप्त कर सकता है। प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिए इंटरनेट एक वरदान है। ऑनलाइन टीचिंग लर्निंग ने आज समय और स्थान की समस्या को सुलझा दिया है।

हमारे देश की जनसंख्या का लगभग 65% युवा वर्ग है। इंटरनेट व सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से युवा वर्ग एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। इन संसाधनों ने आज सामाजिक संपर्कों को एक अलग ही दिशा और रूप दिया है, फेसबुक, ट्विटर जैसे सोशल नेटवर्किंग मीडिया प्लेटफॉर्म के माध्यम से युवा वर्ग स्वस्थ सामाजिक संबंधों का निर्माण करने में सक्षम हो सका है व समाज में अपने विशिष्ट पहचान बनाने हेतु एक बेहतरीन मंच प्राप्त कर पाया है, वर्तमान समय में अपने विचारों और भावनाओं को साझा करने का एक सशक्त माध्यम बन गया है।

इंटरनेट व सोशल नेटवर्किंग साइट्स का एक नकारात्मक पहलू भी है जो युवा वर्ग को प्रभावित करता है। सोशल साइट्स पर अधिकतर युवा अपना समय स्टेटस अपडेट करने में और मित्रों के साथ चैटिंग करने में व्यतीत करता है जो उसे शिक्षण कार्यों एवं रचनात्मकता से दूर करती है। इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने युवा वर्ग को वास्तविक जीवन को भुलाकर आभासी जीवन जीने के लिए मजबूर कर दिया है। युवा वर्ग की संपूर्ण जीवन शैली प्रभावित होती हुई दिखती है। यह जीवन शैली विलासिता से परिपूर्ण है और उन्हें नैतिकता से दूर ले जा रही है। आज देश के सामने सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न है कि युवा वर्ग व विद्यार्थी वर्ग इसका सदुपयोग कैसे करें? यदि युवा वर्ग चाहे तो इंटरनेट व सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से स्वयं में मानवीय मूल्यों की स्थापना कर सकता है। अपने कार्य कौशल व रचनात्मकता से संपूर्ण विश्व को रूबरू करा सकता है, सूचना के आदान-प्रदान, जनमत तैयार करने, विभिन्न क्षेत्रों और संस्कृति के लोगों को आपस में जोड़ने, भागीदार बनाने और सबसे महत्वपूर्ण यह है कि नए ढंग से संपर्क स्थापित करने में युवा वर्ग अपना हाथ बढ़ा सकते हैं और इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स को एक सशक्त एवं बेजोड़ उपकरण के रूप में तैयार कर सकते हैं।

शीर्षक- ''बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।''

अध्ययन के उद्देश्य

1. बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति में पाए जाने वाले अंतर का अध्ययन करना।

2. बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पनाएं

1. बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

2. बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

3. बी.एड. के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाता है।

4. बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाता है।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोध कार्य में आंकडे एकत्रिकरण हेतु ''सर्वेक्षण विधि'' का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श : जयपुर जिले में स्थित बी.एड. महाविद्यालय के 300 विद्यार्थियों और बी.टेक महाविद्यालय के 300 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया है।

उपकरण

मूल्यों के परीक्षण हेतु डॉ. जी.पी. शैरी एवं डॉ. आर.पी. वर्मा द्वारा निर्मित एवं मानकीकृत 'व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली' का प्रयोग किया गया है एवं इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति जानने हेतु सरकार एन. दास द्वारा निर्मित एवं मानकीकृत ''इंटरनेट सोशल नेटवर्किंग साइट्स एटीट्यूड स्केल'' का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकी विधियां

प्रस्तुत शोध अध्ययन में मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, टी टेस्ट, सहसंबंध आदि सांख्यिकी गणनाएं की गई है।

प्रदत्त संकलन, विश्लेषण एवं व्याख्या

व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली में मूल्यों को 10 श्रेणी (धार्मिक, सामाजिक, प्रजातांत्रिक, सौंदर्यात्मक, आर्थिक, ज्ञान, सुखवादी, शक्ति, पारिवारिक प्रतिष्ठा, स्वास्थ्य) में विभक्त किया गया है। और दो आयामों इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का इन दस मूल्यों पर प्रभाव को देखा गया है।

टी टेस्ट एवं सहसम्बन्ध का परिकलन अग्रांकित तालिका में निम्न प्रकार से किया गया है–

परिकल्पना-1 बी.एड एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

सारणी संख्या-1

बी.एड एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट के प्रति अभिवृत्ति में अंतर

आयाम	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी-परीक्षण	परिणाम
इंटरनेट	बी.एड.	300	75.63	7.87	4.01	अस्वीकृत
	बी.टेक	300	78.25	8.13	–	–

बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट के प्रति अभिवृत्ति से संबंधित प्रदत्तों से यह स्पष्ट है कि बी.एड. के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का मध्यमान 75.63 एवं प्रमाणिक विचलन 7.87 प्राप्त हुआ, वहीं बी.टेक के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का मध्यमान 78.25 एवं प्रमाणिक विचलन 8.13 प्राप्त हुआ। जिससे टी-परीक्षण का मान 4.01 प्राप्त हुआ। गणना किया गया टी-परीक्षण का मान, सार्थकता स्तर 0.05 के तालिका मूल्य (1.96) से अधिक है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

परिकल्पना-2 बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

सारणी संख्या-2

बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति में अंतर

आयाम	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी-परीक्षण	परिणाम
सोशल नेटवर्किंग	बी.एड.	300	74.95	6.44	2.51	अस्वीकृत
साइट्स	बी.टेक	300	76.62	9.58	–	–

बी.एड. के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का मध्यमान 74.95 एवं प्रमाणिक विचलन 6.44 प्राप्त हुआ, वहीं बी.टेक के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का मध्यमान 76.62 एवं प्रमाणिक विचलन 9.58 प्राप्त हुआ। जिससे टी-परीक्षण का मान 2.51 प्राप्त हुआ। गणना किया गया टी-परीक्षण का मान, सार्थकता स्तर 0.05 के तालिका मूल्य (1.96) से अधिक है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

आरेख संख्या 1

बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट के प्रति अभिवृत्ति में अंतर

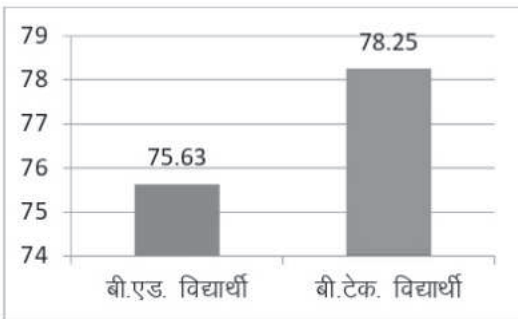

आरेख संख्या 2

बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति में अंतर

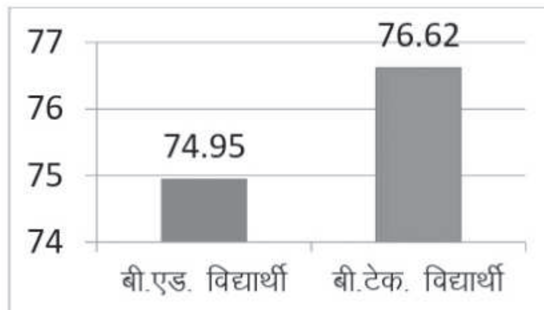

आरेख संख्या 1 और आरेख संख्या 2 को देखने से पता चलता है कि दोनों ही आरेखों में बी.एड. के विद्यार्थियों का मध्यमान बी.टेक के विद्यार्थियों के मध्यमान से कम है। निष्कर्षतः कहा जा सकता हैं कि बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का स्तर बी.एड के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक उच्च है।

परिकल्पना-3 बी.एड. के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाता है।

सारणी संख्या 3

बी.एड. के विद्यार्थियों की इंटरनेट और सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव में सहसंबंध

समूह	चर	समूह संख्या	सहसंबंध गुणांक	परिणाम
बी.एड.	इंटरनेट के प्रति अभिवृत्ति	300	0.32	अस्वीकृत
	मूल्य			
	सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति		0.33	अस्वीकृत
	मूल्य			

बी.एड. के विद्यार्थियों की इंटरनेट के प्रति अभिवृत्ति एवं मूल्यों के मध्य सहसंबंध गुणांक का मान 0.32 प्राप्त हुआ है। प्राप्त हुआ सहसंबंध गुणांक का मान सार्थकता के 0.05 स्तर पर सारणी मान (0.112) से अधिक है, अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति एवं मूल्यों के मध्य सहसंबंध गुणांक का मान 0.33 प्राप्त हुआ है। प्राप्त हुआ सहसंबंध गुणांक का मान सार्थकता के 0.05 स्तर पर सारणी मान (0.112) से अधिक है, अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

अतः हम कह सकते हैं कि बी.एड. के विद्यार्थियों की सोशल नेटवर्किंग साइट्स एवं इंटरनेट के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव में सार्थक सहसंबंध है अर्थात् इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति बी.एड. के विद्यार्थियों के मूल्यों को सामान्य रूप से प्रभावित कर रही है।

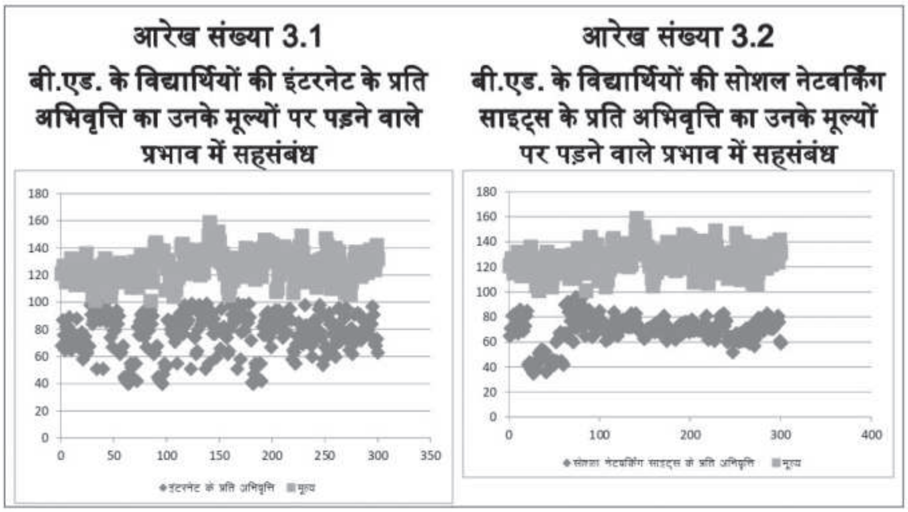

लाल बिन्दुओं के द्वारा मूल्यों के अंकों को एवं नीले बिन्दुओं के द्वारा इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति के अंकों को प्रदर्शित किया गया है। लाल एवं नीले बिन्दुओं का समान रूप से विचलन होना धनात्मक सहसंबंध को दर्शाता है।

परिकल्पना-4 बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव में कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया जाता है।

सारणी संख्या 4

समूह	चर	समूह संख्या	सहसंबंध गुणांक	परिणाम
बी.टेक	इंटरनेट के प्रति अभिवृत्ति	300	0.24	अस्वीकृत
	मूल्य			
	सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति		0.21	अस्वीकृत
	मूल्य			

बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट और सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव में सहसंबंध

बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट के प्रति अभिवृत्ति एवं मूल्यों के मध्य सहसंबंध गुणांक का मान 0.24 प्राप्त हुआ है। प्राप्त हुआ सहसंबंध गुणांक का मान सार्थकता के 0.05 स्तर पर सारणी मान (0.112) से अधिक है, अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

बी.टेक के विद्यार्थियों की सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति एवं मूल्यों के मध्य सहसंबंध गुणांक का मान 0.21 प्राप्त हुआ है। प्राप्त हुआ सहसंबंध गुणांक का मान सार्थकता के 0.05 स्तर पर सारणी मान (0.112) से अधिक है, अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

अतः हम कह सकते हैं कि बी.टेक. के विद्यार्थियों की सोशल नेटवर्किंग साइट्स एवं इंटरनेट के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव में सार्थक सहसंबंध है अर्थात् इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति बी. एड. के विद्यार्थियों के मूल्यों को सामान्य रूप से प्रभावित कर रही है।

आरेख संख्या 4.1
बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव में सहसंबंध

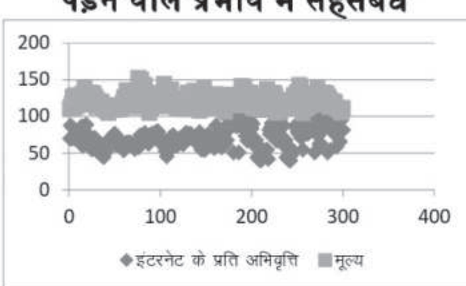

आरेख संख्या 4.2
बी.टेक के विद्यार्थियों की सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव में सहसंबंध

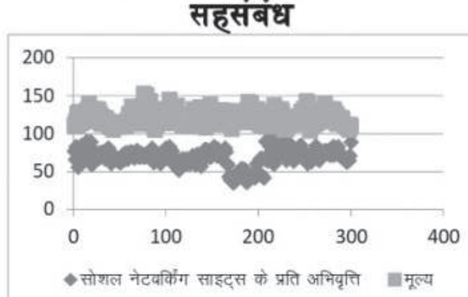

लाल बिन्दुओं के द्वारा मूल्यों के अंकों को एवं नीले बिन्दुओं के द्वारा इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति के अंकों को प्रदर्शित किया गया है। लाल एवं नीले बिन्दुओं का समान रूप से विचलन होना धनात्मक सहसंबंध को दर्शाता है।

निष्कर्ष एवं परिचर्चा

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति में अंतर में पाया जाता है। सारणी संख्या 1 व सारणी संख्या 2 से विदित होता है कि बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान बी.एड. के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक उच्च है। सम्भवतः बी.टेक के विद्यार्थी टेक्नोलॉजी के ज्यादा सम्पर्क में है उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति में इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जबकि बी.एड. के विद्यार्थी अधिकांशतः ग्रामीण परिवेश व छोटे स्थानों से संबंधित होते हैं यह स्थान नेटवर्क की पहुँच से बाहर होते हैं और बी.एड. के विद्यार्थी ऑनलाइन संसाधनों के प्रति अधिक जागरूक भी नहीं है, विद्यार्थी शिक्षा हेतु परम्परागत साधनों का ही प्रयोग कर रहे हैं जबकि बी.टेक के विद्यार्थी टेक्नोलॉजी और ऑनलाइन साधनों के अधिक सम्पर्क में रहते हैं उन्हें टेक्नोलॉजी का पर्याप्त ज्ञान है इसलिए बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति बी.एड. के विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च होना स्वाभाविक है। बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति में अंतर उनके मूल्यों को भी भिन्न प्रकार से प्रभावित करता है। प्रस्तुत शोध कार्य में बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव में सहसम्बन्ध पाया गया है। परन्तु यह सह-सम्बन्ध अति निम्न धनात्मक स्तर का है अर्थात इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स उनके मूल्यों को सकारात्मक रूप से प्रभावित तो करता है परंतु अत्यन्त सूक्ष्म स्तर पर ही विद्यार्थियों के मूल्य प्रभावित हो रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बुच, एम.बी. (1988-92), फिफ्टथ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन (Volume II), न्यू देहली : एन.सी.ई.आर.टी.
2. के. अल्पना (फरवरी 2024) सांस्कृतिक प्रवाह (वर्ष 11 अंक-1), अखिल भारतीय संस्कृति समन्वय संस्थान।
3. केला, एच.वी. (Jul-Dec-, 2024) जर्नल ऑफ साइकोसोशल रिसर्च (वाल्यूम 19, नं. 2) न्यू दिल्ली : प्रिंटर्स पब्लिकेशन वीवर्टी लिमिटेड।
4. द्विवेदी, एस.के. (जनवरी-जून 2024) भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका (वाल्यूम 43, अंक 1) लखनऊ : भारतीय शिक्षा शोध संस्थान।
5. मिश्रा, डी. (जून 2024) शृंखला (वाल्यूम XI), कानपुर : सोशल रिसर्च फाउण्डेशन।
6. यादव, आर. (जुलाई 2015) एजुकेशनल एण्ड साइकोलॉजिकल रिसर्च (वाल्यूम 5) रेवाडी : सी.एल.डी.एस. मेमोरियल एजुकेशन सोसायटी।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

पवनदूत पर कालिदास का प्रभाव

डॉ. दिलारा रिज़्वी
अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी,
अलीगढ़

महाकवि कालिदास संस्कृत-साहित्य के सुविख्यात कवि हैं। प्राचीन भारतीय परम्परा के समस्त कवियों तथा आलोचकों ने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इनकी रचनाएँ विष्वप्रसिद्ध हैं। यह गीतिकाव्य के जन्मदाता कहे जाते हैं। इनके द्वारा रचित मेघदूत एवं ऋतुसंहार गीतिकाव्य की प्राचीनतम रचनाएँ हैं। इनसे प्रेरित होकर अनेकों रचनाकारों ने इनका अनुकरण किया और विविध ग्रन्थों की रचना की। धोयी भी उनके प्रभाव से अछूते न रहे। उन्होंने मेघदूत को आधार बनाकर पवनदूत लिखा। यह उनकी एकमात्र रचना है। मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गये गीतिकाव्यों में यह सबसे प्राचीन समझा जाता है।[1] इसलिए इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें भी काव्य का चिर परिचित विषय प्रिय के पास विरहिणी का प्रणय-संदेश भेजने वर्णन का है। धोयी के इस लघुकाव्य को दूत-काव्यों में अग्रणी होने का निःसंदेह गौरव प्राप्त है।

संस्कृत में गीतिकाव्य दो प्रकार के होते हैं- प्रबन्ध एवं मुक्तक। प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य संदेश भेजने की परम्परा के कारण संदेश-काव्य अथवा दूतकाव्य कहलाते हैं। विप्रलंभ शृंगार तथा विरहजनित पृष्ठभूमि में ही संदेश- काव्य का अभ्युदय होता है। इन काव्यों का प्रतिपाद्य विषय विरह से व्याकुल नायक अथवा नायिका द्वारा अपने प्रियतम तक दूत के माध्यम से संदेश भेजना ही है।

संसार के प्रत्येक प्राणी को जीवित रहने के लिए वायु की आवश्यकता होती है। मेघदूत से भी सिद्ध होता है कि मेघ के अन्दर भी वायु की सत्ता होती है–

धूमज्योतिः सलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः।[2]

धोयी ने अपनी कृति में वायु को संदेशवाहक दूत बनाकर वायु की जीवन्तता एवं सक्रियता को सिद्ध किया है। धोयी बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के आश्रित कवि थे।[3] इनका समय बारहवीं शताब्दी माना गया है। राजा लक्ष्मणसेन की दिग्विजय के प्रसंग में मलयाचल पर्वत पर कनक नगरी में रहने वाली कुवलयवती नामक गंधर्व-कन्या उनके अलौकिक सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाती है। राजा के अपनी राजधानी लौट जाने पर वह बहुत दुखी होती है। वह उसके वियोग में अत्यधिक व्याकुल रहने लगती है। इसलिए वसन्त ऋतु के आगमन पर उसने वसन्त ऋतु की वायु को राजा के पास दूत बनाकर भेजा था। कुवलयवती ने पहले पवन को जाने का मार्ग बताया। तत्पश्चात् राजा लक्ष्मणसेन के लिए अपना प्रणय-संदेश भेजा है। 104 पद्यों में पवनदूत की कथा निबद्ध की गयी है।

मेघदूत् में यक्ष की विरहावस्था का वर्णन किया है। इसमें यक्ष ने मेघ को अपना दूत बनाया था। धोयी ने भी कालिदास का अनुकरण किया। निरन्तर आस्वादन करते हुए जो प्रेम कम होता चला जाता है विरहावस्था में वही प्रेमराशि के रूप में परिवर्तित हो जाता है। दोनों ही रचनाओं में ऐसा ही हुआ है। मेघदूत के द्वारा कालिदास ने संदेश दिया है कि वियोग ही सच्चे प्रेम का परिपोषक है। पवनदूत में भी राजा लक्ष्मणसेन के अपनी राजधानी लौट जाने के पश्चात् ही कुवलयवती के

प्रेम का चरमोत्कर्ष हुआ था। इसीलिए पवनदूत पर विहंगम दृष्टिपात करने के पश्चात् दोनों रचनाओं में अनेकों प्रकार की समानताएँ दृष्टिगत होती हैं। सर्वप्रथम मेघदूत और पवनदूत दोनों में ही भावों की समानता के साथ शब्द भी एक जैसे ही प्रयुक्त हुए हैं। यथा—

तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञां मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।।[4]

कालिदास ने अधिक गुणवाले से की गयी निष्फल याचना को भी अच्छा बताया है तथा निर्गुण से की गयी याचना सफल कामना वाली होने पर भी बुरी कही है। धोयी ने भी इसी प्रकार की याचना पवन से की है। उन्होंने वायु को स्वभाव से सरल एवं उदार कहा है। इसीलिए उसे अपने प्रणय संदेशवाहक बनाया था—

तस्मादेव त्वयि खलु मया संप्रणीतोऽर्थिभावः।
प्रायो भिक्षा भवति विफला नैव युष्मद्विधेषु।।[5]

मेघदूत में अलका नगरी का उल्लेख किया गया है। यह धनदेव कुबेर की राजधानी मानी जाती है। इसको बड़े-बड़े धनी यक्षों का निवास स्थान बताया है। पुराणों के अनुसार इस नगरी के बाहर राजा चित्ररथ ने एक उद्यान बनवाया था जो भगवान् शिव के सिर पर स्थित चन्द्रमा की चाँदनी से उज्जवल होता था—

गन्तव्या ने वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरचन्द्रिका धौतहर्म्या।।[6]

पवनदूत में भी गौडदेश का वर्णन हुआ है। वहां की सुन्दरता धोयी के अनुसार घने उद्यानों के कारण थी। वे उद्यान इतने सुन्दर बताये गये हैं जिन्होंने आकाश को भी आच्छादित कर रखा था—

तत्रावश्यं कुसुमसमये स त्वया शीलनीयः
सान्द्रोद्यानस्थगितगगन प्रोङ्गणो गौडदेशः।[7]

धोयी ने काञ्चीनगरी का वर्णन करते हुए जिन भावों एवं शब्दावली का प्रयोग किया है वे मेघदूत में आम्रकूट के वर्णन से समानता रखते हैं—

हित्वा काञ्चीविनयवतीं भक्तरोधोनिकुञ्जाम्।
तां कावेरीमनुसर खगश्रेणिवाचालकूलाम्।[8]
एवं
स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गंद्रुततर गतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।[9]

किरात आदि विशेष जातियों की स्त्रियाँ जंगल में भ्रमण करते हुए फल, मधु, लकड़ी आदि का करती हैं। वहीं पर पत्तें की शय्या बनाकर पति संग रमण भी करती हैं। यक्ष ने मेघ से उन कुंजों पर जलवर्षा करने का आग्रह किया है। लगभग यही भाव पवन के प्रति कुवलयवती के भी हैं। इस प्रकार दोनों ही रचनाओं में निर्विन्ध्या नदी तथा यमुना नदी के स्वरुप को कहने के लिए दोनों ही रचनाकारों ने लगभग एक समान शब्दों का प्रयोग किया है—

संसर्पन्त्या स्खलितसुभगं दर्शिनावर्तनाभेः।[10]
तथा
संसर्पन्तीं प्रकृतिकुटिलां दर्शिनावर्तचक्राम्।[11]

कुवलयवती का राजा लक्ष्मणसेन के लिए तथा यक्ष का अपनी पत्नी के लिए एक जैसा ही प्रेमभाव है—

आसाद्यातः कमपि समयं सौम्य वक्तुं विविक्ते
देवं नीचौर्विनयचतुरः कामिनं प्रक्रमेथाः।[12]
एवं

तथा स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितक्वनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः।[13]

कुवलयवती अपने प्रेमी तक संदेश पहुँचाने हेतु उचित समय की अपेक्षा रखते हुए वायु से धीरे-धीरे गमन करने का अनुरोध करती है। उसी प्रकार यक्ष भी मेघ से कहता है कि वह उसकी पत्नी को क्षणभर प्रतीक्षा करने के पश्चात् ही जगाये। तत्पश्चात् वार्तालाप करे। कुवलयवती एवं यक्ष दोनों ही विरही हैं। दोनों ही अपने-अपने प्रेमियों से मिलन के इच्छुक भी हैं। उनके लिए विरह की अवधि असहनीय हो गयी है। अतः प्रेमी जनों के पास से आने वाली वायु भी दोनों को ही अत्यधिक सुखद इसलिए प्रतीत हो रही थी कि वह वायु उनके प्रेमियों के शरीर का स्पर्श करती हुई आ रही थी–

यातः कृच्छ्रात्तुहिनसमयः सम्प्रति त्वत्सकाशाद्
आगच्छन्तीं पवनलहरीमप्यनासादयन्त्याः।[14]

एवं

भित्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।[15]

उज्जयिनी के तट पर स्थित शिप्रा नदी की वायु अत्यधिक सुखकर है जो स्त्रियों के अंगों की सम्भोग के पश्चात् होने वाली थकान को पूर्णरुपेण समाप्त कर देती है। इसी के साथ समानता लिए हुए विजयपुर की वायु भी है जिसका धोयी ने वर्णन किया है–

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गनुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः।[16]

तथा

गंगावातस्त्वमिव चतुरो यत्र पौराङ्गनानां
संभोगान्ते सपदि वितनोत्यङ्गसंवाहनानि।[17]

धोयी ने कालिदास का अनुकरण अवश्य किया है किन्तु कहीं-कहीं दोनों के भावसाम्य में विविधता भी दृष्टिगोचर होती है। अनेक स्थलों पर दोनों की कल्पना पृथक-पृथक है फिर भी कालिदास धोयी के लिए प्रेरणाञ्ज्स्त्रोत हैं। इसलिए न केवल मेघदूत का ही वरन् कुमारसम्भवम् का प्रभाव भी पवनदूत पर पड़ा है। पार्वती की बरौनियाँ (पलकें) बहुत धनी एवं चिकनी थीं। परिणामस्वरुप जल की बूँदे उनमें से उलझकर अधिक समय तक उन पलकों पर टिक नहीं पाती थीं। वे उनके निचले होठों से टकराकर स्तनों की ऊँचाई से छिन्न-भिन्न होकर पेट पर होती हुई क्रमशः नाभि में विलुप्त हो जाया करती थीं। लगभग यही वर्णन लक्ष्मणसेन के विरह में कुवलवती का भी हैं–

आदौ यातो नयनपदवीं स्तम्भयन् पक्ष्ममालां
चुम्बन् गण्डस्थलभुवमथो पीतबिम्बाधरौष्ठः।
कुर्वन् कण्ठग्रहमपि कुचोत्सगङ्गशय्याशयान
स्तस्या वाष्पः किमिव न खलु त्वद्वियोगे करोति।।[18]

एवं

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः रुखलिता प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः।।[19]

इस प्रकार निष्कर्ष रुप में कह सकते हैं कि धोयी अपनी एकमात्र रचना के सृजन हेतु कालिदास के ऋणी हैं। दोनों ही रचनाओं में बहुतायत में समानताओं के साथ ही कुछ विषमताएँ भी देखने को मिलती हैं। मेघदूत में पुरुष संदेश प्रेषित करता है जबकि पवनदूत में स्त्री। कालिदास ने मेघ द्वारा संदेश उत्तर दिषा से दक्षिण दिशा की ओर भिजवाया है किन्तु धोयी इसके विपरीत दक्षिण दिशा से उत्तर पूर्व की ओर। फिर भी दोनों रचनाओं के गहन अध्ययन से यह प्रकट हो जाता है कि

धोयी पर कालिदास का स्पष्ट प्रभाव है।

संदर्भ

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 331
2. मेघदूत, पूर्वमेघ, 5
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 332
4. वही, पूर्वमेघ, 6
5. पवनदूतम्, 4
6. मेघदूत, 1.7
7. पवनदूत, 6
8. वही, 15
9. मेघदूत, 1.19
10. वही, 1.29
11. पवनदूतम्, 34
12. वही, 61
13. मेघदूत, 2.38
14. पवनदूतम्, 82
15. मेघदूत, 82
16. वही, 1.32
17. पवनदूतम्, 36
18. वही, 74
19. कुमारसम्भवम्, 5.24

सहायक ग्रंथ

1. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत-साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी, 1997
2. कालिदास, मेघदूतम्, साहित्य भंडार मेरठ, 1997
3. धोयी, पवनदूतम्, विवेक पब्लिकेशन्स, 1978
4. कालिदास, कुमारसंम्भवम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2013

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

तेजेंद्र शर्मा के साहित्य में अभिव्यक्त प्रवासी स्त्री जीवन

सपना दास
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय
संपर्क सूत्र : 7044355873
ईमेल- sapna070295@gmail.com

सारांश

भारतीय मूलवंशी प्रवासी देशों में रहकर भी भारतीयता की मिट्टी से जुड़े हुए हैं। उनका यह जुड़ाव, अपनापन, देश प्रेम तथा अपनों के प्रति मोह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी खेमें में प्रवासी साहित्यकार तेजेंद्र शर्मा जो कि वर्तमान समय में प्रवासी हिंदी साहित्य जगत में अपना नाम दर्ज करा चुके हैं। वे एक ऐसे तत्कालीन, समसामयिक परिवेश तथा पृष्ठभूमि के रचनाकार हैं, जिनकी रचनाओं में प्रवासी जीवन-गाथा का दंश भी है, प्रवासी स्त्री जीवन का चरित्रांकन भी है। इसके अलावा इनके साहित्य में करुणा, त्रासदी, समय की मांग के अनुसार सत्य की खोज भी है, साथ ही इनके साहित्य में दर्द की गुहार भी है।

मूल शब्द : प्रवास, प्रवासी, प्रवासीय, अप्रवासी, प्रवासन, अप्रवासन, उत्प्रवासन, डायस्पोरा, नेस्तालोजिया, विस्थापन, देशी, विदेशी, स्वदेशी, वास, वासी, निवासी, आवासीय, एन.आर.आई. पुनर्वास, पुनर्स्थान आदि।

पौराणिक शब्द : दास, गुलाम, बंधुआ, गिरमिट, गिरमिटिया, ग्रेमेंट से गिरमिट और गिरमिट से गिरमिटिया।

प्रस्तावना

'प्रवास' किसी एकाएक घटित होने वाले एकल घटना का परिणाम नहीं हैं। यदि प्रवास हेतु विविध कारणों एवं समस्याओं की जांच-पड़ताल, अनुसंधान करने पर ज्ञात होता है कि विवाह, परम्परा, शोध, शिक्षा, रोजगार, चिकित्सा आदि अवसर की आवश्यकता एवं सुख-सुविधाओं की उपलब्धियां तथा मानव विकास के लिए विविध प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सुरक्षा को इसका मुख्य कारण माना जा सकता है।

'प्रवास' शब्द से अभिप्राय है, अपने मूल क्षेत्र, प्रान्त अथवा एक स्थान या देश को छोड़कर दूसरे स्थान, देश में जाकर वास करना। इस प्रक्रिया में वास से वासी तथा प्रवास से प्रवासी फिर पुनर्वासी से पुनर्स्थान की प्रक्रिया भी शमिल है। चूँकि, प्रवास शब्द दो शब्दों के योग से बना है- प्र + वास। इसमें 'वस' धातु और 'प' 'उपसर्ग' के लगाने से 'प्रवास' शब्द की उत्पत्ति होती है। जबकि 'प्र' उपसर्ग लगने से इसका अर्थ बदल जाता है- विदेश गमन, यात्रा करना। संस्कृत हिंदी कोश में, "विदेश गमन, विदेश यात्रा, घर पर न रहना, परदेश निवास।"[1] आदि अर्थ दिए गए हैं।

तेजेंद्र शर्मा के साहित्य में अभिव्यक्त प्रवासी स्त्री जीवन के यथार्थ को समझने हेतु इनके साहित्य में निहितार्थ प्रवासी जीवन के परिदृश्य का अवलोकन करना अति-आवश्यक जान पड़ता है। तेजेंद्र शर्मा का साहित्य मूल रूप से सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथा मानवीय मूल्यों को समेटे हुए वैश्विक धरातल पर परचम फैलाए हुए हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इन्होंने भारतीय अस्मिता को स्पर्श करते हुए प्रवासी धरती पर प्रवासिनी की पीड़ा को महसूस किया है, उसे बहुत ही नजदीक से

देखा है, जिसे इन्होंने अपने साहित्य में उकेरा है। तेजेंद्र शर्मा के संदर्भ में 'धीरेन्द्र अस्थाना' ने लिखा है, "परकीया प्रवेश में तेजेंद्र को दक्षता हासिल है। यानी स्त्रियों की यातना, दुःख और हर्ष को ठीक तेजेंद्र ने उसी तरह जिया है जैसे कोई स्त्री ही जी सकती है..।"[2] प्रवासी स्त्री जीवन गाथा पर आधारित तेजेंद्र शर्मा कृत 'काला सागर', ढिबरी टाईट', 'देह की कीमत', 'ये क्या हो गया', 'बेघर आँखें', 'सीधी रेखा की परतें', 'कब्र का मुनाफा' आदि इनकी रचनाएँ हैं। इनके कहानियों के अलावा कविता व गज़ल आदि संग्रह तथा कहनियों का अनुदित रूप मराठी, गुजराती, उड़िया, चेक तथा अंग्रेजी भाषाओं में भी उपलब्ध हैं।

अतरू इनकी समस्त रचनाओं में प्रवासी स्त्री जीवन का दर्द में ब्रह्माण्डीय गूंज है। जबकि प्रवासी स्त्री उत्पीड़न की लहर का ज्वलंत उदाहरण दुनिया भर में साहित्यिक दृष्टिकोण से फैले हुए हैं। जहाँ प्रवासियों की मासूमियत, अपनों से बिछुड़न का दर्द आदि इनके साहित्य में परिलक्षित है। इस प्रकार, हम देख सकते हैं कि तेजेंद्र शर्मा के साहित्य की विशेषता मूलरूप से उनका विषय वैविध्यपूर्ण परिवर्तन, समय की मांग के अनुसार प्रस्तुतीकरण तथा विषयों की समसामयिकता आदि है, जो कि सद्भाव की गंभीरता को धरातल पर लेखनी के माध्यम से पन्नों पर परिलक्षित करता है।

तेजेंद्र शर्मा को लिखने की प्रेरणा अपनी पत्नी से मिली। जब वे मुम्बई वास के दौरान देवेश ठाकुर के सानिध्य में शोधकार्य कर रही थी तभी उन्हीं के सानिध्य में रहकर लेखक ने भी लेखन कार्य आरंभ कर दिया। वह ऐसा दौर, अनुभव था जब उन्हें महसूस हुआ कि वे भी कुछ लिख सकते हैं, तभी उन्होंने 'देह की कीमत' नामक कहानी संग्रह की रचना की। जिसमें प्रवासी जीवन के यथार्थ का चित्रण है। कहानी के संदर्भ में कृष्ण सोबती ने लिखती हैं, "तेजेंद्र शर्मा की कहनियों से गुजरते हुए हम यह शिद्दत से महसूस करते है कि अपने वजूद का टेक्स्ट होता है। उसके पात्र जिन्दगी के मुश्किलों से गुजरते हैं और अपने लिए नया रास्ता तलाश करते हैं। उनकी कहानी 'टेलीफोन लाईन' का अंत हमें मंटो की कहानियों की तरह झकझोर देता है। वह बाहरी दुनिया की कहानियाँ लिखते हैं जिनमें चरित्र होते हैं और डायलॉग का खुबसुरत यथार्थ को चित्रित किया गया है।"[3] अतः प्रवासी स्त्री जीवन के विविध आयाम को समझने हेतु तेजेंद्र शर्मा के साहित्य का शोधात्मक अध्ययन-विश्लेषण करना आवश्यक है, जो इस प्रकार से हैं-

यौन शोषित प्रवासी स्त्री जीवन- भारतीय समाज में स्त्री जीवन, स्त्री की छवि को काँच की तरह माना है, जिसे टूटने के बाद जोड़ा नहीं जा सकता। इसका स्पष्ट प्रमाण 'सिलवटे' नामक कहानी में दर्शाया गया है। 'सुलक्षणा' जो कि प्रमुख प्रवासी स्त्री पात्र है। अपने साथ होस्टल में घटित दुष्कर्म को प्रकाश कर देना चाहती है, ताकि उसे इंसाफ मिले। पुलिस को बताना चाहती है, परन्तु, सभ्य समाज अपनी बदनामी न हो, इसके चलते बालात्कार की घटना को बूरा सपना समझकर भूल जाने की परामर्श देते हुए कहते हैं कि "सुलक्षणा भूल जाओ तुम्हारे साथ क्या हुआ..। हमारे समाज में जो भी लड़की विवाह से पहले कौमार्य खो बैठती है, उसकी ओर कोई नज़र उठाकर नहीं देखता। अपनी प्रतिष्ठा के बारे में सोचो...होस्टल और कॉलेज की बदनामी होगी।"[4] आशय यह है कि समाज और समाज द्वारा बनाए गए ताकियानुसी नियमों तथा पारंपरिक सामाजिक मूल्यों का हवाला देते हुए पीड़िता का मुँह बंद करा दिया जाता है।

क्वारी प्रवासी स्त्री जीवन- तेजेंद्र शर्मा कृत 'मुट्ठी भर रौशनी' नामक कहानी में सीमा नामक प्रवासी स्त्री जीवन की त्रासदी को रेखांकित किया गया है। प्रारंभ से ही 'सीमा' का जीवन कशमकश एवं वेदनाओं उत्पीड़न से जूझता रहा है। जन्म के समय परिवार में ताना का पात्र बन गई। तत्पश्चात् युवावस्था में 'राज' नामक पायलट उससे विवाह करना चाहता है, सीमा भी उसके प्रति मोहित होती है, किन्तु दुर्भाग्यवश प्लेन क्रैश हो जाने की वजह से पायलट की मौत हो जाती है। ऐसे में सीमा एक गम से उभरी नहीं थी कि उसके सामने दुःखों का पहाड़ तब टूट पड़ता है जब डॉक्टर उसके गर्भवती होने की पुष्टि करता है। परिवार और समाज के ताने उसे जीने नहीं देती। उसकी माँ कहती है, "कलमुँही! इतना क्या जवानी चढ़ी थी तुझे। चार दिन सबर नहीं था। खानदान की नाक कटवा दी।"[5] एक बिन ब्याही लड़की का क्वारी माँ बनना समाज को कतई स्वीकार नहीं। चारों तरफ थू-थू- होने लगता है। सीमा का चचेरा भाई मनीष स्वयं उसकी माँ को समझाने का प्रयास करता है। परन्तु, सीमा की माँ उलटे स्वर कहती है, "अगर इज्जत का इतना ही ख्याल है तो सीमा से शादी कर ले। हम सबको समझा लेंगे।

इस जन्मजली को कौन ब्याह कर ले जाएगा?"[6] उसकी माँ के कटु वचन सुनकर मनीष भाव-विभोर एवं आक्रोशित भी होता है पर कुछ समय के बाद वह सीमा से विवाह कर लेता है। किन्तु, वह उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर नहीं पाता। वह उसे अपनी बड़ी बहन मानता है। चूँकि, इस रिश्ते को आस-पड़ोस के लोग गलत मानते हुए उनपे लाक्षण लगाते हैं, जिसे मनीष सह नहीं पाता और ठीक पांचवें दिन उसका शव समुंद्र में फूली हुई अवस्था में पाया जाता है। इस प्रकार, हम देख सकते हैं कि प्रवास में प्रवासिनी बड़ी ही आकांक्षा, महत्वाकांक्षा लिए अपने सपनों की दुनिया में घर बसाना चाहती है, पर यह समाज, परिस्थितियाँ उसे जीने नहीं देती उसके भाग्य में न प्रेमी का सुख लिखा था और न ही पति का, बस था तो समाज का तिरस्कार, लाक्षणा और पापिन जैसे शब्दों का शिकार, अपमान और उत्पीड़न। जिसे वह जन्म से लेकर अबतक वह भोग रही है। अतः यहाँ प्रवासी स्त्री जीवन की विवशता, संवेदनात्मकता का चित्रण है।

प्रवासी स्त्री जीवन-गाथा- प्रवासी स्त्री जीवन-गाथा के स्वर को प्रस्तुत करने वाली कहानी है- 'मलबे की मालकिन'। एक स्त्री जब ब्याह कर अपने ससुराल आती है तब उसका एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन करना यानी स्त्री प्रवास कहलाता है, जो कि विवाहोपरांत होता है। ठीक इस कहानी में प्रवासिनी स्त्री प्रियदर्शिनी की जीवन-गाथा का बखान है। स्त्री के लिए माता-पिता का घर को या ससुराल कहीं भी सुरक्षित नहीं है। उसे अपने इज्जत, आबरू को ज़माने की गंदी नज़रों से छिप-छिपाकर रखाना ही उसकी नियति बन जाती है। समाज की सोच यह है कि अगर, लड़की अधिक पढ़-लिख गई तो तर्क करेगी। इसी संदर्भ में प्रियदर्शिनी को देखते ही लोग कह उठते हैं, "लड़की अधिक पढ़-लिख गई तो लड़का कहाँ से मिलेगा..? अपनी बिरादरी में तो पढ़े-लिखे लड़के ढूंढे से भी नहीं मिलते...इंसान न भी मिले तो क्या फर्क पड़ता है? जो भी मिले उसके पल्ले बांध देंगे...माँ-बाप को तो गंगा नहानी है..पढ़-लिखकर ख़राब होने से अच्छा है अपना घर बसाओ, पति का ख्याल रखो, बच्चे पालो।"[7] इसी संदर्भ में प्रवासी लेखिका 'उषा राजे सक्सेना' ने अपनी कहानी 'सलीना तो सिर्फ शादी करना चाहती थी' में सलीना के माध्यम प्रवासी स्त्री जीवन की मानसिक द्वंद्व को चित्रित करते हुए कहती है, "शादी विवाह जैसे रिश्तों पर मुहर लगाना जरुरी है। चार लोग शादी ब्याह के साक्षी हों तो समाज में इज्जत बनी रहती है..।"[8] समाज में स्त्री को वस्तु मात्र समझा जाता है, जिसका कार्य है घर संभालना और बच्चे पालना। सदियों से यह देखा जा रहा है कि समाज की रुढ़िवादी मानसिकता ने बलि का बकरा स्त्री को ही बनाया है।

स्वतंत्र प्रवासी स्त्री जीवन- वैश्विकरण की चकाचौंध ने मानव-मन को मोह लिया है। व्यक्ति गाँव छोड़ शहर, देश छोड़ विदेश की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। इसका मुख्य कारण है, प्राथमिक एवं द्वितीय सुख-सुविधाओं की उपलब्धियाँ। यही कारण है कि स्त्री भी स्वतंत्र रूप से आगे बढ़ रही हैं। स्त्री चाहे किसी भी वर्ग विशेष से संबंध क्यों न रखती हो शोषण और दोहन का शिकार नहीं होना चाहती। 'कैलिप्सो' नामक कहानी में सामाजिक पारम्परिक मूल्यों को तोड़ते हुए स्वतंत्र प्रवासी स्त्री के स्वरूप को अंकित किया गया है, जो मानसिक, शारीरिक रूप से स्वतंत्र, स्वछन्द भी है। प्रवासिनी स्त्री वर्ग विच्छेद तथा उम्र, संबंध को अपनी निजीकरण में हावी नहीं होने देती। यही कारण है कि प्रवासी देशों में सामाजिक जीवन मूल्यों की स्वतंत्रा पर अत्यधिक बल प्रदान किया गया है। प्रमुख पुरुष पात्र 'नरेन' जो कि बस अड्डे पर भारतीय स्वतंत्र प्रवासी स्त्री को देखकर दंग रहा जाता है। उसके मन में तरह-तरह के विचार उत्पन्न होते हैं कि आखिर यह कौन है? कहाँ से आई है? नरेन मन-ही-मन सोचता है "इसके परिवार में कौन-कौन होगा? क्यों यह अपने परिवार के साथ नहीं रहना चाहती है।"[9] तात्पर्य यह है कि भारतीय परिवेश में पला-बढ़ा नरेन के समक्ष भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य-विघटन की छवि को प्रवासी स्त्री के स्वतंत्र स्वरूप को देखकर दंग रह जाता है।

एकल प्रवासी स्त्री जीवन- 'प्यार क्या यही है' कहानी में एकल प्रवासी स्त्री 'पूजा' के नरकीय जीवन की कथा है। उसका जीवन एकल होने के कारण सामाजिक बुराईयों ने घेर लिया है। हमारा समाज अकेली लड़की को खुली तिजोरी के समान मानता है, जिसे जब चाहे, जो चाहे हाथ मार सकता है। एक स्त्री को समाज गिद्ध की नज़रों से देखता है, उसे अपने पंजों से झपेट मारना चाहता है। पूजा अपनी व्यथा को व्यक्त करती हुई शेखर से कहती है, "शेखर! तुम नहीं समझोगे ..अकेली औरत होने के खतरों से तुम वाकिफ़ नहीं हो...यह जितने पढ़े-लिखे लोग ऊपर से शराफ़त का चोला पहने घूमते

है न..समाज के सबसे घृणित और ख़तरनाक लोग यही हैं।"[10] इस प्रकार, यहाँ हम देख सकते हैं कि लेखक ने प्रवासी स्त्री जीवन के विविध स्वरूपों को रेखांकित किया है। प्रवास के दौरान प्रवासी स्त्री जीवन में घटित तमाम घटनाओं को तथा उसकी पीड़ा, दंश को चरितार्थ करते हुए सामाजिक मूल्यों को जन-हिताय, जन-सुखाय हेतु सबके सामने प्रस्तुत किया, ताकि आमजन प्रवासी स्त्री जीवन की गाथा से रु-ब-रु हो सकें।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि मानव जीवन की गति-दुर्गति, स्थिति-परिस्थिति एवं प्रगति-नियति आदि सब कुछ का लेखा-जोखा तत्कालीन-सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यही कारण रहा है कि अतीत से लेकर वर्तमान युग में भी प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि उसका सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि सर्वदा स्वच्छ एवं उत्तम बना रहे। जबकि व्यक्ति का सामाजिक जीवन एवं समाजशास्त्रीय अध्ययन-विश्लेषण करने पर ही तमाम तथ्यों का पता लगाया जा सकता है। चूँकि, यह प्रक्रिया व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण एवं चरित्र निर्माण के अलावा परिवेश निर्माण तथा परिवार निर्माण की प्रक्रिया की तरह समाज निर्माण व गठन की प्रक्रिया भी एक अभिन्न अंग है। यानी व्यक्ति से समाज और समाज से व्यक्ति का अभिछिन्न तालमेल है, जिसे चाहकर भी पृथक नहीं किया जा सकता।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वामन शिवराम आप्टे. संस्कृत हिंदी कोश. दिल्ली : मोतीलाल बनारसी प्रकाशन. 1988. पृष्ठ संख्या. 674
2. नीना पाल.(सं.). हिंदी की वैश्विक कहानियाँ. नई दिल्ली : अमन प्रकाशन. 2012. पृष्ठ संख्या. 200.
3. कृष्ण सोबती. 'देह की कीमत'. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. 2007. फ्लैप से उद्धृत.
4. तेजेंद्र शर्मा. 'यह क्या हो गया' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'सिलवटे'. नई दिल्ली : डायमंड प्रकाशन. 2003. पृष्ठ. 44.
5. तेजेंद्र शर्मा. 'मुट्ठी भर रौशनी'. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. 1994. पृष्ठ संख्या. 55.
6. तेजेंद्र शर्मा. 'मुट्ठी भर रौशनी', वाणी प्रकाशन. नई दिल्ली, 1994. पृष्ठ संख्या. 56.
7. तेजेंद्र शर्मा. 'देह की कीमत' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'मलबे की मालकिन'. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. 2007. पृष्ठ संख्या. 21.
8. उषा राजे सक्सेना. 'वह रात और अन्य कहानियाँ' में सकलित कहानी 'सलीना तो सिर्फ शादी करना चाहती थी'. नई दिल्ली : सामायिक प्रकाशन. 2007. पृष्ठ संख्या. 57.
9. तेजेंद्र शर्मा. 'देह की कीमत' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'कैलिप्सो'. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. 2007. पृष्ठ संख्या. 83.
10. तेजेंद्र श्रम. दीवार में रास्ता' में संकलित कहानी 'प्यार.. क्या यही है'. दिल्ली : वाणी प्रकाशन. 2012. पृष्ठ संख्या. 57.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

प्रवासी हिंदी साहित्य का स्वरूप एवं साहित्यिक प्रवृतियाँ

डॉ. सीमा दास
22, बी.एल.सी.मिल्स.बाई लेन.
पोस्ट- महेश, थाना- श्रीरामपुर,
जिला- हुगली, पिन- 712202.
संपर्क : 8921233522
ईमेल- seemadas-hindi@gmail.com

सारांश

प्रवासी साहित्य, हिन्दी साहित्य की एक धारा है। विदेशी धरती पर भारतीय जीवन-मूल्यों की सीधी टकराहट है। प्रवासी साहित्य में विविध संस्कृतियों का अद्‌भुत संगम दिखाई पड़ता है। यह नए साहित्यिक विमर्श का प्रतीक है, जिसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, एवं सांकृतिक आदि विविध आयाम एवं तत्वों और क्षेत्रों को प्रभावित करता है। यानी प्रवासी हिंदी साहित्य की साहित्यिक एवं सृजनात्मक प्रवृतियाँ, वैश्विक फलक पर उसी भावबोध का सुर्यमंत्र है, जिसकी देदीप्यमान किरणों से बहुत शीघ्र पूरा विश्व जगमगाएगा।

मूल शब्द : प्रवासी, प्रवासीय, डायस्पोरा, प्रवासन, उत्प्रवास, वासन, निवासन, गमन, विघटन, विच्छेदन, प्रवासी साहित्यिक प्रवृतियाँ, सृजन कला आदि।

बीज शब्द : देश, विदेश, मुलूक, ग्राम, राष्ट्रीयता, अंतर्राष्ट्रीयकरण, निवेशित, निजीकरण, मोहभंग आदि।

प्रस्तावना

प्रवासी साहित्य ही एक ऐसा क्षेत्र बिंदु है, जिसके माध्यम से प्रवास में रह रहे लोगों की पीड़ा, उन प्रवासियों के जीवन की त्रासदी एवं उनकी मानसिकता आदि मनोभावों को आसानी से जाना जा सकता है। वास्तव में यह साहित्य एक स्थापित साहित्य है, जिसे दरकिनार नहीं किया जा सकता। भूमंडलीकरण के इस दौर में प्रवासी हिंदी साहित्य के स्वरूप एवं साहित्यिक प्रवृतियों को निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर जान सकते हैं-

प्रवास एवं प्रवासी की अवधारणा

'प्रवास' का अर्थ होता है- अपने घर, क्षेत्र एवं प्रांत से दूर बसना। 'मानक हिन्दी कोश' में प्रवास शब्द का अर्थ है- "प्रवास- अपनी जन्मभूमि को छोड़कर विदेशों में जाकर किया जाने वाला वास, यात्रा, सफ़र, विदेश, परदेश।"[1] 'हिन्दी शब्द सागर' के अनुसार- "प्रवासी अर्थात् विदेश में निवास करने वाला, परदेश में रहने वाला।"[2] इस प्रकार जो व्यक्ति अपनी जन्म भूमि छोड़कर किसी अन्य देश में वास करता है, वह उसका प्रवास 'प्रवास' कहा जाता है। प्रवास एक प्रक्रिया है, जिसे करने वाले व्यक्ति को 'प्रवासी' कहा जाता है।

व्यक्ति जब प्रवास में रहता है तो वहाँ की सभ्यता, संस्कृति, वातावरण, परिवेश में स्वयं को ढालने का प्रयास करता है। इस दौरान उस प्रवासी व्यक्तियों को अनेक समस्याओं का समना करना पड़ता है, जसमें पीढ़ीगत अंतर, सांकृतिक टकराहट, नस्लवाद, अस्तित्व संकट, आदि की समस्याएँ है, जिसे प्रवासी अपने प्रवास काल के दौरान भोगता है एवं उस पीड़ा-यातना को महसूस भी करता है। साथ-ही-साथ इससे निजात पाने के लिए वह निरंतर संघर्ष भी करता रहता है।

प्रवासीय गतिविधियाँ

प्रवासी लेखन भाषा और संस्कृतियों को जड़ने वाले संपर्क सेतु का कार्य करता है, जिसमें हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई एवं पाश्चात्य आदि के दर्शन होते हैं। यानी दो विभिन्न संस्कतियों के वृत्त एक परिधि को छूता है। साथ-ही-साथ प्रवासी जीवन की समस्त गतिविधियों को प्रभावित करता हुआ यह प्रवासी साहित्य आगे बढ़ता हुआ दिखाई देता है।

"आये हम सब हिन्दी से करन नौकरी हेत
गिरमिट काटी कठिन से फिर सरकारी खेत।"[3]

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि प्रवासी बहुत ही अभिलाषाओं एवं अत्यधिक सुन्दर सपने को संजोकर भारतवंशी नौकरी करने के लिए प्रवास में जाते हैं। परन्तु, वहां जाकर उन्हें गिरमिट जीवन यापन करना पड़ता है और गोरे सरकारों की गुलामी करनी पड़ती है।

अपनत्व बनाम अलगावबोध

प्रवासी प्रवास में रहकर भी अपनी मातृभूमि से जुड़ा रहता है, उसे अपनी धरती की याद उन्हें बहुत सताती है। साथ ही परिवार से अलगाव की पीड़ा का बोध भी होता है। इसके साथ-ही-साथ अपनी धरती से दूर विदेशी धरती पर नितांत भिन्न नए-नए प्रकार की सुख-सुविधाओं के बीच 'स्व' एवं 'अस्तिव' के सवाल समय-समय पर उन्हें विचलित करके रख देते हैं।

"मैंने परदेश में सावन को याद किया
मैंने अय माँ तेरे आँचल को याद किया।"[4]

प्रवासी साहित्य में पूर्व से पक्षिम की संस्कृति का द्वंद्व एवं मानसिक टकराहट है तथा मानवीय संवेदना, अजनबीपन, अकुलाहट, छटपटाहट, एकाकीपन, दाम्पत्य जीवन में विखंडन, टूटते-बिखरते रिश्ते, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि का चित्रण है।

प्रवासी जीवन शैली उपागम

प्रवासी जीवन शैली भारतीय जीवन शैली से कई अधिक भिन्न है। भारतीय समाज में पाश्चात्य की लहर आधुनिकता का ही मापदंड है। प्रवास के दौरान व्यक्ति में मानसिक परिवर्तन आना स्वभाविक है। बदलते परिवश में दूरियों का आना आम बात जान पड़ता है। इस संदर्भ में गोविन्द मिश्र कथन है- "विचारों की आंधियां आती जाती रहती है। थोड़ा बहुत संवेदना को मोड़ती है। लेकिन मूलतः उसका विकास जमीन के साथ जो-जो हो रहा है, उसी के साथ चलता है। छलांग लगाकर कलाहीन और नहीं पहुँच सकता... जैसा की वैचारिक स्तर पर अक्सर संभव होता है।"[5] व्यक्ति, परिवार से एवं परिवार, समाज से कटता जाता है और एक नए समाज में अपने को सामंजस्य बैठने की कोशिश में लग जाता है, परन्तु इसका विखंडित स्वरूप परिवार में खलन पैदा करता है। यही कारण है कि प्रवासी जीवन जीने के दौरान व्यक्ति को जीवन के तमान कठिनाईयों से होकर गुजरना पड़ता है।

प्रवासी भाषिक प्रयुक्ति और संस्कृति

रंगभेद की दृष्टि से हो, भाषागत दृष्टि से ही क्यों न हो प्रवासियों को अनेकों समस्यायों झेलना पड़ा। प्रवासी हिन्दी

साहित्यकारों में अपनी रचनाओं के माध्यम से भाषा एवं संस्कृति को युग एवं काल के साथ अपनी लेखनी चलाई है। प्रवासियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे प्रवास में गये और गिरमिटिया बन, भले ही गुलाम बन गये परन्तु, मानसिक गुलाम नहीं बनें। उनकी जन्मभूमि भले भारत रहा हो परन्तु, उनकी कर्मभूमि प्रवासी देश ही विशेषकर रहा है।इस सन्दर्भ में प्रवासी साहित्यकार रामदेव धुरंधर लिखते है—

"भाषा की लड़ाई में
ऊँचा किया नाम अपना
अपने देश का
अपने पूर्वजों का
अपने अस्तित्व का।"[6]

प्रवासी मन इन्हीं रिक्त अनुभवों की दास्तान है, जो पाठकों को गहराई तक छू जाती है, क्योंकि प्रवासी भले ही प्रवास में जाकर बस गया हो पर उसका तन-मन सदैव अपनी धरती के प्रति समर्पित है और एक प्रवासी साहित्यकारों की भी यही स्थिति होती है।

प्रवासी मन की रचनात्मक अभिव्यक्ति

प्रवासियों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि एक और परिवार से दूर होने का गम उसे सता रहा होता है, वहीं दूसरी और अचानक छुट्टी मिलने की समस्या का डर लगा रहता है, जसके कारण अंदर-ही-अंदर वह प्रवासी व्यक्ति कुढ़ता रहता है और अपनी व्यथा किसी से नहीं कह पाता है। इला प्रसाद की कहानी 'वीजा' के माध्यम से एक ऐसे ही प्रवासी बेटे की विवशता एवं उसकी दयनीय स्थिति को उजागर किया है। जब प्रवास में रह रहा बेटा अपनी माँ के अंतिम दर्शनों से वंचित रह जाता है- "लाश से दुर्गन्ध उठने लगी थी, हमने माँ का संस्कार कर दिया, बाकी तो तुम आ ही रहे हो....शुभेंदु अपने कोने की सीट पर बैठा, आधे चेहरे को रुमाल से ढके, विमान की खिड़की की तरफ मुँह किए फुट-फुट कर रो रहा था।"[7] प्रवासी साहित्य के स्वरूप को साहित्यिक प्रवृतियों के आधार पर देख सकते हैं।

प्रवासी में अस्तित्व पहचान का संकट

उषा वर्मा की कहानी 'उसकी जमीन' में सोबिया जो कि इस उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र रहती है। वह अपने अस्तित्व के संकटों से जूझती रहती है तथा अपनी पहचान के विषय में अपने आप से प्रश्न करती है- "इन सोलह सालों में मेरा सब कुछ बदला ही नहीं, बल्कि वही मेरी फितरत बन गई। सोबिया खुद से पूछती है कि आखिर मेरी जमीन कहाँ है? मैं अपने पैर कहाँ टिकाऊ? कौन सा लेबल उस पर ठीक रहेगा? क्या होगी उसकी पहचान? उसके वजूद को उसकी शख्सियत ने बाँट दिया है, या किसी बड़े वृत्त से जोड़ दिया है? वह सोचने लगी, "मैंने खोया है या पाया है।"[8] प्रवासी के दौरान व्यक्ति को अनेक शारीरिक व मानसिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिनमें से अस्तित्व या पहचान का संकट भी प्रमुख है।

प्रवासियों की अकुलाहट

दिव्या माथुर कृत 'बचाव' कहानी में स्त्री जीवन की अकुलाहट उसे यौन शोषण को दर्शाया गया है। इनकी 'पंगा' नामक कहानी में भारतीय स्त्रियों के यौन जीवन से खिलवाड़ कर रहे गोरे सरदारों के जबर्दस्तीपन को दर्शाया गया है। स्त्री पात्रा पन्ना के संदर्भ में देखा जा सकता है- "पन्ना ने अपनी काली शॉल उतारकर सीट पर रख दी और माथे से बिंदी भी हटा ली। उसने सुना था कि अफ्रीकन और गोरे गुंडे आशियाँ, विशेषतः भारतीय महिलाओं को लूटना आसान समझते हैं।"[9] लेखिका ने अपनी इस कहानी में एक ओर जहाँ प्रवासी जीवन की विडम्बनाओं, उनके शोषण एवं सम्पूर्ण भारतीयों के संघर्ष पूर्ण जीवन

को चित्रित किया है। वहीं दूसरी ओर शोषण की शिकार भारतीय महिलाओं का चित्रण भी किया है।

प्रवासी द्वंद्वात्मक स्थिति

इसी प्रकार प्रवासी साहित्यकार सुषम वेदी की कहानी 'चिड़ियाँ और चील' एक प्रवासी लड़की की द्वन्द्वात्मक स्थिति को दर्शाती है। प्रवासी बच्चे आत्महत्या करते हैं उसके पीछे उनके माता-पिता का डॉक्टर या वकील बनने का दवाब है। वह कहती है- "इस देश में हर साल करीब दस हजार टीनएजर्स आत्महत्या के शिकार होते हैं, जिसकी वजह ड्रग, इनसिक्योरिटी, डिप्रेसन और अकेलेपन के साथ-साथ खासकर आवासियों के बीच, इसकी वजह किशोरी पर उनके माँ-बाप द्वारा बढ़ता दबाव है। आवासी माँ-बाप अपनी ख्वाईशों और अधूरे सपनों को अपनी औलाद द्वारा पूरा करवाने के लिए इन किशोरों को बदहवास घोड़ों की तरह चाबुक मार-मारकर चलवाए रखना चाहते हैं, जिसका परिणाम बहुत भीषण होता है।"[10] पाश्चात्य संस्कृति की चमक दमक, वहाँ का खुलापन, फैशन जीवन से भारतीय जन प्रभावित होते जा रहे हैं, इसमें कोई संदेह नहीं और जिसे हम नकार भी नहीं सकते।

स्वदेश प्रेम की भावना

गौतम सचदेव की कहानी 'झड़ता हुआ पत्ता' में प्रवासी पात्र दिलबाग सिंह का मानना है कि कोई भी प्रवासी भारतीय कभी स्थायी तौर पर वापिस भारत नहीं लौटना चाहता। दिलबाग कहता है- "वह ऐसे कई लोगों को जनता था, जो बड़े शौक से ब्रिटेन में बसा बसाया घर उखाड़ कर देश-प्रेम जताते हुए भारत गये थे, लेकिन वहन ज्यादा समय रह नहीं पाए थे। हर जगह कागजी कारवाही और दफतरशाही और जरा-जरा से काम कराने के लिए रिश्वत, गर्मियों में बिजली चली जाएगी, तो घंटो आने के कोई असार नहीं। हर तरफ़ा आपा-धापी और भीड़ ही भीड़ है। शहर न हुए, कूड़े के ढेर हुए हैं।"[11] पाश्चात्य परिवेश में रहने के आदि हो चुके व्यक्ति भारतीय परिवेश में स्वयं को असहज, महसूस करने लगता है।

परिवार एवं रिश्तों पर प्रभाव

तेजेंद्र शर्मा की कहानियाँ 'तुम क्यों मुस्कुराए', 'किराए का नरक' आदि में टूटते-बिखरते रिश्ते, अपनत्व की भावना का चित्रण है। 'देह की कीमत' कहानी में सबंध की स्थिति, प्रभाव को दर्शाया गया है। कहानी में पत्नी अपने पति से झगडती है, क्योंकि वह उसकी बेटी को दादा-दादी से मिलवाने पुरानी बस्ती में ले गया था। वह कहती है- "तुम मेरी बेटी को उस गंदे, सड़े, बीमार वातावरण में ले कैसे गये? वहाँ से पचास तरह के इन्फेक्सन कैच करके आई होगी। ...मैं भी वहीं से आया हूँ जानू! तुमने भी विवाह के बाद पहला चक्कर वहीं लगाया था। वह मेरी माँ है, बाऊजी है, मेरी बहर है। वो सब तुम्हारे भी कुछ लगते हैं।"[12]

अजनबीपन और संवेदनहीनता

मूल्यों की विसंगति ही अकेलापन है। जबकि अलगाव का मतलब है दूर हो जाना या अलग हो जाना। अमृतराय ने लिखा है- "यह अजनबीपन और संवेदनहीनता मूलतः एक ही चीज है। आदमी-आदमी के बीच संवाद नहीं है और न होने की संभावना। इसलिए सब के सब एक दूसरे के लिए अजनबी है।"[13]

उषा प्रियंवदा कृत 'नदी' उपन्यास गंगा के माध्यम से प्रवासी स्त्री की एकाकीपन, अकुलाहट भरी जिंदगी का ब्खान है जिसका पति विदेश में उसे अकेला छोड़ कर चला जाता है हमेशा-हमेशा के लिए, क्योंकि अपने बेटे की मृत्यु का दोषी उसे समझता है। साथ ही पति-पत्नी के जीवन में संदेह परिवार विखंडन की स्थिति पे जा पहुँचता है। पति डॉ. सिन्हा का कटु, "तुमसे शादी करने की गलती की मैंने, गोरे चेहरे को देख कर माता जी फिसल गई थीं, पर तुम्हारा रक्त ही दूषित है, तिम्हारे दो भाई ल्यूकीमिया से मरे-और मेरा भविष्य भी तुम्हारे जहर भरे रक्त की भेंट चढ़ गया। अब मुझे तुमसे लेना-देना

नहीं। जो चाहो करो, जहाँ चाहो जाओ।"[14] औद्योगिकीकरण के इस चकाचौंध ने व्यक्ति को अपनी ओर इस कदर आकर्षित कर रखा है कि दिनोंदिन वह काल के गाल में समाता चला जा रहा है।

प्रवासी समस्याओं का परिदृश्य

मॉरिशस के प्रमुख चर्चित साहित्यकार अभिमन्यु अनत ने अपने साहित्य में प्रवासी मन की पीड़ा, दशा स्त्रियों की गाथा का बखान भी इनके साहित्य में देखने को मिलता है। 'लाल पसीना' उपन्यास में रेमों साहब का बेटा, जब दाऊद से उसकी बीबी को उनके घर रात में आने को कहता है- "तुम अपनी औरत को मेरे पास भेजो...तुम्हें एक गोरा बच्चा मिलेगा।"[15] अभिमन्यु अनत ने अपनी लेखनी के माध्यम से प्रवासी हिन्दी साहित्य भंडार को संपन्न किया है।

प्रवास का मुख्य कारण

प्रवास जाने के पीछे आर्थिक विपन्नता सबसे प्रमुख कारणों में से एक है, जिसके चलते व्यक्ति अच्छी जीविकोपार्जन का सपना लेते हुए प्रवास में चला तो जाता है परन्तु, उस समाज के साथ फिट बैठ पाना उतना ही कठिन हो जाता है। इस सन्दर्भ में कमल किशोर गोयनका ने लिखा है- "बुजुर्गो ने संघर्ष और यातनाओं की चरम सीमा तक झेला है। नये शासन से अंत में आशाएं बंधी थी कि वे बेहतर दिन देख पाएंगे, लेकिन जब उन्हें लगता है कि ये लोग अपने मुखौटों के भीतर वे ही लोग हैं, जो हटाये गये थे, तो ऐसे में उनका दुःखी होना स्वाभाविक हो जाता है।"[16] तात्पर्य यह है कि भारतवंशियों को प्रवास में जाते समय बहला-फुसला कर ले जाने वाले लोग भारतीय ही थे, जिन्हें बिचौलिया कहा जाता है, जो कि मूल भारतवंशी थे।

निष्कर्ष रूप से हम देखते हैं कि प्रवासी साहित्य, प्रवासी जीवन की समस्त समस्याओं जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक हो या सांस्कृतिक पहलुओं साहित्यिक एवं सृजनात्मक प्रवृतियों के आधार पर चित्रित करता है। प्रवासी साहित्य के अंतर्गत बदली हुई सामाजिक रूढ़ियों की जटिलता, लाचारी तथा मुक्ति की कामनाओं का संकेत मिलता है।

संदर्भ सूची

1. रामचन्द्र वर्मा सं, मानक हिन्दी कोश, तीसरा खंड, प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मलेन, 1964, पृष्ठ-636
2. श्यामसुन्दरदास सं, हिन्दी शब्द सागर, चौथा खंड, प्रयाग, काशी नगरी प्रचारणी सभा, 1929. पृष्ठ. 129.
3. पुष्पिता अवस्थी, सूरीनाम का सृजनात्मक साहित्य, नयी दिल्ली, साहित्य अकादमी,
4- https://www.kavitakosh.com
5. श्री गोविन्द मिश्र, साहित्य का सन्दर्भ, वाराणसी : नगरी प्रचारणी सभा. 1960.पृष्ठ.100
6. कमल किशोर गोयनका, अभिमयु अनत रूएक बातचीत, पृष्ठ.14
7. इला प्रसाद, तुम इतना क्यों रोई रुलाई, कहानी, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृष्ठ.18
8. उषा वर्मा, उसकी जमीन, नई दिल्ली, विद्या विहार, 2007. पृष्ठ-135
9. दिव्या माथुर, पंगा और अन्य कहानियाँ, नई दिल्ली, मेघा बुक्स, 2009. पृष्ठ-76.
10. सुषम वेदी, चिड़ियाँ और चील, कहानी, अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली, 1978. पृष्ठ.41
11. गौतम सचदेव, झड़ता हुआ पत्ता, कहानी, पृष्ठ-187
12. तेजेंद्र शर्मा, देह की कीमत, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. 2007. पृष्ठ-9
13. गीता सोलंकी, नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, पृष्ठ-116
14. उषा प्रियंवदा, नदी उपन्यास, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 2014. उपन्यास, पृष्ठ.21
15. अभिमन्यु अनत, लाल पसीना, उपन्यास, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 1977. पृष्ठ.164
16. कमल किशोर गोयनका, अभिमन्यु अनत एक बातचीत, नई दिल्ली : स्वराज प्रकाशन. सं. 2019.पृष्ठ-14-15

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

स्त्री-विमर्श : बदलता स्वरूप, बढ़ते सोपान

राजु पासवान
शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

साहित्य के मूल में स्त्री है, स्त्री का सौंदर्य है, स्त्री का चरित्र है, स्त्री का प्रेम है, स्त्री का विरह है, स्त्री की ममता है, स्त्री की ईर्ष्या है। अगर कहा जाये कि स्त्री ही साहित्य की जननी है तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। आदिग्रन्थ कह जाने वाले वेदों में भी जिस प्रकृति का वर्णन और गुणगान है, वह भी स्त्री ही है।

किसी भी कथा-साहित्य के केन्द्र में स्त्री का रहना सुखद और सहज लगता है। उपन्यास और कहानी से अगर स्त्री गायब हो जाये तो सारा कथारस ही समाप्त हो जायेगा।

समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य में स्त्री की उपस्थिति मुखर और प्रखर होती जा रही है। समकालीन विमर्शों ने समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। अतः डॉ० तारकेश्वर उपाध्याय भी इन विमर्शों से नहीं बच सके हैं और सही कहा जाय तो बचना भी नहीं चाहिए। समकालीन अस्मिता विमर्शों से अपनी रचनाओं को बचा ले जाना एक भयंकर भूल है जो डॉ० तारकेश्वर उपाध्याय जैसे सजग और सतर्क कथाकार कभी नहीं कर सकते।

डॉ० तारकेश्वर उपाध्याय की रचनाओं में स्त्री-विमर्श के विविध आयामों की तलाश करने से पहले आवश्यक है कि हम ये जान लें कि आखिर ये विमर्श है क्या? स्त्री-विमर्श पर चिंतन करते हुए डॉ० रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं :-

विमर्श का अर्थ है जीवन्त बहस। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देख कर विभन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट-पुलट कर देखना, उसे समग्रता में समझने की कोशिश करना और मानवीय सन्दर्भों में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना। उल्लेखनीय है कि इस प्रक्रिया में निष्कर्ष अन्तिम निर्णय की तरह थोपे नहीं जाते, वरन् उन्हें समय के साथ मुठभेड़ कर नया स्वरूप ग्रहण करने की स्वतंत्रता दी जाती है। हिन्दी में विमर्श शब्द अंग्रेजी के (A Long and Seriouse Treatment or Discussion of Subject is Speech or Writing) इस प्रकार स्त्री विमर्श का अर्थ है स्त्री को केन्द्र में रखकर समाज, संस्कृति, परम्पराएँ एवं इतिहास का पुनरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की अनवरत् प्रक्रिया। स्पष्ट है कि स्त्री-विमर्श के अन्तर्गत अतीत या समकालीनता प्रमुख नहीं रहती, वरन् भूत, वर्त्तमान एवं भविष्य तीनों कालखंडों पर एक-दूसरे पर अन्विति एवं संगति में विश्लेषण करने का भाव प्रधान रहता है। स्त्री-विमर्श स्त्री चेतना के प्रसार का आख्यान है। चेतना मूलतः मूल्यपरक इकाई है, जो स्वभावतः परिवेशगत दवाबों से उत्पन्न होती है और अनिवार्यतः परिवेश का विखंडन करती है। अतः स्त्री-विमर्श परम्परा और व्यवस्था के विखंडन का शास्त्र है।[1]

स्त्री-विमर्श समय के साथ हो रहे बदलावों के बीच स्त्री की विविध संघर्षमयी छवि को रेखांकित करने का प्रयास करता है। प्रख्यात आलोचक रोहिणी अग्रवाल, लिखती हैं :-

स्त्री-विमर्श चिन्तन की इस रूग्न रूढ़ परिपाटी का विरोध करता है। वस्तुतः यह आधुनिक युग की उदारवादी

सकारात्मक दृष्टि का प्रतिफलन है। इसे समझने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर घटने वाली चार प्रमुख घटनाओ को रेखांकित करना बेहद जरूरी है। एक, 1789 की फ्रांसीसी जिसने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसी चिरवांछित मानवीय आकांक्षाओं को नैसर्गिक मानवीय अधिकार की गरिमा देकर राजतंत्र और साम्राज्यवाद के बरअक्स लोकतांत्रिक शासन के स्वास्थ्य और अभीप्सित विकल्प को प्रतिष्ठित किया।[2]

प्रमुख विचारक स्तंभकार और संपादक राजकिशोर स्त्री-अस्मिता के प्रश्न को आज का जरूरी प्रश्न मानते हैं और आज की स्त्री की छवि को स्पष्ट करते हुए लिखते हैंः-

जमाने की हवा सीता और पार्वती के खिलाफ तथा राधा के पक्ष में है। आज के जमाने में कौन स्त्री सीता और पार्वती की तरह अपने व्यक्तित्व का विलोप कर देना पसंद करेगी? और उसे ऐसा करना भी क्यों चाहिए? लेकिन क्या सीता और पार्वती की कथा का मर्म इतना ही है? आत्म-विस्तार जितना महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण है आत्म-संकोच। शायद दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कभी-कभी प्रेम में अपने को मिटा देना भी अपनी सर्वोच्च अभिव्यक्ति बन जाता है। सिर्फ अपने को केन्द्र में रखकर सभ्यता का सृजन नहीं होता। राधा और कृष्ण के प्रेम में उद्दामता है, लेकिन पूर्णता की कमी है। इस सम्बन्ध में प्रेम की क्रीड़ा ही मुख्य है- जीवन की दूसरी चुनौतियों के बीच प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं। यह भी कह सकते हैं कि राधा का प्रेम जीवन से कटा हुआ है, जबकि सीता और पार्वती को बार-बार प्रेम की अग्नि-परीक्षा देनी पड़ती है। यहाँ निष्ठा, त्याग और निस्पृहता जीवन को सहनीय और सुंदर बनाते हैं। राधा महान प्रेमिका थी, पर हमारे सामने उसका किशोरी-बिंब ही कीलबद्ध हो गया है। उसे एक परिपक्व युवती के रूप में हम नहीं देख पाते, जबकि स्त्री-पुरूष के बीच प्रेम के ही नहीं, कर्तव्य के रिश्ते भी होते हैं और इसीलिए प्रेम का फूल गार्हस्थ में ही सबे सुंदर ढंग से खिलता है। यह अकारण नहीं है कि इन तीनों में राधा ही मातृत्व के आनंद से वंचित रही। गार्हस्थ रस या जीवन साहचर्य की छटा रोमांटिक प्रेम के चन्द्रमा से कम उज्ज्वल या लालित्यपूर्ण नहीं है। यह खेद की बात है कि साहित्य में प्रेमी-प्रेमिका को पति-पत्नी की तुलना में बहुत ज्यादा स्थान दिया गया है। यह पुरूष चित्त की रसिकता नहीं, उसका छिछोरापन है। सीता को अंततः राम का साथ छोड़कर धरती के गोद में समाना पड़ता है, पार्वती अपने सर्वहारा पति के साथ जीवन बिताती है, लेकिन अपने प्रेम की उत्कृटता में दोनों में से कोई भी राधा से उन्नीस नहीं है। इसलिए इनमें से हर एक के पास हमारे लिए कुछ-न-कुछ संदेह जरूर है सीता की मर्यादाप्रियता, राधाा का लास्य और पार्वती की निस्पृहता। कोई भी पूर्ण स्त्री शायद कई स्त्रियों को मिलाकर बनती है। अतः हमें किसी भी एक स्त्री से पूर्णता की मांग नहीं करनी चाहिए। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि किसी स्त्री को पूर्णता हासिल करने का प्रयास ही न हीं करना चाहिए।[3]

स्त्री-विमर्श और नारीवाद पर विचार करते हुए प्रख्यात स्त्रीवादी लेखिका मृणाल पाण्डेय अपनी पुस्तक 'परिधि पर स्त्री' में लिखती हैं :-

इसमें कोई शक नहीं कि वैसे हमारे इस समय में तमाम और जटिल मानवीय मुद्दों की ही तरह नारीवाद का सवाल भी काफी उलझा हुआ है। यह भी सच है कि कभी कुछ मायनों में (जैसे सौन्दर्य प्रतियोगिताओं के आयोजकों के आत्म विज्ञापनों में) नारीवाद की स्थापनाएँ मूल कथ्य से विच्छिन्न करके निजी स्वार्थ को पोसने के लिए धड़ाधड़ इस्तेमाल की जा रही हैं और जब ऐसा होता है तो नारीवाद हमें देश के वृहत्तर समाज की आत्मकेन्द्रित भोगवादी मान्यताओं का आईना सरीखा दीखने लगता है।[4]

डॉ० सुधा बालकृष्णन अपनी पुस्तक नारी अस्तित्व की पहचान में स्त्री की गुलामी पर विचार करती हैं :-

शताब्दियों से गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई भारतीय नारी को स्वतंत्र बनाकर उसे मानवीय अधिकारों से विभूषित करना, अपने में एक महान साधना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षो बाद भी हमें इस कार्य में निर्णायक सफलता नहीं मिल पायी हैं अधिकारों से वंचित, शोषित एवं पीड़ित नारी को अन्तरात्मा की चीत्कार को क्षितिज के आर-पार मुखरित कराने का काम सिर्फ नारी ही कर सकती है, क्योंकि स्त्री की धड़कन, उसके अवचेतन की मूकता और संघ-आक्रोध को पीड़ा, केवल नारी ही आँक सकती है। इस कारण भारतीय नारी के स्वर, सपने और आकांक्षाओं को अनुभूतिबद्ध करने में जितनी सफलता

लेखिकाओं को हासिल हुई है, उसका मूल्यांकन करना भी कम महत्व की बात नहीं है।[5]

इक्कीसवीं सदी में आकर स्त्री-विमर्श अपने नये रास्ते तलाशता है :-

इक्कीसवीं सदी की नयी अर्थव्यवस्था ने स्त्री और समाज के नये सम्बन्धों के समीकरण को बहुत अधिक प्रभावित किया है जिसका ठोस प्रमाण अब खुलकर सामने आ रहा है। नयी अर्थव्यवस्था ने स्त्री के सामने रोजगार में नये-नये रास्ते खोले हैं। फिल्म, मॉडलिंग, टी०वी० सीरियल, विज्ञापन, पॉप संगीत आदि क्षेत्रों में इसने अपनी छवि बना ली है। यह सब उसके लिए एक Stepping Stone ही है। स्त्री की इस बदलती छवि का फायदा उठाते हुए हम सोचने को मजबूर हो जाते हैं। इस नयी अर्थव्यवस्था में भारतीय स्त्री का प्रमाण किस ओर है। नयी अर्थव्यवस्था के गर्भ से निकली स्त्री मध्यवर्गीय संस्कारों से मुक्त है। पति के लिए वह प्रजननकारी कोख नहीं बनना चाहती है। सम्बन्धों को वह बड़ी आसानी से तोड़-मरोड़ सकती है। सम्बन्धों की केमिस्ट्री में कहीं कुछ गड़बड़ हो जाती है तो वह समझौते के लिए तैयार नहीं होती बल्कि एक खूबसूरत मोड़ देकर उसे छोड़ देना बेहतर समझती है। सीता भाव या सावित्री भाव पुराणों के जीर्ण पन्नों में रखा गया है। नयी अर्थव्यवस्था और उपभोक्तावादी विचारवाद ने भारतीय स्त्री की परम्परागत पवित्रता को रूढ़ जीर्ण कहकर नकार दिया है। परिणामस्वरूप आज के नये युग की स्त्री बहुत बदल गयी है। स्त्री के परिवर्तित नये स्वरूप को देखकर पुरूष भी हतप्रभ है। आज हर चर्चा के मूल में स्त्री की सत्ता है चाहे वह चकला चलाने का किस्सा हो या फिर लोगों को लूटने का कोई अर्थ तंत्र हो। ऐसा लगता है कि परम्परा के सामन्तीय उपमानों की कैद से निकलकर वह स्वतंत्र हो रही है। यह नयी स्त्री मीडिया के तमाम स्तरों की बनाई जा रही है। दैनिक पत्रों, सामाजिक मासिकों, रेडियों, टी०टी० वीडियो, सिनेमा के पर्दे पर, होर्डिगों में वह बरसों बनती आयी है और अब भी बन रही है। वह स्त्री पद्मिनी, शंखनी, हंसिनी, चित्रणी, नायिकाओं से एकदम अलग नयी स्त्री है। वह विज्ञापनों में विक्रेता स्त्री, सीरियलों और निजी जिन्दगी में पति को आयी हेट यू कहती हुई स्वतंत्र स्त्री है। वह माफिया डॉन है। भाड़े पर लड़ने वाली है। वह बड़ी कम्पनी की मालकिन है। मर्दों को छकाने वाली है। दुर्धर्ष है, रोने वाली नहीं है। शान्ति बनकर वह रोजाना खुलेआम अपनी माँ पर बलात्कार करने वाले पर मुकदमा चलाती है।[6]

स्त्री-अधिकार को रेखांकित करने वाली प्रख्यात न्यायिक और स्त्री-विमर्शकार अरविन्द जैन लिखते हैं :-

स्त्रियों को कहना है उन्हें बचपन से कानून बताया-पढ़ाया जा रहा है कि विवाह संस्था के अन्दर पैदा हुए बच्चे जायज और विवाह संस्था के बाहर पैदा हुए बच्चे नाजायज हैं। वैध संतान का प्राकृतिक संरक्षक पिता और अवैध संतान की संरक्षक माँ। यानी वैध संतान पुरूष की और अवैध स्त्री की। उत्तराधिकारी के लिए वैध संतान और वैध संतान के लिए वैध विवाह (पवित्र संस्कार) होना अनिवार्य। अवैध बच्चे पिता की सम्पत्ति के कानून वारिस नहीं हो सकते। हाँ, माँ की सम्पत्ति (अगर हो तो) में बराबर के हकदार होंगे। मतलब यह कि जो वैध और कानूनी है, वो पुरूष का और जो अवैध या गैर कानूनी है, वो स्त्री का। वैध संतान की सुनिश्चितता के लिए ही तो यौन-शुचिता, सतीत्व, नैतिकता और मर्यादा गढ़ी गई थी/है और इसीलिए स्त्री देह पर पूर्ण स्वामित्व तथा नियंत्रण बनाए रखना, पुरूष का परम धर्म है ना! पुरूषों की यौन कामनाओं के लिए कानून के तमाम 'चोर दरवाजे' और उनके अवैध बच्चों के अधिकार की रक्षा के लिए, न्याय मन्दिरों के दरवाजे हमेशा खुले रहे हैं।। वाह! क्या बँटवारा किया था/है, स्त्री-पुरूष के बीच कानूनी अधिकारों का।[7]

स्त्री-विमर्श के अंतर्गत ही भ्रूण-हत्या पर विचार करते हुए अरविन्द जैन लिखते हैं :-

आधी-आबादी मानती है कि भ्रूण-हत्या से लेकर सती तक बुने बनाए गए 'कानून जाल-जंजाल', स्त्री हितों की रक्षा-सुरक्षा कम आतंकित अधिक कर रहे हैं। बहुएँ दहेज की बलीवेदी पर और बेटियाँ तेजाब हमलों या गैंगरेप के दुष्चक्र में मारी जाती रही है। औरत अपने ही घरों में असुरक्षित रही हैं। 'अपना घर' बेटियों के यौनशोषण-उत्पीड़न का अड्डा बन गया था। 'आशाकिरण' में अँधेरे पसरे रहे और अधिकांश अपराधी (अग्रिम) जमानत पर छुट्टे घूमते रहे। सर्वोच्च न्यायालय से सजा के बावजूद 'निर्भया' के हत्यारों को सात साल तक फाँसी नहीं हो पाई। यौन हिंसा के 'आँकड़ों' निरन्तर बढ़ते जा रह हैं। न्याय या कानून-व्यवस्था से आम औरतों (आदमियों) का भरोसा उठता जा रहा है। सम्भव है एक दिन, कागजी कानून

की विशाल इमारतें अपने ही भार तले दब जाएँ, बशर्ते की समय रहते इन जर्जर संस्थाओं की ठीक से 'मरम्मत' नहीं हुई।[8]

यौन-हिंसा के ऊपर विचार-विमर्श करते हुए 'बेड़िया तोड़ती स्त्री' में अरविन्द जैन आगे लिखती हैं :-

(यौन) हिंसा या 'एसिड अटैक' की अधिकार स्त्री की 'प्रेतात्मा' सड़क से संसद तक मँडरा रही है और तब तक मँडराती रहेगी, जब तक 'इन्साफ' नहीं मिलता। 'प्रेतात्मा' के भय, दवाब और तनाव में रातोरात आयोग बने, अध्यादेश जारी हुए। कानून में संशोधन और आँसू पोंछने का हर सम्भव प्रयास किया गया। मगर इन्साफ की तलाश में भटकती 'प्रेतात्मा' के पीछे-पीछे, लाखों 'जिन्दा लाशें' भी इस आशा और उम्मीद में घूम-घुमा रही है कि उनके साथ भी 'न्याय' होगा/होना चाहिए। देश के कोने-कोने से लेकर, भगवान दास रोड तक चीखती-चिल्लाती पीड़ा, चक्कर काटती रही है और उसकी पीठ पर चिपका कैलेंडर बदलता रहा है। साल-दर-साल। जैसे आधी-आबादी के लिए न्यायालय, प्रतीक्षालय में बदल गया हो। सदियाँ बीतीं, पर हालत नहीं। कहना कठिन है कि सिर्फ कानून बदलने से समाज और आधी-दुनिया के हालात बदल जाते हैं।[9]

इस प्रकार हम देखते है कि स्त्री विमर्श ने समय के साथ अपना स्वरूप भी बदला है और कई-कई सोपान भी तय कर लिये है।

सन्दर्भ सूची

1. साहित्य की जमीन और स्त्री-मन के उच्छवास, रोहिणी अग्रवाल, पृ० 11, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र०सं० 2014.
2. उपरिवत, पृ० 12,
3. स्त्रीत्व का उत्सव, राजकिशोर, पृ० 24, 25 वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं० 2018.
4. परिधि पर स्त्री, मृणाल पाण्डे, पृ० 7, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं० 2017.
5. नारी अस्तित्व की पहचान, डॉ० सुधा बालकृष्णन, पृ० 9, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली सं० 2019.
6. उपरिवत, पृ० 33, 34
7. बेड़ियां तोड़ती स्त्री, अरविन्द जैन, पृ० 10, राजकमल पेपरबैक, नयी दिल्ली, प्र०सं० 2022
8. उपरिवत, पृ० 10.
9. उपरिवत, पृ० 11

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

कन्या भ्रूण हत्या एवं विधिक विश्लेषण

हेमलता तायवाडे
शोधार्थी असिस्टेंट प्रोफेसर,
आर.के.डी.एफ कॉलेज भोपाल)

डॉ. सीमा राजपूत
शोध निर्देशक, विधि विभाग
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र)

1. प्रस्तावना- कन्या भ्रूण हत्या, जिसे भारतीय समाज में 'बेटी हत्या' के रूप में भी जाना जाता है, एक गंभीर सामाजिक समस्या है जो भारत में विभिन्न क्षेत्रों में उपस्थित है। यह अपराध उस समय होता है जब किसी गर्भ में एक लड़की का जन्म होने से पहले ही उसकी हत्या कि जाती है। यह अपराध भारत में लिंगात्मक असमानता, परंपरागत विचारधारा, और आर्थिक प्रतिबंधों के कारण होता है।

कन्या भ्रूण हत्या के कुछ मुख्य कारण शामिल हैं :

जनसंख्या नियंत्रण, परिवार में लड़कों के प्राथमिकता की मान्यता, वंशानुगत दायित्व, और सामाजिक रूप से अपेक्षित विभाग।

विधिक विश्लेषण में, भारतीय कानून ने कन्या भ्रूण हत्या को गंभीर अपराध के रूप में माना है। प्रसूति निरोधक कानून, 1994 और प्रसूति निरोधक (संशोधन) अधिनियम, 2002 के तहत, गर्भावस्था के दौरान किसी भी योजनित गर्भ का नष्ट करने की नीति को प्रतिबंधित किया गया है। उपराष्ट्रीय और राज्य स्तर पर कई संशोधनों ने इस अपराध के खिलाफ कठोर कार्रवाई का प्रावधान किया है।

सामाजिक संक्रांति के लिए, शिक्षा, सशक्तिकरण, और सामाजिक चेतना को बढ़ावा देना आवश्यक है। लड़कियों को समाज में समानता और सम्मान के साथ जीने का अधिकार होना चाहिए।

वहाँ भी आवश्यकता है कि लोग उन्हें स्वतंत्रता का अधिकार दें और सामाजिक मान्यताओं के खिलाफ खड़ा हों।

2. कन्या भ्रूण हत्या के कारण

कन्या भ्रूण हत्या के कई कारण हो सकते हैं, जो विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक प्रतिबंधों से संबंधित होते हैं। यहाँ कुछ प्रमुख कारण हैं :

1. लड़कों की प्राथमिकता का महत्वाकांक्षा : कुछ समाजों में लड़कों को लाभकारी माना जाता है और लड़कियों को आर्थिक बोझ।

2. आर्थिक प्रतिबंध : लड़कियों की शिक्षा और पालन-पोषण के लिए आर्थिक प्रतिबंध एक महत्वपूर्ण कारक हो सकता है।

3. परंपरागत धार्मिक और सांस्कृतिक धारणाएं : कुछ समाजों में लड़के को वंश का विरासती उत्तराधिकारी माना जाता है।

4. जनसंख्या नियंत्रण : लोग गर्भावस्था के दौरान लड़के की प्राथमिकता को ध्यान में रखते हैं और इसलिए लड़की के जन्म का विरोध करते हैं।

5. परिवार का आर्थिक दबाव : कई बार परिवारों को लड़कियों के जन्म का आर्थिक दबाव महसूस होता है।

6. जीनेटिक बोझ : कुछ समय लोग लड़कियों को जीनेटिक रोगों या विकारों के जन्म का खतरा महसूस करते हैं।

7. शादी के खर्चों का डर : लड़कियों के विवाह के खर्चों के डर से कुछ लोग उनके जन्म का विरोध करते हैं।

8. लड़कियों की शादी के लिए दारी : कुछ समाजों में लड़कियों की शादी के लिए दारी देना पद-परम्परा है, जिसके लिए आर्थिक प्रतिबंधों का भार पड़ता है।

9. असंतोष या आत्मघात : कुछ माताएं समाज में अपने बच्चों के लिए आत्महत्या करने का अनुभव करती हैं, जिससे कन्या भ्रूण हत्या का परिणाम हो सकता है।

10. स्वास्थ्य और अन्य कारण : कछ लोग शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक समस्याएं, या अन्य निर्धारित कारणों के कारण भी कन्या भ्रूण हत्या जय कर सकते हैं। करने का अनुभव करती हैं, जो कन्या भ्रूण हत्या के रूप में परिणामित हो सकता है।

3. कन्या भ्रूण हत्या के प्रभाव

कन्या भ्रूण हत्या एक समाजिक, मानसिक, और आर्थिक समस्या है जो समाज को स्थायी रूप से प्रभावित करती है। इसके प्रभाव कई स्तरों पर दिखाई देते हैं, जिनमें समाज, परिवार, और व्यक्तिगत स्तर शामिल हैं।

कन्या भ्रूण हत्या का प्रथम प्रभाव समाज में लिंगात्मक असमानता और व्यावसायिक विकास पर होता है। जब परिवार लड़के को लाभकारी मानता है और लड़कियों को आर्थिक बोझ, तो ऐसी प्रथा समाज के स्तर पर व्यावसायिक विकास को रोकती है। लड़कियों की शिक्षा और स्थानीय समुदायों में उनकी सक्रिय भागीदारी की कमी समाज की सामाजिक और आर्थिक प्रगति को धीमा करती है।

दूसरे प्रभाव के रूप में, कन्या भ्रूण हत्या परिवार के अंतरंग संबंधों को दुखद रूप से प्रभावित करती है। जब लड़कियों को उनके जन्म से पहले ही हत्या किया जाता है, तो इससे परिवार के लोगों के बीच भय, दुःख, और विश्वासघात होता है। इसके अलावा, ऐसे परिवारों में बेटी के अभाव में आत्महत्या और जटिल सामाजिक समस्याएं भी बढ़ सकती हैं।

तीसरा प्रभाव व्यक्तिगत स्तर पर होता है, जहाँ कन्या भ्रूण हत्या विकृत मानसिकता, आत्महत्या, और आत्मविश्वास के कमी का कारण बन सकती है। इससे उन लोगों का जीवन प्रभावित होता है जिन्हें बेटियों के जन्म से पहले ही उनकी अस्तित्व को खतरा महसूस होता है।

कन्या भ्रूण हत्या का आर्थिक प्रभाव भी होता है, जैसे कि जनसंख्या की असंतुलन, परिवार के आर्थिक संकट, और महिलाओं की आर्थिक स्वाधीनता के नुकसान। इसके अलावा, कन्या भ्रूण हत्या से वंशानुगत समस्याएं भी उत्पन्न हो सकती हैं, जैसे कि परिवार के उत्तराधिकारी के अभाव में गंवार गर्भाधान के कारण।

इस प्रकार, कन्या भ्रूण हत्या एक समाज, परिवार, और व्यक्तिगत स्तर पर गहरा प्रभाव डालती है, जिससे समाज की उन्नति और समृद्धि में बाधाएं आती हैं।

4. कन्या भ्रूण हत्या के अपराधों से जुड़े विधिक प्रावधान

4. जनसंख्या नियंत्रण : लोग गर्भावस्था के दौरान लड़के की प्राथमिकता को ध्यान में रखते हैं और इसलिए लड़की के जन्म का विरोध करते हैं।

5. परिवार का आर्थिक दबाव : कई बार परिवारों को लड़कियों के जन्म का आर्थिक दबाव महसूस होता है।

6. जीनेटिक बोझ : कुछ समय लोग लड़कियों को जीनेटिक रोगों या विकारों के जन्म का खतरा महसूस करते हैं।

7. शादी के खर्चों का डर : लड़कियों के विवाह के खर्चों के डर से कुछ लोग उनके जन्म का विरोध करते हैं।

8. लड़कियों की शादी के लिए दारी : कुछ समाजों में लड़कियों की शादी के लिए दारी देना पद-परम्परा है,

जिसके लिए आर्थिक प्रतिबंधों का भार पड़ता है।

9. असंतोष या आत्मघाता : कुछ माताएं समाज में अपने बच्चों के लिए आत्महत्या करने का अनुभव करती हैं, जिससे कन्या भ्रूण हत्या का परिणाम हो सकता है।

10. स्वास्थ्य और अन्य कारण : कछ लोग शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक समस्याएं, या अन्य निर्धारित कारणों के कारण भी कन्या भ्रूण हत्या जय कर सकते हैं। करने का अनुभव करती हैं, जो कन्या भ्रूण हत्या के रूप में परिणामित हो सकता है।

5. कन्या भ्रूण हत्या के प्रभाव

कन्या भ्रूण हत्या एक समाजिक, मानसिक, और आर्थिक समस्या है जो समाज को स्थायी रूप से प्रभावित करती है। इसके प्रभाव कई स्तरों पर दिखाई देते हैं, जिनमें समाज, परिवार, और व्यक्तिगत स्तर शामिल हैं।

कन्या भ्रूण हत्या का प्रथम प्रभाव समाज में लिंगात्मक असमानता और व्यावसायिक विकास पर होता है। जब परिवार लड़के को लाभकारी मानता है और लड़कियों को आर्थिक बोझ, तो ऐसी प्रथा समाज के स्तर पर व्यावसायिक विकास को रोकती है। लड़कियों की शिक्षा और स्थानीय समुदायों में उनकी सक्रिय भागीदारी की कमी समाज की सामाजिक और आर्थिक प्रगति को धीमा करती है।

दूसरे प्रभाव के रूप में, कन्या भ्रूण हत्या परिवार के अंतरंग संबंधों को दुखद रूप से प्रभावित करती है। जब लड़कियों को उनके जन्म से पहले ही हत्या किया जाता है, तो इससे परिवार के लोगों के बीच भय, दुःख, और विश्वासघात होता है। इसके अलावा, ऐसे परिवारों में बेटी के अभाव में आत्महत्या और जटिल सामाजिक समस्याएं भी बढ़ सकती हैं।

तीसरा प्रभाव व्यक्तिगत स्तर पर होता है, जहाँ कन्या भ्रूण हत्या विकृत मानसिकता, आत्महत्या, और आत्मविश्वास के कमी का कारण बन सकती है। इससे उन लोगों का जीवन प्रभावित होता है जिन्हें बेटियों के जन्म से पहले ही उनकी अस्तित्व को खतरा महसूस होता है।

कन्या भ्रूण हत्या का आर्थिक प्रभाव भी होता है, जैसे कि जनसंख्या की असंतुलन, परिवार के आर्थिक संकट, और महिलाओं की आर्थिक स्वाधीनता के नुकसान। इसके अलावा, कन्या भ्रूण हत्या से वंशानुगत समस्याएं भी उत्पन्न हो सकती हैं, जैसे कि परिवार के उत्तराधिकारी के अभाव में गंवार गर्भाधान के कारण।

इस प्रकार, कन्या भ्रूण हत्या एक समाज, परिवार, और व्यक्तिगत स्तर पर गहरा प्रभाव डालती है, जिससे समाज की उन्नति और समृद्धि में बाधाएं आती हैं।

6. कन्या भ्रूण हत्या के अपराधों से जुड़े विधिक प्रावधान

कन्या भ्रूण हत्या एक गंभीर अपराध है और भारतीय कानून इसे गैर-कानूनी और दंडनीय ठहराता है। इसे कानूनी दृष्टिकोण से दो विभागों में विचारा जा सकता है.

1. गर्भावस्था निरोधक कानूनों के उल्लंघन : भारत में, कन्या भ्रूण हत्या को गर्भावस्था निरोधक कानूनों के उल्लंघन के रूप में देखा जाता है। गर्भावस्था निरोधक कानून, 1994 और प्रसूति निरोधक (संशोधन) अधिनियम, 2002 के तहत, गर्भावस्था के दौरान किसी भी योजनित गर्भ का नष्ट करने की नीति को प्रतिबंधित किया गया है। यहाँ जब भी लड़की के जन्म के पहले ही उसका हत्या किया जाता है, तो इसे गर्भावस्था निरोधक कानूनों के उल्लंघन के रूप में माना जाता है।

2. भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध : कन्या भ्रूण हत्या को भारतीय दंड संहिता के कई विभिन्न धाराओं के तहत एक अपराध के रूप में देखा जाता है। उनमें सबसे प्रमुख हैं धारा 312 (गर्भावस्था के दौरान गर्भ के नष्ट करने का प्रयास), धारा 315 (गर्भावस्था के दौरान गर्भ के नष्ट करने की कोशिश करना), और धारा 316 (गर्भावस्था के दौरान गर्भ के नष्ट करना)। इन धाराओं के तहत, कन्या भ्रूण हत्या करने या इसकी कोशिश करने पर दंड और जुर्माने का प्रावधान है।

यहाँ उल्लिखित धाराएं केवल कुछ उदाहरण हैं और कन्या भ्रूण हत्या से जुड़े अपराधों का विधिक प्रावधान समृद्ध है, जिसमें कई अन्य धाराएं भी शामिल हैं।

7. पी सी और पी एन डी टी एक्ट की प्रमुख विशेषता

पीसी और पीएनडीटी एक्ट दो प्रमुख अपराध निवारण कानून हैं जो भारतीय नागरिकों को सुरक्षित और अधिक आत्मनिर्भर बनाने के लिए बनाए गए हैं। ये दोनों कानून विभिन्न गरीब और निराधारित वर्गों को समर्थित करते हैं, उन्हें अपराधों के शिकार नहीं बनने देते हैं, और उन्हें संबलित बनाने के लिए संबंधित संसाधनों और उपायों का प्रावधान करते हैं।

पीसी एक्ट (Prevention of Corruption Act)

प्रमुख विशेषताएँ :

1. भ्रष्टाचार के खिलाफ सख्त कार्रवाई : पीसी एक्ट भ्रष्टाचार के खिलाफ सख्त कार्रवाई के लिए बनाया गया है। इसमें भ्रष्टाचार के लिए दंडित अधिकारियों और लोगों के खिलाफ सख्त कानूनी कार्रवाई का प्रावधान है।

2. शिकायत और प्रोसेस ऑफ लॉजिंग : पीसी एक्ट के तहत किसी भी व्यक्ति या संगठन द्वारा भ्रष्टाचार के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई जा सकती है। इसके लिए एक विशेष प्रक्रिया है, जिसमें संबंधित अधिकारियों को इस शिकायत की जाँच और कार्रवाई करने का आदेश दिया जाता है।

3. जुर्माने और सजा : पीसी एक्ट में भ्रष्टाचार के लिए जुर्माने और सजा का प्रावधान है। यह अपराध के प्रकार और गंभीरता के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

4. गवर्नमेंट ऑफिसियल्स के लिए खास प्रावधान : पीसी एक्ट का प्रमुख लक्ष्य सरकारी अधिकारियों की भ्रष्टाचार को रोकना है। इसमें सरकारी अधिकारियों के खिलाफ विशेष कार्रवाई के प्रावधान हैं।

5. जॉच की स्वतंत्रता : पीसी एक्ट के अंतर्गत जाँच के लिए स्वतंत्र जाँच अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं, जिन्हें अपराध की निष्पक्ष और त्वरित जाँच करने का अधिकार होता है।

8. पीसी एंड पी एन डी टी एक्ट (Pre-Conception and Pre-Natal Diagnostic Techniques Act) और कन्या भ्रूण हत्या के बीच गहरा संबंध है, जो भारतीय समाज में महिलाओं और लड़कियों को समर्थित करने और उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रयास करते हैं।

1. कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम : पीसी एंड पी एन डी टी एक्ट का मुख्य उद्देश्य कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम है। इस एक्ट में कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ सख्त कानूनी कार्रवाई का प्रावधान है और इसे गैर-कानूनी और दंडनीय ठहराया गया है।

2. भ्रष्टाचार की रोकथाम : यह एक्ट भ्रष्टाचार की रोकथाम को बढ़ावा देता है, जो कन्या भ्रूण हत्या के पीछे एक प्रमुख कारण हो सकता है। इसके तहत, डॉक्टर्स को गर्भावस्था के दौरान लिंग की पहचान के लिए संदेहास्पद परीक्षण करने की अनुमति नहीं है।

3. महिला सुरक्षा : इस एक्ट के तहत, महिलाओं की सुरक्षा और उनके अधिकारों की संरक्षा को महत्वपूर्ण माना गया है। किसी भी व्यक्ति या संगठन द्वारा कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ शिकायत दर्ज कराने की सुविधा है।

4. जाँच की स्वतंत्रता : इस एक्ट के अंतर्गत, जाँच के लिए स्वतंत्र जाँच अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं, जिन्हें अपराध की निष्पक्ष और त्वरित जाँच करने का अधिकार होता है।

5. सजा और जुर्माना : यह एक्ट भ्रष्टाचार के खिलाफ कड़ी कार्रवाई का प्रावधान करता है और उसे गंभीरता के हिसाब से दंडित किया जाता है

9. पीसी एंड पी एन डी टी एक्ट की प्रमुख विशेषताएँ

कन्या भ्रूण हत्या के संदर्भ मेंः कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम : पीसी एंड पी एन डी टी एक्ट का मुख्य उद्देश्य कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम है। इस एक्ट में कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ सख्त कानूनी कार्रवाई का प्रावधान है और इसे

गैर-कानूनी और दंडनीय ठहराया गया है। भ्रष्टाचार की रोकथामः यह एक्ट भ्रष्टाचार की रोकथाम को बढ़ावा देता है, जो कन्या भ्रूण हत्या के पीछे एक प्रमुख कारण हो सकता है। इसके तहत, डॉक्टर्स को गर्भावस्था के दौरान लिंग की पहचान के लिए संदेहास्पद परीक्षण करने की अनुमति नहीं है। महिला सुरक्षाः इस एक्ट के तहत, महिलाओं की सुरक्षा और उनके अधिकारों की संरक्षा को महत्वपूर्ण माना गया है। किसी भी व्यक्ति या संगठन द्वारा कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ शिकायत दर्ज कराने की सुविधा है। जाँच की स्वतंत्रताः इस एक्ट के अंतर्गत, जाँच के लिए स्वतंत्र जाँच अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं, जिन्हें अपराध की निष्पक्ष और त्वरित जाँच करने का अधिकार होता है। सजा और जुर्मानाः यह एक्ट भ्रष्टाचार के खिलाफ कड़ी कार्रवाई का प्रावधान करता है और उसे गंभीरता के हिसाब से दंडित किया जाता है। पीसी एंड पी एन डी टी एक्ट के तहत, कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए सकारात्मक कदम उठाए जा रहे हैं और इससे महिलाओं की सुरक्षा और उनके अधिकारों की संरक्षा को मजबूत किया जा रहा है। यह एक महत्वपूर्ण कदम है जो समाज में नारी सम्मान और समानता को बढ़ावा देता है और कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ लड़ाई में अहम योगदान देता है।

10. पीसी एंड पी एन डी टी एक्ट के तहत प्रतिबंधित कृत

कन्या भ्रूण हत्या के प्रमुख पहलु प्रतिबंधित कृत्य क्रियावली की रोकथाम

यह अधिनियम गर्भावस्था के दौरान लिंग जाँच की अनुमति को प्रतिबंधित करता है। इसका मुख्य उद्देश्य गर्भावस्था के दौरान लिंग की पहचान के लिए किए जा रहे अवैध टेस्ट को रोकना है, जो कन्या भ्रूण हत्या की प्रेरणा करता है। कड़ी कानूनी कार्रवाईरू अधिनियम में कड़ी कानूनी कार्रवाई के प्रावधान हैं जो इसे गंभीरता से लेते हैं। इसके तहत भ्रष्टाचारी डॉक्टर्स और मेडिकल संस्थानों के खिलाफ कड़ी सजा का प्रावधान है। जाँच और प्रोसीज़रः अधिनियम के अनुसार, जाँच और प्रोसीज़र को सुनिश्चित किया जाता है ताकि किसी भी प्रतिबंधित कृत क्रियावली के आरोपी को न्याय मिल सके।

शिकायत का अधिकारः इस अधिनियम के अंतर्गत, किसी भी व्यक्ति या संगठन को प्रतिबंधित कृत क्रियावली के खिलाफ शिकायत दर्ज कराने का अधिकार है

गवर्नमेंट के सकारात्मक उपायः सरकार ने इस अधिनियम के तहत जन सचेतता कार्यक्रम और सशक्तिकरण के लिए उपाय अधिक किए हैं ताकि समाज में कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ जागरुकता फैल सके। पीसी एंड पी एन डी टी एक्ट के तहत प्रतिबंधित कृत कन्या भ्रूण हत्या का प्रबंधन किया जा रहा है और इससे महिलाओं की सुरक्षा और अधिकारों की संरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान किया जा रहा है। यह सामाजिक बदलाव को प्रोत्साहित करने का एक महत्वपूर्ण कदम है जो स्त्रियों को समानता और न्याय की दिशा में आगे बढ़ने में मदद करता है।

11. कन्या भ्रूण हत्या के प्रतिरोध की सुझाव

कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए कई प्रतिरोधी कदम उठाए जा सकते हैं। यहाँ कुछ सुझाव हैं : जागरूकता कार्यक्रमः समाज में कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ जागरूकता को बढ़ाने के लिए जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते हैं। लोगों को इस अपराध के खतरों और उसके प्रभावों के बारे में शिक्षित किया जा सकता है। विधायिका संशोधनः कड़े कानूनी कार्रवाई और धाराएँ कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ और उसे बढ़ावा देने के लिए लागू की जा सकती हैं। संशोधित विधायिका अपराधियों के खिलाफ कड़े दंड और सजा प्रदान कर सकती है। जांच और प्रोसीजर की सुविधाः कन्या भ्रूण हत्या के आरोपियों के खिलाफ त्वरित और संवेदनशील जाँच और प्रोसीज़र की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए। इससे अपराधियों को न्याय मिल सकता है और इस अपराध को रोका जा सकता है। संज्ञान और दंडः कन्या भ्रूण हत्या को बढ़ावा देने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं के खिलाफ कड़ा संज्ञान और दंड लागू किए जाने चाहिए। इससे लोगों को इस प्रकार की अवैध और अनैतिक प्रथा को बचाने के लिए डराया जा सकता है। शिक्षा और सहयोगः समाज के अन्य सदस्यों को समर्थित करने और उन्हें सहयोग प्रदान करने के लिए शिक्षा और सामाजिक संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। सामुदायिक समूहों के माध्यम से सहयोग प्रदान किया जा सकता है ताकि महिलाओं को उनके अधिकारों की जागरुकता हो और वे अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें। कन्या

भ्रूण हत्या को रोकने के लिए समाज, सरकार, और अन्य संगठनों को मिलकर काम करना होगा। एक समर्थनात्मक और संवेदनशील समाज बनाने के लिए साझेदारी करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

कन्या भ्रूण हत्या एक घोर अपराध है जो जेंडर इंगितारी सोच का परिणाम है। यह विशेषतः ऐसे समाजों में पाया जाता है जहां लड़कियों को लड़कों के तुलनात्मक अधिकार की कमी महसूस की जाती है। इसके विरुद्ध लड़कियों के शैक्षिक, सामाजिक और आर्थिक समर्थन को बढ़ावा देना आवश्यक है।

संदर्भ

1. राम आहूजा एवं मुकेश आहुजा अपराध शास्त्र
2. बसंती लाल बावले अपराध शास्त्र एवं दंड शास्त्र
3. आशा चौहान आनंद कुमार आशीष कुमार भारतीय समाजशास्त्र अध्ययन

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

खादी-ग्रामोद्योग : अर्थ, स्वरूप एवं महत्व

डॉ. उमा शर्मा
सहायक आचार्य-गृहविज्ञान
राजकीय कन्या महाविद्यालय टपूकड़ा, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य खादी-ग्रामोद्योग के माध्यम से अधिकतम श्रम व्यवस्थापन को संभव बनाने एवं अधिक से अधिक लोगों के आर्थिक स्तर में परिणामीन परिवर्तन लाने की दृष्टि से खादी-ग्रामोद्योग की भारतीय संदर्भ में कालातीत उपयोगिता एवं प्रासांगिकता का तथ्यात्मक परीक्षण करते हुए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में स्वावलम्बन पूर्ण आर्थिक अभ्यास्तनों की स्थापना सम्बन्धी परमोच्य आवश्यकता का प्रतिपादन करना है।

"राष्ट्र की गौरव पताका है खादी, राष्ट्र की अस्मिता है खादी। दारिद्रय के निवारण का मंत्र है- खादी, जन-जन के मोक्ष का तंत्र है खादी।" इन आप्त वचनों में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत की आर्थिक दिशा के सन्दर्भ में महात्मा गांधी के आर्थिक दृष्टिकोण का दर्शन होता है। भारत की कुल श्रम क्षमता का बहुतांश ग्रामों में संकेंद्रित है। आर्थिक विकास के संकल्पित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ग्रामीण श्रम क्षमता का योजनाबद्ध ढंग से व्यवस्थापन किया जाना आवश्यक है। ग्रामोद्योग इस सन्दर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माध्यम सिद्ध हो सकता है।

इस तथ्य को स्वीकार करते हुए भारतीय समाज सुधारकों, आर्थिक चिंतकों एवं राजनेताओं ने वर्तमान शताब्दी के दूसरे दशक के बाद से ही खादी के साथ-साथ अन्य ग्रामीणों प्रयोगों को योजनाबद्ध ढंग से विकसित किए जाने तथा उन्हें सतह प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया है।

संकेताक्षर - लोकतान्त्रिक, आर्थिक, अर्थव्यवस्था, स्वावलम्बन, गांधीवादी।

प्रस्तावना - आधुनिक औद्योगिककरण से उत्पन्न विभिन्न प्रकार की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं स्वास्थ्य संबंधी विसंगतियों तथा दोषों का हल परंपरागत ग्रामीण उद्योगों के विकास में सहज रूप से प्राप्त किया जा सकता है। कतिपय समीक्षकों का मत है कि आधुनिक यंत्र, तकनीक तथा ऊर्जा के स्रोतों पर आधारित उद्योगों के एक निश्चित कालावधि पश्चात क्रियाबाहय हो जाने का भय बना रहता है, परंतु ग्रामोद्योग की मूल प्रकृति चिरंतनता के आदर्श पर संकेंद्रित रहती है। यही कारण है कि भारत के आर्थिक विकास के संदर्भ में परंपरागत ग्रामोद्योग आज भी पूर्ववत् महत्वपूर्ण माना जाता है।

खादी एवं ग्रामोद्योगों का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्व

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विचारकों ने तत्कालीन विष्व में प्रचलित स्वेच्छातंत्रवादी पूंजीवाद तथा नियंत्रित साम्यवाद पर आधारित अर्थव्यवस्थाओं को भारत के लिए अनुपयुक्त ठहराते हुए एक मिश्रित अर्थव्यवस्था को समूर्त रूप प्रदान करने का निश्चय किया। इस मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवादी तथा साम्यवादी अर्थव्यवस्थाओं के लोक पोषक गुणों को देश की परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तित कर उनसे सम्यक का लाभ प्राप्त करने की

व्यवस्था की गई तथा इसके साथ ही उक्त आर्थिक व्यवस्थाओं के दुर्गुणों से देश को बचाए रखने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था में उत्पादन के समस्त संसाधनों का युक्ति-युक्त ढंग से व्यवस्थापन करने, रोजगार के अधिकाधिक अवसर उत्पन्न करने, आर्थिक असमानता को दूर करने एवं सभी क्षेत्रों में आर्थिक विकास संबंधी आयोजनों के लाभों से सीधे जोड़ने तथा ऐसा करते हुए समग्र राष्ट्र को सर्वगुण आर्थिक विकास के मार्ग पर निर्बाध रूप से ले चलने का लक्ष्य सुनिश्चित किया गया और इसकी संप्राप्ति हेतु सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र के साथ-साथ सहकारी क्षेत्र में औद्योगिकीकरण को प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक माना गया। मूलभूत आवश्यक वस्तु उत्पादन तथा राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित निर्माणों के लिए एक ओर जहां भारी पूंजी निवेश द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत विशालतम औद्योगिक इकाइयों की स्थापना किए जाने की आवश्यकता प्रतिपादित की गई। वहीं दूसरी ओर, भिन्न-भिन्न प्रकार की उपभोक्तावादी वस्तुओं के उत्पादक उद्योगों का विकास निजी एवं सहकारी क्षेत्रों के अंतर्गत किया जाना समवेत रूप से स्वीकार किया गया।

उल्लेखनीय है कि इस अर्थव्यवस्था में औद्योगिकीकरण के क्षेत्र में सहकारिता को विशेष अर्हमन्यता प्रदान किए जाने की संस्तुति आर्थिक विचारकों एवं योजनाकारों द्वारा की गई। सहकारी श्रेणी के लिए अनेक क्षेत्र सुनिश्चित किए गए। श्रम आधारित उद्योग प्रवर्तन में सहकारी क्षेत्र को विशेष रूप से प्रोत्साहित किए जाने की अनुशंसा की गई। आर्थिक आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन देने, आर्थिक विकास में क्षेत्रीय असमानता को समाप्त करने तथा रोजगार के विपुल अवसर निर्माण कर अधिकाधिक जनों के हितवर्धन को सुलभ बनाने आदि अनेक दृष्टियों से विकास संबंधी औद्योगिक कार्यक्रमों के अंतर्गत सहकारी क्षेत्र को विशेष प्रभावकारी माना गया।

समस्त उत्पादक इकाइयों को सामान्यतः 'संगठित' अथवा 'असंगठित' श्रेणी क्रम में रखा जाता है। सहकारी क्षेत्र द्वारा संचालित अनेक उपक्रम इन श्रेणी क्रमों के अंतर्गत आते हैं, परंतु खादी-ग्रामोद्योग की प्रकृति निजी अथवा सहकारी होते हुए भी उपर्युक्त श्रेणी क्रम से यथेष्ट भिन्नता रखती है।

वस्तुतः इसका विकास सामाजिक-आर्थिक पुनरुत्थान संबंधी गांधीवादी आध्यात्मिक परिवेश में एक मिसाल के रूप में हुआ है अर्थात आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक पिछड़े हुए वर्ग के ग्रामीणों के लिए रोजगार के अवसरों का सृजन करते हुए उनकी आजीविका का प्रबंध करना। इसे विष्व कल्याणकारी माना गया है, निसंदेह यह पारंपरिक होते हुए भी आधुनिक है। 'खादी-ग्रामोद्योग का जीवन दर्शन विकेंद्रित उत्पादन प्रणाली और विवेकपूर्ण उपभोग के शाष्वत और अति प्रासंगिक तत्वों पर आधारित है', यह इसकी दीर्घकालीन भावी प्रासंगिकता का समपोषक आधार है।

ऐतिहासिक दृष्टि से खादी एवं ग्रामोद्योग आंदोलन स्वाधीनता आंदोलन के समानांतर चलता रहा। इसे स्वाधीन भारत में नियोजित अर्थव्यवस्था के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना से प्रारंभ कर अन्य अनुवर्ती योजनाओं में इसे उत्तरोत्तर अधिक महत्व दिया जाता रहा है। वित्त, कच्चा माल, विद्युत, तकनीक, विपणन, परिवहन, बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्धा एवं कुशल प्रबंधकों का अभाव आदि समस्याओं से ग्रसित होते हुए भी इन उद्योगों ने अपने अस्तित्व और औचित्य दोनों को सिद्ध किया है।

परंपरागत ग्रामीण शिल्प एवं कला को उत्पादक क्रियाओं द्वारा प्रत्यक्ष जोड़ने का अवसर सुलभ कराना, ग्रामीणों के अवकाश के चरणों को आर्थिक उत्पादक उपयोग की ओर उन्मुख करना और ऐसा करते हुए उन्हें आर्थिक स्वावलंबन की ओर अग्रसर कराना, स्वदेशी संस्थानों के उपयोग द्वारा स्वदेशी उत्पादनों में निरंतर क्रम से वृद्धि करना और इन सभी कार्यो को पूर्ण करते हुए राष्ट्रीय आर्थिक विकास को व्यापक एवं सुदृढ़ आधार भूमि प्रदान करना, इन सब कल्पनाओं के साथ वस्तुतः महात्मा गांधी ने खादी-ग्रामोद्योग को एक आर्थिक जन आंदोलन के रूप में परिवर्तित किया।

उल्लेखनीय है कि गांधीजी ने जिन परिस्थितियों एवं कारणों से सुरक्षात्मक उपाय के रूप में खादी-ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन किए जाने की आवश्यकता अनुभव की थी, वह आज भी यथावत रूप में विद्यमान है। वर्तमान आर्थिक विकास संबंधी कार्यक्रम के अंतर्गत खादी-ग्रामोद्योग की प्रासंगिकता और उपादेयता का इसे प्रतिपादक आधार माना जा सकता है। कृषि के साथ एक

सहायक आर्थिक आयोजन के रूप में खादी को अपनाया जा सकता है। विज्ञान एवं तर्क पर आधारित तथा अहिंसा के अष्व पर सवार शोषण के स्थान पर पारस्परिक पोषण के हिमायती के रूप में खादी-ग्रामोद्योग की संकल्पना की गई है।

खादी : अर्थ एवं स्वरूप

खादी का अर्थ है- भारत में कपास, रेशम, या उनके साथ कते सूत और इनमें से दो या सभी प्रकार के सूत के मिश्रण से हाथ करघा पर बुना गया कोई वस्त्र। वस्त्र निर्माण प्रक्रिया में पोलिस्टर धागों का समावेश कर लिए जाने के कारण अब खादी की परिधि में पॉली खादी को भी सम्मिलित कर लिया गया है। खादी के उत्पादन अथवा निर्माण में 'हाथ' अथवा 'श्रम' का महत्व सर्वोपरि है।

खादी आंदोलन के आरंभिक दौर में तकली और चरखा ही सूत काटने और ओटने के महत्वपूर्ण उपकरण रहे हैं। किंतु अपनी लंबी यात्रा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के योगदान के फलस्वरुप अंबर चरखा एवं विधायन प्रोसेसिंग प्रक्रिया हाथचलित तो कुछेक यंत्रों का उपयोग होने लगा है। खादी वस्त्र निर्माण की प्रक्रिया में कपास की धुनाई, पोनी बनाना, सूत कातना, ओटना, माड लगाना एवं ताना-बाना भरना आदि कार्य सम्मिलित हैं। रंगसाजी एक अलग प्रक्रिया है इसके प्रभाव में भी खादी, खादी ही रहती है।

उपर्युक्त भौतिक अर्थ से हटकर खादी वस्तुतः एक वैचारिक अवधारणा है। खादी के माध्यम से देश की आर्थिक आजादी का स्वप्न देखा गया था। नेहरू के शब्दों में "खादी आजादी की वर्दी है।'' खादी आंदोलन का एक उद्देश्य ग्रामीण जनों, विशेषकर महिलाओं को घर बैठे काम उपलब्ध कराना रहा है। आज खादी नियोजित अर्थव्यवस्था का गौरवपूर्ण अध्याय है।

ग्रामोद्योग : अर्थ एवं स्वरूप

खादी की तुलना में ग्रामोद्योगों की परिधि अधिव्यापक है। खादी के सहायक एवं पूर्व के रूप में उसका अलग ही महत्व है। वस्तुतः गांव अथवा कस्बों को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने में इन ग्रामोद्योगों का महत्व अधिक है। 'ग्राम स्वराज्य' का गांधीवादी चिंतन ग्रामोद्योगों के विकास से ही वास्तविक स्वरूप को धारण कर सकता है।

स्थानीय संसाधनों एवं सामग्रियों का उपयोग करते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित एवं संचालित सभी उद्योगों को ग्रामोद्योग कहा जा सकता है। सीमित साधनों एवं कुछ विशेषज्ञों के मार्गदर्शन में ग्रामीणों द्वारा स्थापित, ग्रामीणों के लिए संचालित यह गांव के ही उद्योग होते हैं। आर्थिक एवं औद्योगिक सर्वेक्षण, मुंबई के अनुसार "वे उद्योग ग्रामोद्योग हैं जिनमें 'शक्ति' का उपयोग नहीं होता तथा उनका उत्पादन सामान्यतः घर पर ही किया जा सकता है।" भारतीय औद्योगिक समिति की धारणा भी इससे मिलती-जुलती है। इसके अनुसार "ग्रामोद्योग वह उद्योग है जो श्रमिकों के घर पर चलाए जाते हैं और जहां उत्पादन का क्षेत्र लघु और संगठन न्यूनतम होता है।" राजकोषीय आयोग 1948-50 के अनुसार, "वे समस्त उद्योग जो पूर्णतः अथवा अशंतः कारीगर के परिवार की सहायता से पूर्णकालीन अथवा अंशकालिक रूप से चलाए जा सकते हैं, ग्रामोद्योग की परिधि में आते हैं।"

खादी और ग्रामोद्योग आयोग अधिनियम, 2006 के अनुसार 'ग्रामीण क्षेत्र' का आशय है, कोई भी गांव में आने वाला क्षेत्र और ऐसा कस्बा भी शामिल है जिसकी आबादी (बीस हजार) अथवा समय-समय पर केन्द्र सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट किसी भी आंकड़े से अधिक न हो। ग्रामोद्योग का आशय है-"ग्रामीण क्षेत्र में स्थित कोई भी उद्योग जो विद्युत के उपयोग से अथवा इसके बिना किसी वस्तु को उत्पादन करता हो अथवा सेवा प्रदान करता हो और जिसमें एक कारीगर अथवा एक कार्यकर्ता के ऊपर प्रतिशीर्ष निवेश (एक लाख)/पहाड़ी क्षेत्र में स्थित किसी भी उद्योग के मामले में ''एक लाख रुपए'' शब्दों के स्थान पर ''एक लाख पचास हजार रुपए अथवा भारत सरकार द्वारा समय समय पर विनिर्दिष्ट राजपत्र में अधिसूचित कोई भी अन्य रकम से अधिक न हो। और किसी भी ग्रामोद्योग के संवर्धन, रखरखाव, सहायता, सेवा प्रदान करने (मूल इकाइयों सहित) अथवा प्रबंधन के एक मात्र उद्देश्य के लिए स्थापित कोई अन्य गैर उत्पादक इकाई।"

अनुसूची में विनिर्दिष्ट और खादी और ग्रामोद्योग आयोग (संशोधित) अधिनियम 1987 की शुरुआत से पूर्व किसी भी समय ग्रामीण क्षेत्र के अतिरिक्त किसी भी क्षेत्र में स्थित और ग्रामीण के रूप में चिह्नित कोई भी उद्योग इस अधिनियम के अन्तर्गत ग्रामोद्योग, ही रहेगा, चाहे उपखण्ड में कुछ भी लिखा हो।

संक्षेप में ग्रामोद्योगों की पहचान निम्नलिखित बिंदुओं से सुनिश्चित की जा सकती है–

1. स्थानीय संसाधनों का उपयोग,
2. ऊर्जा का सीमित उपयोग,
3. हाथ' अथवा 'श्रम' का महत्व अधिक,
4. परिवार के सदस्यों द्वारा संचालित,
5. पूर्ण कालीन अथवा अंश कालिक व्यवसाय के रूप में संचालित होते हैं।

इस प्रकार ग्रामोद्योगों में सामान्यतः परंपरागत विधियों का उपयोग होता है तथा बाजार ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित रहता है।

खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग के अनुसार 'ग्रामोद्योग का अर्थ है- "ग्रामीण क्षेत्र जिसकी जनसंख्या 10000 से अधिक न हो, में स्थापित कोई उद्योग जो बिजली का इस्तेमाल करके या बिना इस्तेमाल किए कोई वस्तु उत्पादित करता हो जिसमें स्थिर पूंजी निवेश, संयंत्र, मशीन, भूमि और भवन में प्रति कारीगर या कार्यकर्ता 15,000 से अधिक न हो।"

खादी-ग्रामोद्योग आयोग की परिधि के अंतर्गत खादी के अतिरिक्त कई अन्य ग्रामोद्योगों का समावेश किया गया है जिनके विकास हेतु आयोग अपने द्वारा निर्मित आर्थिक तथा अन्य नियमों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार से आर्थिक और अन्य सहायता इसके द्वारा पूर्व घोषित अधिकरणों, परंपरागत कारीगरों, व्यक्तिगत उद्यमियों आदि को उपलब्ध कराती है। खादी एवं ग्रामोद्योगो के विकास हेतु आयोग द्वारा आर्थिक सहायता व नियमों के अधीन विभिन्न प्रकार की आर्थिक सहायता घोषित नीति रियासतें संस्था, सहकारी समितियों, परंपरागत कारीगरों, उद्यमियों को उपलब्ध कराई जाती है।

खादी एवं ग्रामोद्योग : स्वतंत्रता से पूर्व स्थिति

आज खादी एवं ग्रामोद्योग का आकाश सुविस्तृत प्रतीत होता है। किंतु इसे भी दांत के दर्द के दौरे से गुजरना पड़ा है। 1920 से 1947 तक का कालखंड खादी आंदोलन का प्रारंभिक दौर रहा है। 1947 के पश्चात विशेषकर 1951 प्रथम पंचवर्षीय योजना से यह भारत के नियोजित अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग बन चुका है।

गांधीजी स्वदेशी भावना को जागृत करने के लिए खादी को एक अहम उपकरण तथा राजनीतिक शस्त्र मानते थे। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, विशेषकर विदेशी वस्त्रों की होली को अत्यधिक प्रभावी बनाने में खादी उद्योग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संपूर्ण देश में खादी के प्रभावी प्रचार-प्रसार तथा निर्माण की दृष्टि से तथा उसके विकास एवं उन्नयन के उद्देश्य से दिसंबर 1923 में गांधी जी ने देश के सभी प्रांतों में 'अखिल भारतीय खादी बोर्ड' की स्थापना की। यह संगठन भारतीय राष्ट्र कांग्रेस का एक अनुशांगिक अंग था। वह उसी के संरक्षण एवं निर्देशन में कार्य करता था। यह पहला चरण 1918 से 1924 तक कार्यशील रहा।

द्वितीय चरण का प्रारंभ 1925 में स्वशासी संगठन के रूप में 'अखिल भारतीय चरखा संघ' की स्थापना के साथ हुआ। यद्यपि अनेक कांग्रेस कार्यकर्ता संघ के मामले में महत्वपूर्ण भूमिका संपन्न कर रहे थे, तथापि संगठनात्मक दृष्टि से यह कांग्रेस से पृथक एवं स्वतंत्र इकाई थी।

चतुर्थ दशक में गांधी जी ने अपना ध्यान विशेष रूप से ग्रामोद्योगों की ओर केंद्रित किया। परिणामस्वरूप सन् 1935 में 'अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ' नाम से एक अन्य संगठन का जन्म हुआ। खादी को एक शासकीय कार्यक्रम के रूप में मूर्त-स्वरूप प्रदान करने का आरंभिक प्रयास सर्वप्रथम मद्रास राज्य सरकार द्वारा 1946 में प्रारंभ किया गया। इसके पश्चात केंद्रीय सरकार द्वारा प्रभाव में लाई गई सन् 1948 की औद्योगिक नीति में ग्रामोद्योगों की स्थापना तथा इनको हर दृष्टि से

प्रोत्साहित किए जाने का प्रावधान रखा गया। वस्तुतः खादी-ग्रामोद्योग को इसके बाद से विशेष महत्व प्राप्त हुआ।

खादी एवं ग्रामोद्योग : स्वतंत्रता के पश्चात स्थिति

गांधीजी के उक्त विचारों से प्रेरित होकर अगस्त 1947 में आजादी मिलने के बाद जनता का जीवन स्तर ऊंचा उठाने के लिए देश में योजनाबद्ध विकास का मार्ग अपनाया गया। इसी संबंध में खादी तथा ग्रामोद्योग को एक विकासगामी अनिवार्य आर्थिक आयोजन के रूप में सभी अनुवर्ती पंचवर्षीय योजनाओं में समाविष्ट किया गया। इस तरह राष्ट्रीय आर्थिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत खादी-ग्रामोद्योग को निजी स्वायत्तशासी अथवा सहकारी संस्था के रूप में शासकीय अनुदान एवं बहुआयामी सहायता से आत्मविश्वास का अवसर प्राप्त हुआ।

उक्त प्रयासों के कारण केंद्र सरकार द्वारा प्रभाव में लाई गई सन् 1948 की औद्योगिक नीति में ग्रामोद्योगों की स्थापना तथा इन्हें हर दृष्टि से प्रोत्साहित किए जाने का प्रावधान रखा गया। वस्तुतः खादी-ग्रामोद्योग को इसके बाद से विशेष महत्व प्राप्त हुआ। वर्ष 1950 में आर्थिक नियोजन प्रक्रिया अपनाए जाने से स्थिति में तेजी से परिवर्तन आया। व्यापारिक खादी का उत्पादन प्रचुर मात्रा में ब्याज रहित ऋण, उत्पादन बिक्री छूट, प्रशासकीय, पर्यवेक्षीय तथा तकनीकी व्यवस्था हेतु अनुदान के प्रावधान के चलते, तेज गति से बढा। व्यापारिक खादी उत्पादन में वृद्धि मुख्यतः प्रगतिशील उत्पादन तकनीक के निरंतर विकास के कारण हुआ।

डॉ. जे. सी. कुमारप्पा के नेतृत्व में गठित कृषि सुधार समिति ने भी 1951 में खादी व ग्रामोद्योगों को नीतिगत सहयोग प्रदान करने की सिफारिश की। कृषि के साथ एक सहायक आर्थिक आयोजन के रूप में खादी को अपनाया गया। पारस्परिक पोषण के हिमायती के रूप में खादी-ग्रामोद्योग की संकल्पना की गई।

इसी को दोहराते हुए वर्ष 1956 में घोषित औद्योगिक नीति में कहा गया कि "भारत सरकार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विस्तार के लिए कुटीर, ग्रामीण तथा लघु स्तरीय उद्योगों की भूमिका पर बल देगी।" इसी प्रकार जुलाई 1980 में घोषित औद्योगिक नीति के वक्तव्य में कहा गया कि, "सरकार देश में इस प्रकार के औद्योगिक विकास करने के लिए कृत संकल्प है, जो गांवों को आर्थिक रूप से मजबूत बना सके एवं जो पर्यावरणीय संतुलन के अनुकूल हो। इसके अलावा जिससे गांवों में बड़े स्तर पर रोजगाओं का सृजन एवं इसके माध्यम से प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हो और इस रूप में गांवों की विकास की गति को तेज करने के लिए खादी एवं अन्य ग्रामोद्योगों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।" इसी वक्तव्य को जुलाई 1995 में घोषित औद्योगिक नीति में भी दोहराया गया।

इस प्रकार स्वाधीन भारत में खादी एवं ग्रामोद्योग को नियोजित अर्थव्यवस्था के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना से प्रारंभ कर तैरहवीं पंचवर्षीय योजनाओं तक एवं इसके अलावा वर्तमान में लागू विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रमों एवं नीतियों में इसे उत्तरोत्तर रूप से अधिक महत्व दिया जाता रहा है।

निष्कर्ष - भारतीय समाज सुधारकों, आर्थिक चिंतकों एवं राजनेताओं ने वर्तमान शताब्दी के दूसरे दशक के बाद से ही खादी के साथ-साथ अन्य ग्रामीणों प्रयोगों को योजनाबद्ध ढंग से विकसित किए जाने तथा उन्हें सतह प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से खादी एवं ग्रामोद्योग आंदोलन स्वाधीनता आंदोलन के समानांतर चलता रहा। इसे स्वाधीन भारत में नियोजित अर्थव्यवस्था के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना से प्रारंभ कर अन्य अनुवर्ती योजनाओं में इसे उत्तरोत्तर अधिक महत्व दिया जाता रहा है। स्वाधीन भारत में खादी एवं ग्रामोद्योग को नियोजित अर्थव्यवस्था के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना से प्रारंभ कर तैरहवीं पंचवर्षीय योजनाओं तक एवं इसके अलावा वर्तमान में लागू विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रमों एवं नीतियों में इसे उत्तरोत्तर रूप से अधिक महत्व दिया जाता रहा है।

इस प्रकार 1947 के पश्चात खादी तथा ग्रामोद्योग को एक विकासगामी अनिवार्य आर्थिक आयोजन के रूप में सभी अनुवर्तीय पंचवर्षीय योजनाओं में समाविष्ट किया गया। इस तरह राष्ट्रीय आर्थिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत खादी ग्रामोद्योग

को निजी स्वायत्तशासी अथवा सहकारी संस्था के रूप में शासकीय अनुदान एवं बहुआयामी सहायता से आत्मविष्वास का अवसर प्राप्त हुआ है।

संदर्भ सूची सूची

1. पाटनी, आर.एल. (1976) भारतीय उद्योगों का संगठन, प्रबंध व वित्त, गोयल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ, पृ. 39
2. सोनी, आर.एन. (2014) कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय, विशाल पब्लिकेशन कम्पनी, नई दिल्ली, पृ. 27
3. राजस्थान पत्रिका, जयपुर संस्करण, 05 सितम्बर 2021
4. जागृति, (मार्च 2022) खादी और ग्रामोद्योग आयोग की ग्रामीण औद्योगिकीकरण विषयक मासिक पत्रिका, खादी और ग्रामोद्योग आयोग, मुंबई, पृ. 51
5. मिश्र, जगदीश नारायण (2015) भारतीय अर्थव्यवस्था, संशोधित संस्करण, किताब महल, इलाहाबाद, पृ. 43
6. पाण्डेय, श्यामकृष्ण (2008) भारतीय छात्र आन्दोलन का इतिहास, जवाहर पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ. 12
7. राय, अग्रवाल, पारसनाथ, लक्ष्मीनारायण (2003) अनुसंधान परिचय, साहित्य भवन, आगरा, पृ. 59
8. शुक्ला, एम. बी. (1997) भारत में लोक उपक्रम, साहित्य भवन, आगरा, पृ. 37
9. गुप्ता, डॉ. एस. सी. (2015) आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था, श्री पब्लिशर्स, परिवर्धित एवं पुनर्मुद्रित संस्करण, जयपुर, पृ. 25
10. पांडेय, प्र. कु. (2000) गाँधी का आर्थिक एवं सामाजिक चिंतन, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशलय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृ. 21
11. गोंसाल्विस, पीटर (2019) खादीः गाँधी की क्रांति का महाप्रतीक, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 17
12. दैनिक भास्कर, जयपुर संस्करण, 16 अप्रैल 2022, पृ. 11
13. मुखजी, आर. एन. (2017) सामाजिक सर्वेक्षण एवं शोध प्रविधि विवेक प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 10
14. कुलकणी, सुमित्रा (2021) चरखे की खोज, परिवर्धित संस्करण, सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली, पृ. 17
15. खादी व ग्रामोद्योग क्षेत्र : अपार संभावनाएँ और कुछ ठोस कदम (2015) दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 19
16. गर्ग, आर.बी. (1987) इकोनॉमिक्स ऑफ खद्दर, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 9
17. भंडारी, लता., (2011) खादी ग्रामोद्योग : समग्र विकास का आधार, खादी ग्रामोद्योग सघन विकास समिति, बस्सी, जयपुर, पृ. 24
18. कोठारी, आर. सी. (1998) शोध प्रविधि, एमचंद एंड कंपनी, नई दिल्ली, पृ. 22
19. सुधा, जी.एस. (2017) व्यापारिक उद्यमिता का विकास रमेश बुक डिपो, जयपुर, पृ. 69
20. राजस्थान पत्रिका, जयपुर संस्करण, 09 अप्रैल 2022
21. गुप्ता, के.एल. (2017) विकास व नियोजन का अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा, पृ. 69
22. प्रसाद, अवंतिका (1994) खादी तकनीक, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 95
23. गाँधी, मो. क. (1957) खादी क्यों और कैसे, (कुमारप्पा, संपा.), अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, पृ. 11
24. रामगुंडम (2022) क्लोदिंग फॉर लिबरेशन-ए कम्युनिकेशन एनालिसिस ऑफ गांधीज स्वदेशी रेवल्यूशन, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ. 47

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

सभी के लिए शिक्षा : समावेशिता की नई दिशा

संध्या रानी
शिक्षा विभाग, सिंघानिया यूनिवर्सिटी, पचेरी बारी, झुंझुनू(राज.), भारत
sandhya@apmi.in

भूमिका

शिक्षा समाज का वह आधार है जो न केवल व्यक्ति के बौद्धिक और मानसिक विकास को सुनिश्चित करता है, बल्कि उसे एक सशक्त और आत्मनिर्भर नागरिक बनने में भी मदद करता है। यह एक ऐसा माध्यम है जो समाज में व्याप्त असमानताओं, भेदभाव और अन्याय को समाप्त करने की दिशा में कार्य करता है। समावेशित शिक्षा का उदेश्य शिक्षा के अधिकार को वास्तविकता में बदलना है, जिसमें हर व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले। यह विचारधारा विशेष रूप से समाज के उन वर्गों के लिए महत्वपूर्ण है जो परंपरागत शिक्षा प्रणाली से वंचित रह जाते हैं, जैसे कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चे, सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े समूह और अन्य वंचित समुदाय। यह सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक असमानताओं को समाप्त कर सभी के लिए समान अवसर और समानता के सिद्धांत को सशक्त बनाती है। समावेशिता का यह सिद्धांत शिक्षा को अधिकार नहीं, बल्कि हर व्यक्ति के लिए जीवन का अनिवार्य अंग बनाता है। यूनेस्को के अनुसार- "समावेशी शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक बच्चे, विशेषकर हाशिए पर रहने वाले और वंचित समूहों के बच्चों को समान शैक्षिक अवसर प्रदान करने के लिए समावेशी प्रणाली बनाई जाती है।" (Inclusive education is the process of creating an inclusive system to provide equal educational opportunities to all children, especially those from marginalized and disadvantaged groups.) इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि समावेशी शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो सभी बच्चों, खासकर समाज के हाशिए पर रहने वाले और वंचित समूहों के बच्चों के लिए समान और न्यायसंगत शैक्षिक अवसर सुनिश्चित करती है। यह प्रणाली इस तरह विकसित की जाती है कि प्रत्येक बच्चे की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए उसे सीखने का समान अवसर और समर्थन प्रदान किया जा सके।

बीज बिंदु : शिक्षा, समावेशिता, समानता, अधिकार, भेदभाव, समाज, सामाजिक समता, अनुकूलन, मुख्यधारा शिक्षा।

प्रस्तावना

समावेशित का अर्थ : "समावेशित" का अर्थ है सभी को साथ लेकर चलना, विविधता को अपनाना, और किसी भी प्रकार के भेदभाव को समाप्त कर समानता को बढ़ावा देना।यह शब्द विशेष रूप से शिक्षा, समाज, और विकास के संदर्भ में उपयोग किया जाता है, जहाँ हर व्यक्ति को, चाहे उसकी पृष्ठभूमि, क्षमता, या स्थिति कुछ भी हो, समान अवसर और भागीदारी दी जाती है। समावेशित एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें समाज के हर व्यक्ति को समान रूप से शामिल किया जाता है, भले ही वे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, या शारीरिक रूप से भिन्न क्यों न हों। यह प्रक्रिया उनके अधिकारों, जरूरतों और क्षमताओं को पहचानते हुए उन्हें समान रूप से विकास में भागीदार बनाने पर बल देती है। यह एक ऐसी प्रक्रिया को दर्शाता

है जो भेदभाव, असमानता और विभाजन को समाप्त करने के लिए बनाई जाती है, ताकि प्रत्येक व्यक्ति को समाज, शिक्षा, या किसी अन्य संदर्भ में समान अवसर और सम्मान प्राप्त हो। उमा तुली के अनुसार- "समावेशी एक प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक विद्यालय बालकों की दैहिक, संवेगात्मक तथा सीखने की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने संसाधनों का विस्तार करता है।" इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि समावेशी शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें विघालय इस तरह से बदलाव और विस्तार करता है कि वह हर बच्चे की शारीरिक, भावनात्मक और शैक्षिक जरूरतों को पूरा कर सके। इसका उदेश्य यह है कि सभी बच्चों को, चाहे उनकी विशेष आवश्यकताएँ कुछ भी हों, समान और गुणवत्ता-पूर्ण शिक्षा का अवसर मिले। समावेशिता का उद्देश्य समाज में हर व्यक्ति को उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक, या शारीरिक स्थिति के बावजूद बराबरी का दर्जा देना है। समावेशिता एक ऐसा दृष्टिकोण है जो हर व्यक्ति के अधिकारों को समान रूप से महत्व देता है। यह किसी भी समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सामाजिक न्याय, समानता, और मानवाधिकार की रक्षा करता है। समावेशिता के सिद्धांतों को अपनाकर, हम समाज को अधिक सहिष्णु, समझदार और सहयोगी बना सकते हैं। इसके माध्यम से हम एक ऐसे समाज का निर्माण कर सकते हैं, जिसमें सभी वर्गों के लोग आपस में मिलकर बिना किसी भेदभाव के रह सकें और कार्य कर सकें। समावेशिता न केवल एक शैक्षिक या कानूनी आवश्यकता है, बल्कि यह मानवता का मूल है। यह एक ऐसा समाज बनाने का प्रयास है, जिसमें हर व्यक्ति को समान अवसर और सम्मान मिले, और वह अपनी क्षमताओं के अनुरूप योगदान दे सके। बार्टन एंव आर्मस्ट्रांग के अनुसार- "समावेशन करना तथा सर्वत्र बाहर रखना एक समान श्रेणियां नहीं होती। हर स्थिति अपने खुद के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, वैश्विक तथा संदर्भगत प्रभावों के द्वारा निर्मित की जाती है।" इस परिभाषा से स्पष्ट है कि समावेशन और बहिष्करण को समान श्रेणियों में नहीं रखा जा सकता। ये दोनों स्थितियां अपने-अपने विशेष संदर्भों, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक प्रभावों और वैश्विक परिस्थितियों के आधार पर विकसित होती हैं। प्रत्येक स्थिति का निर्माण उसके संदर्भ और समय के अनुसार अलग-अलग तरीके से होता है। यानी, समावेशन या बहिष्करण को एक समान तरीके से परिभाषित नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये संदर्भ और परिस्थितियों के अनुसार भिन्न हो सकते हैं।

शिक्षा का अर्थ

"शिक्षा का शाब्दिक अर्थ 'एजूकेशन' शब्द की उपत्ति लैटिन भाषा के 'एजूकेटम' शब्द से मानी जाती है। 'Educatum' शब्द की उत्पत्ति दो शब्दों - 'इ' (e) तथा 'ड्यूको' (duco) से मिलकर बना है। 'e' का अर्थ - 'out of' और 'duco' का अर्थ है- 'to lead forth' or to extract out' अतः शिक्षा (Education) का शाब्दिक अर्थ आन्तरिक को बाहर लाना है।" शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति ज्ञान, कौशल, मूल्य, और सामाजिक संस्कार प्राप्त करता है। यह एक निरंतर प्रक्रिया है जो किसी व्यक्ति के जीवन भर चलती रहती है। शिक्षा केवल किताबों तक सीमित नहीं होती, बल्कि यह व्यक्ति के सामाजिक, मानसिक और भावनात्मक विकास में भी अहम भूमिका निभाती है। इसके माध्यम से किसी व्यक्ति को अपने अधिकार, कर्तव्यों, और समाज में अपने स्थान के बारे में समझ मिलती है। शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी प्राप्त करना नहीं है, बल्कि यह व्यक्तित्व, नैतिक मूल्यों, और सामाजिक संबंधों को भी विकसित करना है। यह किसी भी व्यक्ति को अपने जीवन में सफलता और संतुष्टि प्राप्त करने के लिए आवश्यक उपकरण प्रदान करती है। शिक्षा केवल जानकारी प्राप्त करने का साधन नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो किसी व्यक्ति को जीवन में सफलता, संतुष्टि और समाज में सकारात्मक योगदान देने के लिए तैयार करती है। यह व्यक्तित्व विकास, सामाजिक न्याय, और वैश्विक सोच को बढ़ावा देती है। इसलिए, शिक्षा का महत्व समाज में समग्र विकास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। एफ. डब्ल्यू. थॉमस ने लिखा है- "भारत में शिक्षा, विदेशी पौधा नहीं है. संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम का इतने प्राचीन समय में आविर्भाव हुआ हो, या जिसने चिरस्थायी और शक्तिशाली प्रभाव डाला हो।"

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि शिक्षा भारत की अपनी परंपरा और संस्कृति से जुड़ी हुई है। यह कोई विदेशी अवधारणा नहीं है। विश्व में ऐसा शायद ही कोई अन्य देश है जहां ज्ञान के प्रति प्रेम इतना प्राचीन हो और जिसने शिक्षा के क्षेत्र में

इतने स्थायी और गहरे प्रभाव छोड़े हो। भारत में शिक्षा की जड़े अत्यंत पुरानी और प्रभावशाली हैं, जो इसकी अनूठी पहचान बनाती हैं। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति न केवल ज्ञान प्राप्त करता है, बल्कि उसके सोचने की क्षमता, सामाजिक व्यवहार, और जीवन के प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आता है। यह प्रक्रिया किसी भी व्यक्ति के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और उसे अपने व्यक्तित्व को विकसित करने, नए अवसरों की पहचान करने, और अपने अधिकारों व कर्तव्यों को समझने में मदद करती है।

डॉ. भीमराव अंबेडकर के कहते है- "मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास, शिक्षा है।" इस परिभाषा से स्पष्ट है कि शिक्षा का असली उद्देश्य मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा का समग्र आयर श्रेष्ठतम विकास करना हैं। यह ऐसा माध्यम है जो व्यक्ति के भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक पहलुओं को संतुलित रूप से उन्नति प्रदान करता है। शिक्षा का उद्देश्य केवल शैक्षिक ज्ञान प्राप्त करना नहीं है, बल्कि यह एक समग्र प्रक्रिया है जो व्यक्ति के मानसिक, सामाजिक, और भावनात्मक विकास में योगदान करती है। यह व्यक्ति को समाज में अपनी भूमिका को समझने, अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने और जीवन के विभिन्न पहलुओं को सुलझाने के लिए तैयार करती है। शिक्षा केवल जानकारी का आदान-प्रदान नहीं है, बल्कि यह किसी व्यक्ति के जीवन के हर पहलू को आकार देती है। यह न केवल मानसिक और शारीरिक विकास के लिए आवश्यक है, बल्कि यह समाज में शांति, समरसता, और सहयोग के लिए भी महत्वपूर्ण है। शिक्षा के माध्यम से हम एक ऐसे समाज का निर्माण कर सकते हैं, जो समानता, न्याय, और मानवाधिकार की रक्षा करता हो।

समावेशित शिक्षा

समावेशित शिक्षा (Inclusive Education) का अर्थ है, सभी बच्चों को उनकी भिन्नताओं के बावजूद समान रूप से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना। इसका उद्देश्य विशेष रूप से उन बच्चों को मुख्यधारा की शिक्षा प्रणाली में शामिल करना है, जिन्हें पारंपरिक शिक्षा प्रणाली में कठिनाई होती है, जैसे दिव्यांग बच्चे, आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के बच्चे, और विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों से आने वाले बच्चे। समावेशित शिक्षा में केवल सामान्य बच्चों को ही नहीं, बल्कि विशेष जरूरतों वाले बच्चों को भी समान अवसर दिया जाता है। यह शिक्षा का एक ऐसा रूप है जिसमें बच्चों के शारीरिक, मानसिक, या सामाजिक भेदभाव को नकारते हुए सभी को एक साथ शिक्षा दी जाती है, ताकि वे अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सकें। एक ऐसी शैक्षिक प्रणाली है जिसमें प्रत्येक बच्चे को उसकी व्यक्तिगत जरूरतों और क्षमताओं के बावजूद समान शिक्षा का अवसर मिलता है। इसका मुख्य उद्देश्य समाज के हर वर्ग, जाति, लिंग, शारीरिक और मानसिक क्षमताओं से जुड़े बच्चों को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा के अवसर प्रदान करना है। समावेशित शिक्षा न केवल शैक्षिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह सामाजिक समरसता, समानता और न्याय की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। माइकेल एफ. जिआनग्रेको के अनुसार- "समावेशी शिक्षा से अभिप्राय उन मूल्यों, सिद्धान्तों और प्रयासों के समूह से है जो विद्यार्थियों को चाहे, वे विशिष्ट हों अथवा नहीं, प्रभावकारी और सार्थक शिक्षा देने पर बल देता है।" इस परिभाषा से स्पष्ट है कि समावेशी शिक्षा का मतलब उन मूल्यों, सिध्दांतों और प्रयासों का समूह है जो यह सुनिश्चित करता है कि सभी छात्रों, चाहे वे सामान्य हों या विशेष आवश्यकताओं वाले को प्रभावी और अर्थपूर्ण शिक्षा प्राप्त हो। इसका उदेश्य सभी विघार्थियों को समान अवसर और सीखने का अनुकूल माहौल प्रदान करना है। समावेशित शिक्षा केवल एक शैक्षिक प्रणाली नहीं है, बल्कि यह समाज में समानता, न्याय, और भेदभाव के उन्मूलन का एक महत्वपूर्ण कदम है। यह बच्चों के अधिकारों का सम्मान करते हुए उन्हें एक समग्र और सशक्त नागरिक बनाने में मदद करती है। समावेशित शिक्षा का आदर्श समाज के सभी वर्गो के लिए समान अवसरों और अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करता है, और यह एक बेहतर और न्यायपूर्ण समाज की ओर अग्रसर करता है।सलमांका कान्फ्रेन्स 1994 के अनुसार- "एक समावेशी शिक्षा प्रणाली में विघालय को अन्य विद्यार्थियों के समान बनाना जिससे इन्हें अधिक से अधिक समाहित किया जा सके, दूसरे शब्दों में सभी बच्चों को उन्हीं के समुदाय में नियमित विद्यालयों में शिक्षा प्रदान की जाए।" इस परिभाषा से स्पष्ट है कि समावेशी शिक्षा का अर्थ ऐसी शिक्षा प्रणाली से है, जहाँ

विद्यालयों को सभी बच्चों के लिए समान और उपयुक्त बनाया जाए। इसका उद्देश्य यह है कि सभी बच्चों, विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों सहित को उनके समुदाय के सामान्य विघालयों में ही शिक्षा दी जाए, ताकि वे समान रूप से शिक्षा दी जाए, ताकि वे समान रूप से शिक्षा में भाग ले सकें और एकीकृत माहौल में विकसित हो सकें।

समावेशित शिक्षा की विशेषताएँ

सभी के लिए समान अवसरः समावेशित शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत यह है कि सभी बच्चों को समान शिक्षा का अवसर मिलना चाहिए। चाहे वह सामान्य बच्चे हों या विशेष आवश्यकता वाले बच्चे सभी को समान रूप से कक्षा में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होता है। यह शिक्षा का अधिकार हर बच्चे के लिए समान रूप से सुनिश्चित करना है।

विविधता का सम्मानः समावेशित शिक्षा में विविधता का सम्मान किया जाता है। इसका मतलब है कि बच्चों की भिन्नताएँ शिक्षा प्रक्रिया का हिस्सा बनती हैं। इस दृष्टिकोण से, बच्चों के बीच भेदभाव नहीं किया जाता, बल्कि उनकी भिन्नताओं को समझते हुए उनके लिए उपयुक्त शैक्षिक साधन और संसाधन प्रदान किए जाते हैं।

समाज में समरसताः समावेशित शिक्षा का उद्देश्य केवल बच्चों को शिक्षा देना नहीं है, बल्कि समाज में समरसता और समानता को बढ़ावा देना भी है। जब विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए हुए बच्चे एक साथ कक्षा में पढ़ाई करते हैं, तो वे एक दूसरे को समझते हैं, एक दूसरे से सीखते हैं, और सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा देते हैं।

शिक्षक और शिक्षण सामग्री का अनुकूलनः समावेशित शिक्षा में, शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है, ताकि वे विशेष जरूरतों वाले बच्चों को भी शिक्षा दे सकें। इसके अलावा, शैक्षिक सामग्री और शिक्षण विधियों में भी अनुकूलन किया जाता है, जैसे कि ब्रेल, साइन लैंग्वेज, और तकनीकी उपकरणों का उपयोग। इससे बच्चों की विविधता के हिसाब से शिक्षा देने में मदद मिलती है।

सहायक संसाधनः समावेशित शिक्षा में बच्चों के लिए विभिन्न सहायक संसाधन उपलब्ध कराए जाते हैं। उदाहरण के लिए, दिव्यांग बच्चों के लिए रैंप, विशेष शैक्षिक सामग्री, ट्यूटर या सहायक शिक्षक, आदि प्रदान किए जाते हैं। इस तरह के संसाधनों से बच्चों को अपनी शिक्षा में कोई कठिनाई नहीं होती।

समावेशित शिक्षा के लाभ

समानता और समान अवसरः समावेशित शिक्षा से सभी बच्चों को समान अवसर मिलते हैं, चाहे उनकी पृष्ठभूमि, शारीरिक स्थिति, या मानसिक क्षमता कुछ भी हो। इससे शिक्षा का अधिकार सभी के लिए सुनिश्चित होता है।

समाज में सुधारः जब बच्चे विभिन्न पृष्ठभूमियों और क्षमताओं के साथ एक साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं, तो वे सामाजिक समरसता और सहयोग की भावना विकसित करते हैं। इससे समाज में भेदभाव और असमानता की भावना कम होती है।

व्यक्तिगत विकासः समावेशित शिक्षा बच्चों को उनकी पूरी क्षमता तक पहुंचने का अवसर देती है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए भी यह शिक्षा का एक समान अवसर है, जिससे वे समाज में अपनी भूमिका निभाने के योग्य बन सकते हैं।

सामाजिक जिम्मेदारीः समावेशित शिक्षा समाज में जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा देती है। यह बच्चों को यह सिखाती है कि भिन्नताओं को स्वीकार करें और प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान करें। यह भविष्य में उन्हें अधिक संवेदनशील, सहिष्णु और समझदार नागरिक बनाएगी।

साक्षरता और जागरूकता का प्रसारः समावेशित शिक्षा से समाज में साक्षरता दर में सुधार आता है, क्योंकि यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी बच्चा शिक्षा से वंचित न रहे। इसके अलावा, यह शिक्षा को अधिक समग्र और समावेशी बनाती है, जो समाज में समग्र विकास को बढ़ावा देती है।

निष्कर्षः

समावेशित शिक्षा केवल एक शैक्षिक प्रणाली नहीं, बल्कि समानता, सामाजिक न्याय और अधिकारों के सम्मान को बढ़ावा देने का प्रभावी माध्यम है। इसका उद्देश्य सभी बच्चों, विशेषकर दिव्यांग, वंचित और विशेष जरूरतों वाले बच्चों को समान शैक्षिक अवसर प्रदान करना है। यह भेदभावरहित वातावरण में विविधता का सम्मान करते हुए बच्चों को मुख्यधारा में लाने का प्रयास करती है। समावेशित शिक्षा से समाज में समरसता, सहिष्णुता, और सहयोग की भावना विकसित होती है, जिससे एक न्यायपूर्ण और समावेशी समाज का निर्माण होता है। यह केवल शिक्षा में ही नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समता लाने में भी सहायक है।

संदर्भ सूची

1. Unesco, Policy Guidelines on Inclusion in Education, Unesco publisher, 2009, page no. 9-10
2. अग्रवाल, डॉ. के. के., भारत में शिक्षा का विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा-2, 2011, पृष्ठ सं. 1
3. किशोर, डॉ. अवधेश, आधुनिक भारत में शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा-2, 2009, पृष्ठ सं. 293-294
4. चौधरी, सरोज, "उच्च माध्यमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा की नीति, प्रावधान एवं समस्याएँ", शोध प्रबन्ध, कोटा विश्वविघालय, कोटा (राज.), 2021, पृष्ठ. सं.3
5. चौधरी, सरोज, "उच्च माध्यमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा की नीति, प्रावधान एंव समस्याएँ", शोध प्रबन्ध, कोटा विश्वविघालय, कोटा (राज.), 2021, पृष्ठ. सं.4
6. चौधरी, सरोज, "उच्च माध्यमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा की नीति, प्रावधान एंव समस्याएँ", शोध प्रबन्ध, कोटा विश्वविघालय, कोटा (राज.), 2021, पृष्ठ. सं.-3
7. चौधरी, सरोज, "उच्च माध्यमिक स्तर पर समावेशी शिक्षा की नीति, प्रावधान एंव समस्याएँ", शोध प्रबन्ध, कोटा विश्वविघालय, कोटा (राज.), 2021, पृष्ठ. सं.-3
8. https://wonderhindi-com/shiksha/

ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ବିକାଶକ୍ରମ ଓ ସ୍ୱାତନ୍ତ୍ର୍ୟ
(Development of Odia script and its uniqueness)

ସାରାଂଶ:

ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପିରୁ ବିକଶିତ। ସମଗ୍ର ଓଡ଼ିଶାରେ ଓଡ଼ିଆ ଅକ୍ଷରରେ ଲେଖାଯାଏ ଓ ଓଡ଼ିଆ ଭାଷା ବୋଲାଯାଏ। ବିଶ୍ୱରେ ବୈଜ୍ଞାନିକ ରୂପରେ ସଂରଚିତ ଲିପିସମୂହ ଓ ଲିଖନ ପ୍ରଣାଳୀ ମଧ୍ୟରୁ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ହେଉଛି ଗୋଟିଏ। ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ବାମରୁ ଡାହାଣକୁ ଲେଖାଯାଏ ଏବଂ ଏହା ଏକ ଧ୍ୱନ୍ୟାତ୍ମକ ଲିପି, ଅର୍ଥାତ ଶବ୍ଦ ଯେମିତି ଉଚ୍ଚାରଣ କରାଯାଏ ଠିକ ସେମିତି ଲେଖାଯାଏ। ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପିମାଳାରେ ୧୧ଟି ସ୍ୱରବର୍ଣ୍ଣ, ୨୫ଟି ବର୍ଗୀୟ ବ୍ୟଞ୍ଜନ, ୧୦ଟି ଅବର୍ଗୀୟ ବ୍ୟଞ୍ଜନ, ତିନୋଟି ଅଯୋଗବାହ ବ୍ୟଞ୍ଜନ – ଏପରି ହୋଇ ମୋଟ ୪୯ଟି ବର୍ଣ୍ଣ ସମେତ ଗୋଟିଏ ଯୁକ୍ତବର୍ଣ୍ଣ ଓ ଦୁଇଟି ଉପବର୍ଣ୍ଣ ବ୍ୟବହୃତ ହୋଇ ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାକୁ ସମୃଦ୍ଧ ଓ ବିଜ୍ଞାନସମ୍ମତ କରିଛି। ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ଉଲ୍ଲେଖନୀୟ ବୈଶିଷ୍ଟ୍ୟ ହେଉଛି ଏହା ବୃତ୍ତାକାର, ତେଣୁ ସୁନ୍ଦର ଓ ଆକର୍ଷଣୀୟ। ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ପ୍ରାଚୀନ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପିରୁ ଉତ୍ପତ୍ତି ଲାଭକରି ପରବର୍ତ୍ତୀ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି, ଗୁପ୍ତଲିପି, ମଧ୍ୟଯୁଗୀୟ କଳିଙ୍ଗ ଲିପି, ପ୍ରତ୍ନଓଡ଼ିଆ ଲିପି, ପ୍ରାଚୀନ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ଆଦି ସ୍ତର ଦେଇ ଆଧୁନିକ ରୂପପ୍ରାପ୍ତ ହୋଇଛି, ଯେଉଁଥିରେ ଭାରତ ତଥା ଓଡ଼ିଶାର ସମୃଦ୍ଧ ସାହିତ୍ୟିକ ତଥା ସାଂସ୍କୃତିକ ଐତିହ୍ୟ ଓ ମୂଲ୍ୟବୋଧର ବିକାଶ ଏବଂ ସଂରକ୍ଷଣ ଅନ୍ତର୍ଭୁକ୍ତ।

ଭିତ୍ତିଶବ୍ଦାବଳୀ:

ବିଜ୍ଞାନସମ୍ମତ ଭାଷା, ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି, ପ୍ରାଚୀନ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି, ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି, ପରବର୍ତ୍ତୀ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି, ଅଯୋଗବାହ ବର୍ଣ୍ଣ, ଓଡ଼ିଆ ବର୍ଣ୍ଣମାଳା, ପ୍ରତ୍ନବଙ୍ଗୀୟ/ Proto Bengali ଲିପି, ସ୍ୱୟଂସମ୍ପୂର୍ଣ୍ଣ ଲିପି।

ଉପକ୍ରମ : ଲିପି କଣ

ଧ୍ୱନିର ରୂପାୟିତ ସ୍ୱରୂପ ହେଉଛି ଲିପି। ଏହା ଧ୍ୱନିର ଲିପିବଦ୍ଧ ରୂପ। ଲିପିର ସାଙ୍କେତିକ ରୂପ ବର୍ଣ୍ଣ ରୂପେ ପରିଚିତ। ବିଶ୍ୱର ଯେକୌଣସି ଭାଷା ହେଉନା କାହିଁକି, ଲିପି ହେଉଛି ସେଇ ଭାଷାର ପ୍ରାଣସ୍ୱରୂପ। ମନୁଷ୍ୟର ସର୍ଜନଶୀଳ ପ୍ରବୃତ୍ତି, ଆବିଷ୍କାର କରିବାର ପ୍ରବଣତା ଓ ଉଦ୍ଭାବନ ମାନସିକତାର ମୂଲ୍ୟବାନ ଏବଂ ଶ୍ରେଷ୍ଠ ନିଦର୍ଶନମାନଙ୍କ ମଧ୍ୟରେ ଲିପିର ସ୍ଥାନ ସ୍ୱତନ୍ତ୍ର। ଆଧୁନିକ ମାନବ ନିର୍ମିତ ସଭ୍ୟତାର ଏହା ଏକ ସର୍ବଶ୍ରେଷ୍ଠ ବରଦାନ। ସେ ହୋଇପାରେ ଚିତ୍ରଲିପି, ଶବ୍ଦଲିପି, କ୍ୟୁନିଫର୍ମ ଲିପି ଅଥବା ସମ୍ପ୍ରତି ଅଧୂନୁକ ପଦ୍ଧତିରେ ଲେଖାଯାଉଥିବା ଯେକୌଣସି ପ୍ରତୀକାତ୍ମକ ରୂପ। ମନୁଷ୍ୟର ଅନୁଭବ ତଥା ଭାଷିକବ୍ୟବସ୍ଥାକୁ ସ୍ୱତନ୍ତ୍ର ସଂକେତ/ ପ୍ରତୀକର ରୂପାୟଣ ତଥା ଲେପନର ପ୍ରତିରୂପ ସାଧାରଣତଃ ଲିପି ନାମରେ ପରିଚିତ। ଏହି ଦୃଷ୍ଟିରୁ ବିଚାରକଲେ ଭାବ ଅଥବା ଭାଷାର ସାଙ୍କେତିକ ରୂପ ହେଉଛି ଲିପି। ଏହା ଭାଷାର ଏକ ପ୍ରତୀକାତ୍ମକ ଶୃଙ୍ଖଳା ଓ ବିଧାନ ଯାହାର ସହାୟତାରେ ଅନାୟାସରେ ଭାଷା ପ୍ରକାଶିତ ହେବାର ଯୋଗ୍ୟତା ଲାଭ କରିଥାଏ।

ପ୍ରାରମ୍ଭିକ ପର୍ଯ୍ୟାୟର ଲିଖନ ପ୍ରକ୍ରିୟାର ଆବିଷ୍କାର ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ୪୦୦୦ ବର୍ଷ ପୂର୍ବେ ହୋଇଥିବାର ଜଣାଯାଏ। ତେବେ ଲେଖିବାର ପୂର୍ବଜ୍ଞାନ ବିନା ହିଁ ଲିପି ଉଦ୍ଭାବିତ ହୋଇସାରିଥିବା କଥା ଇତିହାସରୁ ଜଣାପଡ଼େ। ବିଶ୍ୱର ପ୍ରତ୍ୟେକ ଲେଖାପ୍ରଣାଳୀ କ୍ରମଶ ପ୍ରୋଟୋ-ଲିଖନ ପ୍ରଣାଳୀରୁ ବିକଶିତ ହୋଇଛି ଯେଉଁଥିରେ ଅଳ୍ପ ସଂଖ୍ୟକ ଆଇଡୋଗ୍ରାମ୍ ଅନ୍ତର୍ଭୁକ୍ତ ହୋଇଥିଲା ଏବଂ ଏହା କଥିତ ଭାଷାକୁ ଅନୁରୂପ ଭାବ ସୂଚକ କରି ପ୍ରକାଶ କରିବାରେ ସମ୍ପୂର୍ଣ୍ଣ ସକ୍ଷମ ନଥିଲା । ଏଥିରେ ଏକ ବ୍ୟାପକ ମାନବୀୟ ଅବବୋଧ ବା ଅବଧାରଣାକୁ ପ୍ରକାଶ କରିବାର କ୍ଷମତାର ମଧ୍ୟ ଅଭାବ ଥିଲା। କାରଣ ବିଶ୍ୱର ପ୍ରତ୍ୟେକ ପ୍ରାଚୀନ ଲିପିର ଉତ୍ସ ପଥରଦେହ, ଗୁମ୍ଫା, ମାଟି, ତାମ୍ର ଫଳକ ଆଦିରେ ଲିପିବଦ୍ଧ ହୋଇଥିବା ଅବସ୍ଥାରେ ଦେଖାଯାଏ। ଏହି

ଲିପିର ଆଦିରୂପ କିପରି ଥିଲା, ତାହା ଏବେବି ସ୍ପଷ୍ଟ ହୋଇପାରି ନାହିଁ। କାରଣ ବିଶ୍ୱର ବିଭିନ୍ନ ସ୍ଥାନରୁ ଆବିଷ୍କୃତ ଗୁମ୍ଫାଚିତ୍ର କ୍ରମାନ୍ୱୟରେ ଅଙ୍କିତ ହୋଇ ନାହିଁ କିମ୍ବା ଦୀର୍ଘଦିନ ଅତିବାହିତ ହୋଇଯାଇଥିବା ହେତୁ ଭୂମିରୂପର ପରିବର୍ତ୍ତନ ଫଳରେ ଅନେକ ଗୁମ୍ଫାଚିତ୍ର ସମୟକ୍ରମେ ନଷ୍ଟ ହୋଇଯାଇଥିବା ଅନୁମାନ କରାଯାଏ। ତଥାପି ଏହି ଚିତ୍ର ନୂତନ ପ୍ରସ୍ତର ଯୁଗ ଅର୍ଥାତ ୧୦ହଜାର ବର୍ଷରୁ ୪୦,୦୦୦ ବର୍ଷ ତଳେ ଅଙ୍କିତ ହୋଇଥିଲା ବୋଲି ଗବେଷଣାରୁ ମୀମାଂସା କରାଯାଇଛି। ଆଫ୍ରିକା, ସ୍ପେନ, ଫ୍ରାନ୍ସ, ତୁର୍କୀସ୍ଥାନ, ଇରାକ ଓ ମିଶର ସହିତ ଭାରତର ମଧ୍ୟପ୍ରଦେଶର ଭୀମବାଟିକା, ଉତ୍ତରପ୍ରଦେଶ ସ୍ଥିତ ମିର୍ଜାପୁର, ଓଡ଼ିଶା ଅନ୍ତର୍ଗତ ବିକ୍ରମଖୋଲ, ଗୁଡ଼ହାଣ୍ଡି, ଯୋଗୀମଠ ଆଦି ବିଭିନ୍ନ ସ୍ଥାନରୁ ଆବିଷ୍କୃତ ସଙ୍କେତଧର୍ମୀ ଲିପିରେ ମାସ, ବର୍ଷର ହିସାବ ସହିତ ବିଭିନ୍ନ ମାନବୀୟ ଅନୁଭୂତି ଅନୁସାରୀ ବାର୍ତ୍ତାର ସୂଚନା ପ୍ରାପ୍ତ ହୋଇଥାଏ। କ୍ରମଶଃ ଏହିପ୍ରକାର ଚିତ୍ରର ବିକଳ୍ପ ମାଧ୍ୟମ ଆକାରରେ ଭିନ୍ନଭିନ୍ନ ସଂକେତର ପ୍ରୟୋଗ ଉପରେ ଗୁରୁତ୍ୱ ପ୍ରଦାନ କରାଗଲା ଯାହା ପରବର୍ତ୍ତୀ ସମୟରେ ଅକ୍ଷର/ଲିପି/ସଂଖ୍ୟା/ବର୍ଣ୍ଣ ଆଦି ନାମରେ ପରିଚିତ ହେଲା। ଭାରତର ବିଭିନ୍ନ ଅଞ୍ଚଳରେ ବ୍ୟବହୃତ ଲିପିଗୁଡ଼ିକ ଉଦୀଚ୍ୟ ବର୍ଗର ଲିପି ଓ ଦକ୍ଷିଣୀ ବର୍ଗର ଲିପି ଆକାରରେ ମୁଖ୍ୟତଃ ଦୁଇ ଭାଗରେ ବିଭକ୍ତ। ଉଦୀଚ୍ୟ ବର୍ଗର ଲିପିଗୁଡ଼ିକ ମଧ୍ୟରେ ଓଡ଼ିଆ, ବଙ୍ଗଳା, ଆସାମୀ, ମୈଥିଳୀ, ଗୁଜରାଟୀ, ମୋଡ଼ୀ, ନାଗରୀ, ଗୁରୁମୁଖୀ, ମହାଜନୀ, ଟାକରୀ, ଲଣ୍ଡା, ସାରଦା ଆଦି ଲିପି ଅନ୍ତର୍ଭୁକ୍ତ। ସେହିପରି ଦକ୍ଷିଣୀ ବର୍ଗର ଲିପିସମୂହ ମଧ୍ୟରେ ତେଲୁଗୁ, ତାମିଲ, କନ୍ନଡ଼, ମାଲୟାଲମ, ଗ୍ରନ୍ଥ, ଟୁଲୁ, ସିଂହଳୀ ଇତ୍ୟାଦି ଲିପି ଅନ୍ତର୍ଭୁକ୍ତ।୧

ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ଉତ୍ପତ୍ତି:

ପ୍ରାଚୀନ ବ୍ରାହ୍ମୀ ଲିପିରୁ ବିକଶିତ କଳିଙ୍ଗ ଲିପିରୁ ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ଉତ୍ପତ୍ତି ହୋଇଥିବା ଐତିହାସିକ ତଥ୍ୟରୁ ଜଣାପଡ଼େ। ଭୁବନେଶ୍ୱର ସ୍ଥିତ ଧଉଳିରୁ ପ୍ରାପ୍ତ ଅଶୋକଙ୍କ ଅନୁଶାସନ, ଜଉଗଡ ଶିଳାଲିପି, ଖାରବେଳଙ୍କ ସମୟରେ ଖଣ୍ଡଗିରୀ ସ୍ଥିତ ହାତିଗୁମ୍ଫା ଠାରେ ଖୋଦିତ ଶିଳାଲେଖ ଆଦିରୁ ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ମୂଳରୂପ ଓ ପ୍ରାଚୀନତା ସମ୍ପର୍କରେ ଅନେକ ତଥ୍ୟ ପ୍ରକାଶିତ ହୋଇଥାଏ। ଖାରବେଳ ଓ ଅଶୋକଙ୍କ ଅନୁଶାସନରେ ଲିପିବଦ୍ଧ ହୋଇଥିବା ଭାଷାର ପ୍ରକରଣରେ ପାର୍ଥକ୍ୟ ପରିଲକ୍ଷିତ ହୋଇଥାଏ। ଗବେଷକଙ୍କ ମତରେ ଅଶୋକଙ୍କ ଶିଳାଲେଖର ଭାଷା ବ୍ରାହ୍ମୀ ଲିପିରେ ଲିପିବଦ୍ଧ ହୋଇଥିବା ବେଳେ ଖାରବେଳଙ୍କ ଶିଳାଲେଖର ଭାଷା ପାଲିଭାଷାନୁସାରୀ ବିକଶିତ ହୋଇଥିବା ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାରେ ଉତ୍କୀର୍ଣ୍ଣ ହୋଇଥବର ଜଣାଯାଏ। ଫଳତଃ ଭାଷାବିତମାନେ ପାଲି ଭାଷାରୁ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ବିକଶିତ ହୋଇଛି ବୋଲି ତଥ୍ୟ ଉପସ୍ଥାପନ କରିଥାନ୍ତି। ଜର୍ମାନ ଭାଷାବିଜ୍ଞାନୀ ପ୍ରଫେସର ଅଲଡେନବର୍ଗ ମଧ୍ୟ ଓଡ଼ିଆ ଭାଷା ତଥା ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ମୂଳଉତ୍ସ ପାଲି ଭାଷା ସହିତ ସମ୍ବନ୍ଧିତ ବୋଲି ନିଜର ଗବେଷଣାତ୍ମକ ତଥ୍ୟ ପ୍ରକାଶ କରିଛନ୍ତି।

ବିଶ୍ୱର ସର୍ବପ୍ରଥମ ଲିପି ଭାବରେ ୬୦୦୦ ବର୍ଷ ତଳେ ମଧ୍ୟପ୍ରାଚ୍ୟ ମେସୋପୋଟାମିଆର ସୁମେର, ବାବିଲୋନ, ଆସିରିଆ, ପାରସ୍ୟ ଆଦି ଅଞ୍ଚଳରେ ପ୍ରଚଳିତ ହେଉଥିବା କ୍ୟୁନିଫର୍ମ ଓ ହେରାଗ୍ରାଫିକ୍ ଲିପିକୁ ଗ୍ରହଣ କରାଯାଇଥାଏ। ଗଢଣ ଦୃଷ୍ଟିରୁ ଏହି ଲିପି ଓଡ଼ିଶାର ପ୍ରସିଦ୍ଧ କୀଳକ ଲିପି ସଦୃଶ। ଉଭୟ କ୍ୟୁନିଫର୍ମ ଓ ହେରାଗ୍ରାଫିକ୍ ଲିପି ଚିତ୍ରଲିପିରୁ ବିକଶିତ ହୋଇଥିବାର ଜଣାଯାଏ।୨ ମିସର ଆଦି ଦେଶରେ ସେତେବେଳେ ଧର୍ମ ସମ୍ବନ୍ଧୀୟ ତଥ୍ୟାବଳୀ ଲିପିବଦ୍ଧ କରିବା ନିମିତ୍ତ ଏହି ଲିପିର ବ୍ୟବହାର ହେଉଥିଲା। ପରବର୍ତ୍ତୀ ପର୍ଯ୍ୟାୟରେ ପ୍ରାଶାସନିକ କ୍ଷେତ୍ରରେ ତଥା ବ୍ୟବସାୟ କ୍ଷେତ୍ରରେ ସେ ସମ୍ପର୍କିତ ତଥ୍ୟ ଓ ବିଭିନ୍ନ ବିବରଣୀ ଲିପିବଦ୍ଧ କରିବା ନିମିତ୍ତ ଏହି ଲିପିର ସହାୟତା ନିଆଯାଇଥିବା ଜଣାଯାଏ।

ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି : ଭାରତୀୟ ଭାଷାସମୂହର ମୌଳିକ ସ୍ୱରୂପ-

ଭାରତର ପ୍ରାଚୀନ ଲିପି ମାନଙ୍କ ମଧ୍ୟରେ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପିର ସ୍ଥାନ ସ୍ୱତନ୍ତ୍ର। ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ବ୍ୟତୀତ ସିନ୍ଧୁସଭ୍ୟତାର ଧୋଲବିରାସ୍ଥିତ ଫଳକ ଉପରେ ଖୋଦିତ କିଛି ଲିପି ଏବଂ ଭାରତର ବିଭିନ୍ନ ସ୍ଥାନରେ ପ୍ରାଗୈତିହାସିକ କାଳର କେତେକ ଚିତ୍ରାକୃତି ଲିପି ଖୋଦିତ ହୋଇଥିବାର ଦେଖାଯାଏ। ଏହି ଚିତ୍ରଲିପି ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ଠାରୁ ମଧ୍ୟ ପ୍ରାଚୀନ ହୋଇଥିଲେ ହେଁ ଅସ୍ପଷ୍ଟତା କାରଣରୁ

ଏହାର ପଠନ ବା ଚିହ୍ନଟ ସମ୍ଭବ ହୋଇପାରୁନଥିବା ହେତୁ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପିକୁ ପ୍ରାଚୀନ ଲିପି ଭାବରେ ଗ୍ରହଣ କରାଯାଇଛି। ତେଣୁ ଭାରତୀୟ ଲିପିସମୂହର ମୂଳ ଆଧାର ବା ମୂଳସୂତ୍ର ଭାବରେ ଏହି ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପିର ଗୁରୁତ୍ୱପୂର୍ଣ୍ଣ ଭୂମିକା ରହିଛି। ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ସମ୍ଭବତଃ ଚିତ୍ରଲିପିରୁ ସୃଷ୍ଟି ହୋଇଥିବା ଜଣାଯାଏ। କେତେକ ତାମ୍ରଲିପି ଓ ପଥର ଦେହରେ ଲେଖା ଯାଇଥିବା ଚିତ୍ରତୁଲ୍ୟଲିପି ଗୁଡ଼ିକର ଅଧ୍ୟୟନ ଆଧାରରେ ସେଗୁଡ଼ିକ ଚିତ୍ରଲିପି ନାମରେ ପରିଚିତ। ଏଗୁଡ଼ିକୁ ଅଦ୍ୟାବଧି ପାଠ କରାଯାଇପାରି ନାହିଁ। ଐତିହାସିକ ଶାମଶାସ୍ତ୍ରୀଙ୍କ ସିଦ୍ଧାନ୍ତ ଅନୁସାରେ ଦେବଦେବୀଙ୍କର ପୂଜାଆରାଧନା ନିମିତ୍ତ ବ୍ୟବହୃତ ଭିନ୍ନଭିନ୍ନ ଉପକରଣ ଗୁଡ଼ିକର ଅନୁକରଣ ଆଧାରରେ ଏହି ଲିପି ନାମିତ ହୋଇ ବିକଶିତ ହୋଇଥିବା ଜଣାଯାଏ। ଅନ୍ୟ କେତେକ ଭାଷାବିଶାରଦୀ ଗବେଷଣାଲବ୍ଧ ଅନୁଭୂତି ଓ ସିଦ୍ଧାନ୍ତ ଆଧାରରେ ଫିନିସୀୟ ଲିପିରୁ କ୍ରମଶ ବ୍ରାହ୍ମୀ ଏବଂ ବିଶ୍ୱର ଅନ୍ୟ ଲିପି ଗୁଡିକ ବିକଶିତ ହୋଇଛି ବୋଲି ପ୍ରକାଶ କରିଛନ୍ତି। ଇଉରୋପୀୟ ଭାଷାଗବେଷକଙ୍କ ମତାନୁସାରେ ଇଜିପ୍ଟର ଚିତ୍ରଲିପି ବା ଚିତ୍ରଲେଖ ପଦ୍ଧତି ଆଧାରରେ ଫିନିସୀୟ ଲିପି ଓ ଆର୍ମାନୀୟ ଲିପି ସୃଷ୍ଟି ହୋଇଛି। ତାଙ୍କ ମତରେ ଫିନିସୀୟ ଲିପିରୁ ଗ୍ରୀକ୍, ଲାଟିନ ପ୍ରଭୃତିରେ ବ୍ୟବହୃତ ରୋମକ ଲିପିସମୂହ ବିକଶିତ ହୋଇଥିବା ବେଳେ ଆର୍ମାନୀୟ ଲିପିରୁ ହିବ୍ରୁଲିପି, ପାରସିକଲିପି, ଭାରତର ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି, ଦେବନାଗରୀଲିପି ଓ ଚୀନର ମୋଙ୍ଗଲଲିପି, ମାନ୍ଚୁ ଲିପି ଆଦି ବିକଶିତ ହୋଇଛି। ଭାରତୀୟ ଲିପି ସମ୍ପର୍କରେ ଗବେଷଣା କରିଥିବା ବିଶିଷ୍ଟ ଗବେଷକ ବ୍ୟୁହଲରଙ୍କ ଉପସ୍ଥାପିତ ତଥ୍ୟ ଅନୁସାରେ ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ୮୦୦ ଶତାବ୍ଦୀ ବେଳକୁ ସେମିଟିକ ଲିପି ଭାରତରେ ପ୍ରବେଶ କରିଥିଲା। ସମ୍ଭବତଃ ଏହି ସେମିଟିକ ଲିପିରୁ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ବିକଶିତ ହୋଇଛି ବୋଲି ଅଧ୍ୟାପକ ବ୍ୟୁହଲର ପ୍ରକାଶ କରିଛନ୍ତି।୩

ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ନାମକରଣ ପ୍ରସଙ୍ଗରେ ବିଭିନ୍ନ ବ୍ୟକ୍ତି ତଥା ଗବେଷକଙ୍କର ଭିନ୍ନଭିନ୍ନ ସିଦ୍ଧାନ୍ତ ରହିଛି। ଚୀନ ବିଶ୍ୱକୋଷ 'ଫା-ବାନ-ଶୁ-ଲିନ'ର ତଥ୍ୟ ଅନୁସାରେ ବିଶ୍ୱରେ ବ୍ରାହ୍ମୀ, କଇଅଲୁ ଓ ଚନସଜୀ ଏହିପରି ୩ଟି ଲିପି ପ୍ରଚଳିତ। ଚୈନିକ ବିଶ୍ୱକୋଷ ମତାନୁସାରେ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପିର ସ୍ରଷ୍ଟା ହେଉଛନ୍ତି ବ୍ରହ୍ମା ବା ଫାନ। ଜୈନଗ୍ରନ୍ଥ ଭଗବତୀ ସୂତ୍ର ପ୍ରଦତ୍ତ ମତାନୁସାରେ ତୀର୍ଥଙ୍କର ରଷଭନାଥ ନିଜ କନ୍ୟା ବର୍ମ୍ମୀରଙ୍କ ଶିକ୍ଷାଲାଭ ନିମିତ୍ତ ପ୍ରଥମେ ଏକ ଅକ୍ଷର ବା ଲିପିମାଳାର ଆବିଷ୍କାର କରିଥିବା ହେତୁ ତାଙ୍କରି ନାମାନୁସାରେ ଏହା ବ୍ରହ୍ମିଲିପି ହୋଇଥିବର ଜଣାଯାଏ। ପ୍ରସିଦ୍ଧ ଐତିହାସିକ ଆଲବେରୁଣୀଙ୍କ ସିଦ୍ଧାନ୍ତ ଅନୁସାରେ ଏହିଲିପି ବ୍ରହ୍ମାଙ୍କଦ୍ୱାରା ଆବିଷ୍କୃତ ହୋଇଥିବା ହେତୁ ଏହା ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ନାମରେ ପରିଚିତ। ଗବେଷକ ଡକ୍ଟର ଶାମଶାସ୍ତ୍ରୀଙ୍କ ମତାନୁସାରେ ନିର୍ଦ୍ଧିଷ୍ଟ କେତୋଟି ଅକ୍ଷରକୁ ବିଭିନ୍ନ ଦେବଦେବୀ, ଦେବତାଙ୍କ ନଗର ଆଦି ସହିତ ସମ୍ବନ୍ଧାୟିତ କରିବା ସହିତ ତନ୍ତ୍ର ସାଧନା କ୍ଷେତ୍ରରେ ବ୍ୟବହୃତ ପତ୍ର, ଫଳକାଦିରେ ରେଖାଚିତ୍ର-ଅନୁସାରୀ ଦେବଦେବୀ ଆକୃତି ଅଙ୍କନ କରାଯାଉଥିଲା। ବ୍ରାହ୍ମୀ ଲିପିରୁ ବିକଶିତ ହୋଇଥିବା ଏକ ସ୍ୱତନ୍ତ୍ର ଲିପି ଦେବନାଗରୀ ଲିପି ନାମରେ ମଧ୍ୟ ପରିଚିତ। ଏହିସବୁ ମତ ତର୍କ ଆଧାରିତ ହୋଇଥିଲେ ସୁଦ୍ଧା ଭାରତୀୟ ପ୍ରାଚୀନ ଲିପିର ଉଦ୍ଭବ ଓ ବିକାଶଧାରା ଅନୁଶୀଳନ କ୍ଷେତ୍ରରେ ସତ୍ୟଶୀଳ ତଥ୍ୟ ଅନୁସନ୍ଧାନ କ୍ଷେତ୍ରରେ ଏହି ମତ ସବୁ ବାଧକ ନହୋଇ ସହାୟକ ହୋଇଥାନ୍ତି।

ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ସମସ୍ତ ଭାରତୀୟ ଭାଷା ସମୂହର ଜନନୀ ବା ମୂଳଉତ୍ସ ଭାବରେ ସ୍ୱୀକୃତ। ଏହା ଅଶୋକଙ୍କ ସମୟରେ ପ୍ରଚଳିତ ତଥା ପ୍ରାଶାସନିକ କ୍ଷେତ୍ରରେ ବ୍ୟବହୃତ ହେଉଥିବାର କଥା ଭାଷାତତ୍ତ୍ୱବିତ ମାନଙ୍କ ପ୍ରଦତ୍ତ ତଥ୍ୟରୁ ଜଣାଯାଏ। ତେଣୁ ଏହାର ଆନୁମାନିକ ସମୟ ଖଣ୍ଡ ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ୩୦୦ କିମ୍ବା ତା ଠାରୁ କିଛିବର୍ଷ ଅଧିକ ମଧ୍ୟ ହୋଇଥାଇପାରେ। ବିଶିଷ୍ଟ ଐତିହାସିକ ସତ୍ୟ ନାରାୟଣ ରାଜଗୁରୁ ଅଶୋକଙ୍କ ସମୟରେ ଏହା ବ୍ୟାବହାରିକ ଭାଷା ରୂପେ ଗୁରୁତ୍ୱ ଲାଭ କରିଥିବା ହେତୁ ଏହାର ପ୍ରକୃତ ସମୟ ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ୩୦୦ ହୋଇଥିବା ପ୍ରକାଶ କରିବା ସହିତ ଏହି ଲିପିକୁ 'ଅଶୋକାକ୍ଷର' ନାମରେ ନାମିତ କରିଛନ୍ତି। ପରବର୍ତ୍ତୀ କାଳରେ ଏହି ବ୍ରାହ୍ମୀମିଲିପିରୁ କିପରି ଭିଭିନ୍ନ ଭାରତୀୟ ଲିପି ବିକଶିତ ହୋଇଛି, ଏକ ରେଖାଚିତ୍ର ମାଧ୍ୟମରେ ତାହା ଦର୍ଶାଇବାର ପ୍ରୟାସ କରାଯାଇଛି।

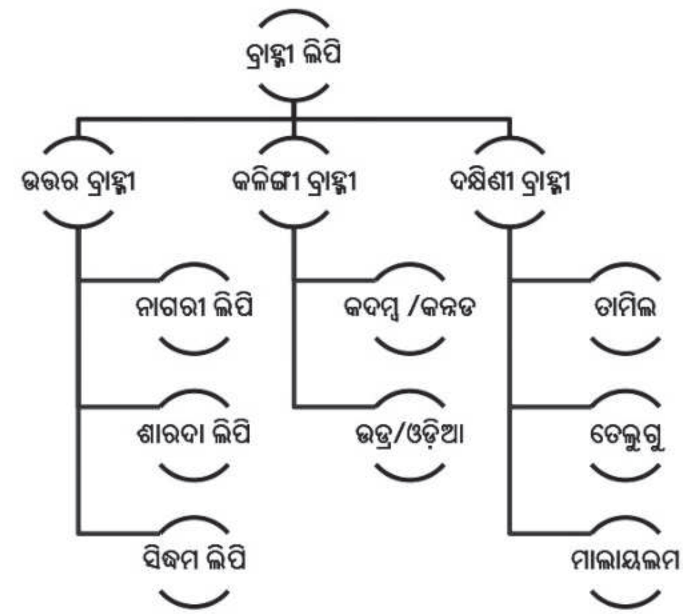

ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପିର ସ୍ୱାତନ୍ତ୍ର୍ୟ:

ଅଶୋକଙ୍କ ଶାସନ ସମୟରେ ଲିଖନକଳାର ସଂପୂର୍ଣ୍ଣ ବିକାଶ ହୋଇନଥିଲେ ମଧ୍ୟ ଲିଖନର ଉପାଦେୟତା ପୂର୍ଣ୍ଣତଃ ବିକଶିତ ହୋଇସାରିଥିଲା। ଫଳରେ ଅଶୋକଙ୍କ ଦ୍ୱାରା ବିଭିନ୍ନ ସ୍ଥାନରେ ଖୋଦିତ ହୋଇଥିବା ଶିଳାଲେଖ ତଥା ଅନୁଶାସନ ଗୁଡ଼ିକରୁ ପ୍ରାପ୍ତ ଲେଖାମାନଙ୍କରୁ ବ୍ରାହ୍ମୀ ଲିପିର ସାଧାରଣ ବୈଶିଷ୍ଟ୍ୟ ଗୁଡ଼ିକ ଲକ୍ଷ୍ୟକରି ହୁଏ। ଏଠାରେ ବ୍ରାହ୍ମୀ ଲିପିର କେତୋଟି ଲକ୍ଷ୍ୟଣୀୟ ବୈଶିଷ୍ଟ୍ୟ ତଥା ସ୍ୱାତନ୍ତ୍ର୍ୟ ବିଷୟରେ ସୂଚନା ପ୍ରଦାନ କରାଯାଇଛି।

- ଅକ୍ଷରଗୁଡ଼ିକ ଧ୍ୱନିତାତ୍ତ୍ୱିକ ବିଭାଜନ କ୍ଷମ।
- ଏହି ଲିପି ୬୪ଗୋଟି ଧ୍ୱନି ସଂକେତ ବିଶିଷ୍ଟ।
- ଏଥିରେ ଅଯୋଗବାହ ବର୍ଣ୍ଣ ଯଥା- ଅନୁସ୍ୱାର,ବିସର୍ଗ, ଚନ୍ଦ୍ରବିନ୍ଦୁ ଇତ୍ୟାଦି ସନ୍ନିବେଶିତ ହୋଇଛି।
- ଏହି ଲିପିରେ ହ୍ରସ୍ୱ ଓ ଦୀର୍ଘ ମାତ୍ରାର ବ୍ୟବହାର ରହିଛି।
- ଏଥିରେ ବ୍ୟଞ୍ଜନଧ୍ୱନି ସହିତ ସ୍ୱରଧ୍ୱନିର ସମ୍ବନ୍ଧ ଦେଖିବାକୁ ମିଳେ।
- ଏହି ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ବା ଅଶୋକଙ୍କ ସମୟର ଖୋଦିତ ଲିପି ସାଧାରଣତଃ ରେଖାମାତ୍ରିକ।
- କେତେକ ଲିପିର ଉପରିଭାଗ ରେଖାମୁକ୍ତ।
- କେତେକ କ୍ଷେତ୍ରରେ ଏହି ଲିପିର ସାମାନ୍ୟ ଗୋଲାକୃତି ରୂପ ମଧ୍ୟ ଦେଖିବାକୁ ମିଳେ।
- ଏଥିରେ ଯୁକ୍ତାକ୍ଷରଯୋଗ ହୋଇଥିବା ଦେଖିବାକୁ ମିଳେ ନାହିଁ।
- ଏହି ଲିପିର ଅକ୍ଷରଗୁଡ଼ିକର ଉଚ୍ଚତା ସମାନ ବା ଏକ ସମାନ୍ତରାଳରେ ରହିଥିବା ପରି ଦେଖାଯାଏ।
- ସ୍ଥଳବିଶେଷରେ ଅର୍ଦ୍ଧବୃତ୍ତ, ବୃତ୍ତ, କୋଣାକାର, ସରଳରୈଖିକ, ବିନ୍ଦୁବିଶିଷ୍ଟ ଅକ୍ଷର ରହିଥିବା ଦେଖିବାକୁ ମିଳେ।

ଏହି ଲିପିର ଉପର ଲିଖିତ ବୈଶିଷ୍ଟ୍ୟ ଗୁଡ଼ିକ କେତେକାଂଶରେ ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ଲକ୍ଷଣ ସହିତ ସାମଞ୍ଜସ୍ୟ ରହିଛି। ତେଣୁ ଭାରତରେ ବିକଶିତ ହୋଇଥବା ଲିପିଗୁଡ଼ିକ ମଧ୍ୟରୁ ସର୍ବପ୍ରାଚୀନ ଲିପି ଭାବରେ ଓଡ଼ିଆ ଭାଷା ସମେତ ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ଭାରତୀୟ ଭାଷାର ସମ୍ବନ୍ଧ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ସହିତ କୌଣସି ନା କୌଣସି ସୂତ୍ରରେ ରହିଥିବାର ଜଣାଯାଏ।

ଐତିହାସିକ କାଶିପ୍ରସାଦ ଜୟଷ୍ୱାଲ ଝାରସୁଗୁଡ଼ା ସ୍ଥିତ ବିକ୍ରମଖୋଲ ଗୁମ୍ଫାଚିତ୍ରକୁ ପ୍ରାକ୍ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ରୂପେ ଚିହ୍ନଟ କରିଛନ୍ତି। ଏକ ବୃହଦାକାର ଆୟତନ ବିଶିଷ୍ଟ ପଥର ଦେହରେ ଉତ୍ତୋଳନ କରାଯାଇଥିବା ଏହି ଚିତ୍ର ପ୍ରକୃତରେ କୌଣସି ସାଧାରଣ ଚିତ୍ର ନୁହଁ ବରଂ ଏହା କେତେକ ଅକ୍ଷରର ସାଙ୍କେତିକ ଚିତ୍ରରୂପ ବୋଲି ସେ ପ୍ରକାଶ କରିଛନ୍ତି। ତାଙ୍କ ମତରେ ଏହା ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ଅନ୍ତର୍ଗତ ଅକ୍ଷର ଗୁଡିକର ପୂର୍ବାବସ୍ଥା ଏବଂ ଏହା ଡାହାଣରୁ ବାମକୁ ଲେଖାଯାଉଥିଲା ବୋଲି ସେ ସୂଚନା ଦେଇଛନ୍ତି। କାଶିପ୍ରସାଦ ଜୟଷ୍ୱାଲଙ୍କ ପ୍ରଦତ୍ତ ଏହି ସିଦ୍ଧାନ୍ତ ଅନୁସାରେ ଗୋଟିଏ କଥା ସ୍ପଷ୍ଟ ଯେ ଏହା ଭାରତର ସର୍ବପ୍ରାଚୀନ ଲିପି ତଥା ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପିର ପୂର୍ବରୂପ। ଏହା ପ୍ରାକ୍ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ନାମରେ ପରିଚିତ। ଗବେଷକ ମାନଙ୍କ ମତାନୁସାରେ ଓଡ଼ିଶାର ବିଭିନ୍ନ ଅଞ୍ଚଳରୁ ପ୍ରାୟତଃ ୫୫ଟି ଗୁମ୍ଫା ଓ ଭିନ୍ନଭିନ୍ନ ଧରଣର ହାରାହାରି ୫୭୭୫ଟି ଚିତ୍ର ଆବିଷ୍କୃତ ହୋଇଛି। ସେଗୁଡ଼ିକ ମଧ୍ୟରୁ କଳାହାଣ୍ଡି ଜିଲ୍ଲା ଅନ୍ତର୍ଗତ ଗୁଡ଼ହାଣ୍ଡି ଓ ନୂଆପଡ଼ା ସ୍ଥିତ ଯୋଗୀମଠ ଗୁମ୍ଫାର ଚିତ୍ର ଉଲ୍ଲେଖନୀୟ। ଗୁଡ଼ହାଣ୍ଡି ଗୁମ୍ଫାକାନ୍ଥରେ ଗେରୁଆ ରଙ୍ଗରେ ବିଭିନ୍ନ ପ୍ରକାରର ଚିତ୍ର ଅଙ୍କିତ ହୋଇଥିବା ଦେଖାଯାଏ। ଏଠାରେ ଥିବା ଏକ ଚିତ୍ରରେ ଲୋକଟିଏ ଏକ ଧାବମାନ ହରିଣ ଉପରକୁ ପଥରର ଅସ୍ତ୍ରରେ ଶିକାର କରିଥିବା ଚିତ୍ର ପ୍ରତିକିତ ହୋଇଛି। ବ୍ୟକ୍ତିଜଣକ ଡାହାଣ ହାତରେ ଅସ୍ତ୍ରନିକ୍ଷେପ ପୂର୍ବକ ପଶୁ ଶିକାର କରିବାରେ ସଫଳ ହୋଇଥିବା କାରଣ ବଶତଃ ତାର ମୁଖମଣ୍ଡଳରେ ଏକ ଆନନ୍ଦମୟ ଭାବ ପ୍ରକାଶିତ ହୋଇଛି। ଅପର ପକ୍ଷରେ ଅସ୍ତ୍ରାଘାତ ହରିଣଟିଏ ପଛକୁ ଗ୍ରୀବାଭାଙ୍ଗି ଅତି ଅସହାୟ ଓ ଭୟାତୁର ଚାହାଁଣିରେ ଶିକାରୀକୁ ଅନାଇ ରହିଛି। ଗବେଷକମାନଙ୍କ ବିଚାରରେ ଏହା ବ୍ରାହ୍ମୀ ଲିପିର ପୂର୍ବରୁ ବ୍ୟବହୃତ ହେଉଥିବା ଚିତ୍ରଲିପି ହୋଇଥାଇପାରେ।

ଏହି ଧରଣର ଚିତ୍ର ସହିତ ଏହି ମଠ ଓ ଗୁମ୍ଫାରେ କିଛି ବର୍ଗାକାର, ଆୟତାକାର , ବୃତ୍ତାକାର ବିଶିଷ୍ଟ ଚିତ୍ର ମଧ୍ୟ ଅଙ୍କନ କରାଯାଇଥିବା ଦେଖିବାକୁ ମିଳେ। ଏଗୁଡ଼ିକୁ ଅନୁଧ୍ୟାନ କଲେ ଜଣାପଡ଼େ ଯେ ଜନବସତି ଅନ୍ତର୍ଗତ କୌଣସି ଗୃହକୁ, ବସ୍ତିକୁ ଅଥବା କୌଣସି ନଗରର ନକ୍ସା ଏଠାରେ ଅଙ୍କନ କରାଯାଇଛି। ଐତିହାସିକମାନଙ୍କ ଦ୍ୱାରା ମେସୋପୋଟାମିଆରୁ ଆବିଷ୍କୃତ ହୋଇଥିବା ବିଭିନ୍ନ ମୃଣ୍ମୟ ମାନଚିତ୍ର ଖ୍ରୀ.ପୂ. ୫୦୦୦ ବର୍ଷ ପୂର୍ବର ନଗର ସଭ୍ୟତାକୁ ବିଶେଷିତ କରୁଥିବାର ଜଣାଯାଏ। ଓଡ଼ିଶାର ବିଶିଷ୍ଟ ଐତିହାସିକ ପ୍ରଫେସର ନବୀନକୁମାର ସାହୁଙ୍କ ପ୍ରାଚୀନ ଓଡ଼ିଆ ଇତିହାସ ପୁସ୍ତକ ପ୍ରକାଶିତ ତଥ୍ୟ ଅନୁସାରେ ଗୁଡ଼ହାଣ୍ଡି ଓ ନୂଆପଡ଼ା ସ୍ଥିତ ଯୋଗୀମଠ ଗୁମ୍ଫାର ଚିତ୍ର ଗୁଡିକ ପ୍ରାୟତଃ ୨୦ହଜାର ବର୍ଷ ତଳର ହୋଇଥିବା ଅନୁମେୟ।

ସେହିପରି ନୂଆପଡା ସ୍ଥିତ ଯୋଗୀମଠ ଗୁମ୍ଫାର ଚିତ୍ର ଲିପି, ବିକ୍ରମଖୋଲ ଗୁମ୍ଫାର ଚିତ୍ର ଲିପି ସମେତ ଓଡ଼ିଶାର ଅନ୍ୟାନ୍ୟ ସ୍ଥାନରୁ ମିଳିଥିବା ଲିପି ଗୁଡ଼ିକର ସମୟସୀମା ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ୩୦୦୦ ବର୍ଷ ପୁରୁଣା ହୋଇଥିବା ଆକଳନ କରାଯାଉଛି ଏବଂ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ସହିତ ଏହି ଚିତ୍ରଲିପି ଗୁଡିକର ସମ୍ବନ୍ଧ-ସୂତ୍ର ନିରୂପଣ କରାଯାଇଥିବା ହେତୁ ଏହା ଯେପରି ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପିର ପୂର୍ବ ପ୍ରଚଳିତ ଲିପି ଅନୁରୂପ ଓଡ଼ିଶାର ଏହିସବୁ ଚିତ୍ରଲିପି କେଉଁଠି ନା କେଉଁଠି ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ପୂର୍ବରୁ ବିଦ୍ୟମାନ ଥିବାରୁ; ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ଆଦି ରୂପ ହୋଇଥିବା ଅସ୍ୱାଭାବିକ ହୋଇନପାରେ।

ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର କ୍ରମବିକାଶ:

ଭାରତବର୍ଷର ଅବିଷ୍କୃତ / ଲିଖିତ ଓ ପଠିତ ଲିପମଧ୍ୟରେ ସର୍ବପ୍ରଚୀନ ଲିପି ହେଉଛି ବ୍ରାହ୍ମୀ ଲିପି। ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ପୂର୍ବରୁ ଅସ୍ପଷ୍ଟ ଓ ପଠନ ଅନୁପଯୋଗୀ ଅବସ୍ଥାରେ ମିଳୁଥିବା କେତେକ ଚିତ୍ରତୁଲ୍ୟ ଲିପି ବା ଚିତ୍ରଲିପି ପ୍ରାକ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ନାମରେ ପରିଚିତ। କେତେକଙ୍କ ମତରେ ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ୨୦୦୦୦ ବର୍ଷରୁ ଆରମ୍ଭ କରି ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ୩୦୦ ଅର୍ଥାତ ଅଶୋକଙ୍କ ସମୟ

ପର୍ଯ୍ୟନ୍ତ ଏହାର ନିଦର୍ଶନ ରହିଛି। ଝାରସୁଗୁଡାର ବିକ୍ରମଖୋଲ ଗୁମ୍ଫା ଏବଂ ନୂଆପଡ଼ା ସ୍ଥିତ ଯୋଗୀମଠ ଗୁମ୍ଫା ଚିତ୍ରଲିପି ବା ଲିପି ଏହି ପ୍ରାକ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ହୋଇଥିବାର ଜଣାଯାଏ। ଏହାର ପରବର୍ତ୍ତୀ ଲିପି ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ଭାବରେ ପରିଚିତ। ଏହାର ସମୟ ଆନୁମାନିକ ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ୫୦୦ ରୁ ୧୦୦୦ ବର୍ଷ। ବର୍ତ୍ତମାନ ସମୟରେ ବିଭିନ୍ନ ଭାରତୀୟ ଆର୍ଯ୍ୟଭାଷା କ୍ଷେତ୍ରରେ ବ୍ୟବହୃତ ହେଉଥିବା ଅକ୍ଷର ବ୍ରାହ୍ମୀ ଲିପିର ବିକଶିତ ରୂପ। ପ୍ରାଚୀନ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପିରୁ ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ଉଦ୍ଭବ ସମ୍ଭବ ହୋଇଛି।୪

ପ୍ରାଚୀନ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି :

ଏହି ଲିପି ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ପଞ୍ଚମ ଶତାବ୍ଦୀରୁ ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ଦ୍ୱିତୀୟ ଶତାବ୍ଦୀ ମଧ୍ୟରେ ପ୍ରଚଳିତ ହେଉଥିବାର ଜଣାଯାଏ। ଏହା ମୌର୍ଯ୍ୟକାଳୀନ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ନାମରେ ମଧ୍ୟ ପରିଚିତ। ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ତୃତୀୟ ଶତାବ୍ଦୀ ବେଳକୁ ଅଶୋକଙ୍କ ଧଉଳି ଓ ଜଉଗଡ଼ ଧର୍ମାନୁଶାସନରେ ଏହାର ଦୃଷ୍ଟାନ୍ତ ଦେଖିବାକୁ ମିଳେ। ଏହି ଲିପିରେ ବିନ୍ଦୁ ଯୋଗ ନ ଥିଲା। ପରେ ଲିପିକାରମାନେ ଏଥିରେ ବିନ୍ଦୁ ସହିତ ଚୂଳ ଯୋଗ ପୂର୍ବକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ବଢାଇଛନ୍ତି।

ପରବର୍ତ୍ତୀ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି:

ଏହି ଲିପିର ସମୟ ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ପ୍ରଥମରୁ ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ତୃତୀୟ ଶତାବ୍ଦୀ। ଏହି ସମୟଖଣ୍ଡରେ କୁଶାଣ ସାଶନ ରହିଥିବା ହେତୁ ଏହି ଲିପି କୁଶାଣ କାଳୀନ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି ନାମରେ ପରିଚିତ। ଏହି ସମୟର ଲିପିରେ ଏକ ପ୍ରକାର ବିନ୍ଦୁ/ଚୂଳ ଯୋଗ ଉପରେ ଗୁରୁତ୍ୱ ଦିଆଗଲା। ଏହି ବିନ୍ଦୁଟି କ୍ରମଶଃ ତ୍ରିକୋଣ/ଚତୁଷ୍କୋଣ ଆକାର ଧାରଣ କଲା । ଏହି ରୂପେ ଅକ୍ଷର ପରିବର୍ତ୍ତିତ ହେବାର ହେତୁ ଗୁଡ଼ିକ ହେଲା- ଅକ୍ଷରକୁ ସରଳ, ସ୍ପଷ୍ଟ ,ସୁଖପାଠ୍ୟ କରିବା; ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ବୃଦ୍ଧି, ସହଜାଲେଖ୍ୟ କରିବା, ଅକ୍ଷର ଗୁଡ଼ିକୁ ପତ୍ରାଦିରେ ଅଧିକ ସ୍ଥାୟୀ କରିବା ଆଦି କାରଣ ପ୍ରଧାନ। କିନ୍ତୁ ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ତୃତୀୟ ଶତାବ୍ଦୀରୁ ଏଯାବତ ଓଡ଼ିଆରେ ବ୍ୟବହୃତ 'ଠ' ନିଜର ଆକାର ପରିବର୍ତ୍ତିତ କରିନାହିଁ। ଉଦୟଗିରି ସ୍ଥିତ ଖାରବେଳଙ୍କ ହାତିଗୁମ୍ଫା ଶିଳାଲେଖ ଏହି ଲିପିର ନିଦର୍ଶନ।

ଗୁପ୍ତଲିପି:

ଏହି ଲିପିର ସମୟ କାଳ ହେଉଛି ଖ୍ରୀଷ୍ଟୀୟ ଚତୁର୍ଥ ଶତାବ୍ଦୀରୁ ସପ୍ତମ ଶତାବ୍ଦୀ। ଉତ୍ତର ଭାରତର ଗୁପ୍ତବଂଶୀ ସମ୍ରାଟ ଶାସନ କାଳରେ ପ୍ରଚଳିତ ଲିପି ଗୁପ୍ତଲିପି ନାମରେ ପରିଚିତ। ଏହା ପ୍ରାଚ୍ୟ, ପ୍ରତୀଚ୍ୟ – ଏହିପରି ଦ୍ୱିଧା ବିଭକ୍ତ। ଏହି ଲିପି ଅନ୍ତର୍ଗତ ଖ,ଗ,ଣ,ଥ,ଦ,ଶ ଆଦି ଅକ୍ଷର ସହିତ ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଅକ୍ଷରର ସାଦୃଶ୍ୟ ରହିଛି। କଳାହାଣ୍ଡିରୁ ପ୍ରାପ୍ତ ମହାରାଜା ତୁଷ୍ଟିକରଙ୍କ ତାମ୍ରପତ୍ର (୪ର୍ଥ ଶତାବ୍ଦୀ), ଧର୍ମରାଜଙ୍କ ସୁମଣ୍ଡଳ ତାମ୍ରଶାସନ (୫୭୦ ଖ୍ରୀଷ୍ଟାବ୍ଦ), ମହାରାଜା ଶମ୍ଭୁଯଶଙ୍କର ସୋରୋ ତାମ୍ରଶାସନ (୫୮୦ ଖ୍ରୀଷ୍ଟାବ୍ଦ), ଲୋକାବିଗ୍ରଙ୍କର କଣାସ ତାମ୍ରଶାସନ (୫୯୯ ଖ୍ରୀଷ୍ଟାବ୍ଦ), ଶିବରାଜଙ୍କ ପଟିଆ କିଲ୍ଲା ତାମ୍ରଶାସନ (୬୦୨ ଖ୍ରୀଷ୍ଟାବ୍ଦ), ମାଧବ ବର୍ମାଙ୍କ ଗଞ୍ଜାମ ତାମ୍ରଶାସନ (୬୨୦ ଖ୍ରୀଷ୍ଟାବ୍ଦ) ଗୁପ୍ତଲିପିର କେତେକ ନିଦର୍ଶନ।

ମଧ୍ୟଯୁଗୀୟ କଳିଙ୍ଗ ଲିପି:

ଏହାର ବ୍ୟାବହାରିକ ସମୟ ହେଉଛି ସପ୍ତମ ଶତାବ୍ଦୀରୁ ଏକାଦଶ ଶତାବ୍ଦୀ। ଏହି ସମୟରେ କଳିଙ୍ଗର ଶାସନ କ୍ଷମତା ଭଞ୍ଜ, ତୁଙ୍ଗ, ଶୁଲ୍କି, ଭୌମ, ଶୈଳଭବ ଓ ଗଙ୍ଗବଂଶୀ ରାଜାଙ୍କ ଅଧିନସ୍ଥ ଥିବାର ଜଣାଯାଏ। ଏହି ମଧ୍ୟଯୁଗୀୟ କଳିଙ୍ଗ ଲିପି କ୍ରମଶଃ ସରଳରୁ ଜଟିଳ ରୂପଲାଭ କରିଥିବା ହେତୁ କୁଟିଳ ଲିପି/ପେଟିକା ଶୀର୍ଷକ ନାମରେ ପରିଚିତ। ସୂକ୍ଷ୍ମ କୋଣି, କଣ୍ଟକ-ଶୀର୍ଷକ, କୀଳକ-ଶୀର୍ଷକ, ସିଦ୍ଧମାତୃକା, କୁଟିଳାକୃତି ଆଦି ଏହି ଲିପିର ରୂପଗତ ବୈଶିଷ୍ଟ୍ୟ। ମହାସାମନ୍ତ ମାଧବରାଜଙ୍କ

ଗଞ୍ଜାମ ତାମ୍ରଲେଖ, ସୈନ୍ୟଭୀତ ମାଧବରାଜଙ୍କ ଖୋରଧା ତାମ୍ରଲେଖ, ଶୁଭକରଙ୍କ ନେଉଳପୁର ଅଭିଲେଖ, ବିଦ୍ୟାଧର ଭଞ୍ଜଙ୍କ ସନନ୍ଦ, ନେଟ୍ଟ ଭଞ୍ଜଙ୍କ ତାମ୍ରଶାସନ, କଟକର ସମବଂଶୀ ରାଜଙ୍କର ଅଭିଲେଖ, ଦ୍ୱିତୀୟ ମହାଭବଗୁପ୍ତଙ୍କର ସମ୍ବଲପୁର ସ୍ଥିତ କୁଦପଲ୍ଲୀ ଫଳକ କୁଟିଳ ଲିପିର ଉଲ୍ଲେଖନୀୟ ଦୃଷ୍ଟାନ୍ତ।

ପ୍ରତ୍ନଓଡ଼ିଆ ଲିପି:

ଏହା ମାଗଧୀ ଲିପି, ଗୌଡ଼ୀ ଲିପି ଆଦି ନାମରେ ମଧ୍ୟ ପରିଚିତ। ଏହାର ସମୟ ଖ୍ରୀଷ୍ଟୀୟ ଏକାଦଶ ଶତାବ୍ଦୀରୁ ଚତୁର୍ଦ୍ଦଶ ଶତାବ୍ଦୀ ହୋଇଥିବା ଜଣାଯାଏ। ଏହି ଲିପିମାଳା ଅନ୍ତର୍ଗତ ଅ,ଆ,ଇ,ଈ,ଉ,ର,ଏ,ଐ,ଓ,ଔ,କ,ଖ,ଗ,ଝ,ଠ,ଥ,ଧ,ମ,ଯ,ର,ଳ,ଲ,ଶ,ଷ,ହ ଆଦି ଅକ୍ଷର ଗୁଡ଼ିକ ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ବର୍ଣ୍ଣମାଳା ସହିତ ପ୍ରାୟତଃ ସମାନ ହୋଇଥିବାର ଦେଖିବାକୁ ମିଳେ। ପ୍ରସିଦ୍ଧ ଐତିହାସିକ ବ୍ୟୁହଲର (Bhuler) ଏହି ଲିପିକୁ ପ୍ରତ୍ନବଙ୍ଗୀୟ/ Proto Bengali; ଲିପି ଭାବରେ ଅଭିହିତ କରିଥିବା ବେଳେ ଦିନେଶଚନ୍ଦ୍ର ସରକାର ଏହାକୁ ଗୌଡୀଲିପି ନାମରେ ନାମିତ କରିଛନ୍ତି।ଃ ସେହିପରି ଭାଷା ତତ୍ତ୍ୱବିତ କୁଞ୍ଜବିହାରୀ ତ୍ରିପାଠୀ ଏହି ପ୍ରତ୍ନଓଡ଼ିଆ ଲିପିକୁ ମାଗଧୀଲିପି ପୂର୍ବମାଗଧୀ ଅପଭ୍ରଂଶ ଅନୁସାରୀ; ଆକାରରେ ନାମକରଣ କରି ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ଅଧିକ ନିକଟବର୍ତ୍ତୀ କରାଇଛନ୍ତି। ବିଶାଖାପାଟନାମର ଶ୍ରୀକାକୁଲମ ସ୍ଥିତ ଅନନ୍ତ ବର୍ମାଙ୍କର ଉରଜାମ ଶିଳାଲେଖ (୧୦୫୧), ସୋମବଂଶୀ ରାଜା ଇନ୍ଦ୍ର ରଥଙ୍କ ଦାଶପୁର ଶାସନ, ଚତୁର୍ଥ ନରସିଂହ ଦେବଙ୍କର ତ୍ରିମାଳିମଠ ତାମ୍ରଶାସନ, ଭୁବନେଶ୍ୱର ସ୍ଥିତ ନରସିଂହ ଦେବଙ୍କର ତାମିଲ ,ଓଡ଼ିଆ ଦ୍ୱିଭାଷିକ ଶିଳାଲେଖ (୧୧୪୯), ସୋନପୁର ସ୍ଥିତ ଭାନୁଦେବଙ୍କ ଶିଳାଲେଖ (୧୩୦୦) ପ୍ରତ୍ନଓଡ଼ିଆଲିପିର କେତେକ ଦୃଷ୍ଟାନ୍ତ।

ପ୍ରାଚୀନ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି:

ଏହି ଲିପି ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ଅବ୍ୟବହିତ ପୂର୍ବ ପ୍ରଚଳିତ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି। ଏହାର ସମୟ ୧୪୦୦ ଶତାବ୍ଦୀରୁ ୧୬୦୦ ଶତାବ୍ଦୀ ମଧ୍ୟରେ। ଏହି ଲିପିରେ ଦେବନାଗରୀ ଲିପିର ପ୍ରଭାବ ଲକ୍ଷ୍ୟ କରାଯାଏ। ବର୍ତ୍ତମାନର ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ଉପର ମୁଣ୍ଡଳି ପରିବର୍ତ୍ତେ ରେଖା ଦିଆଗଲେ ଲିପି ହାରାହାରି ଯେଉଁ ରୂପ ଲାଭକରିବ, ପ୍ରାଚୀନ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ପ୍ରାୟତଃ ରୂପଗତ ଦୃଷ୍ଟିରୁ ସେହିପରି ଦେଖାଉଥିବା ଲକ୍ଷ କରିହୁଏ। ପଟାଙ୍ଗୀ ସ୍ଥିତ ପୋଟେଶ୍ୱର ମନ୍ଦିରର ଭାନୁଦେବଙ୍କର ଶିଳାଲେଖ (୧୩୭୬), ଯାଜପୁର ସ୍ଥିତ ସିଦ୍ଧେଶ୍ୱର ମନ୍ଦିରର ଚତୁର୍ଥ ନରସିଂହ ଦେବଙ୍କ ସମୟର ସ୍ତମ୍ଭ ଅଭିଲେଖ(୧୩୯୪), ସମ୍ବଲପୁର ଅନ୍ତର୍ଗତ ନୃସିଂହନାଥ ମନ୍ଦିରର ବୈଜଲ ଦେବଙ୍କର ଶିଳାଲେଖ (୧୪୧୩), ବାଲେଶ୍ୱରର ଗଡପଡ଼ା ସ୍ଥିତ ପୁରୁଷୋତ୍ତମଦେବଙ୍କ ତାମ୍ରପତ୍ର (୧୪୭୨), ପୁରୀର ଜୟବିଜୟ ଦ୍ୱାର ସ୍ଥିତ କପିଳେଶ୍ୱର ଦେବ/ପୁରୁଷୋତ୍ତମଦେବ।/ପ୍ରତାପରୁଦ୍ର ଦେବଙ୍କ ସମୟର ବିଭିନ୍ନ ଶିଳାଲେଖ (୧୩୩୫-୧୫୩୧), କପିଳେଶ୍ୱର – ମୁକୁନ୍ଦଦେବ ପର୍ଯ୍ୟନ୍ତ ସୀମାଞ୍ଚଳ ସ୍ଥିତ ଲକ୍ଷ୍ମୀନାରାୟଣ ମନ୍ଦିରର ୩୧ଟି ଅଭିଲେଖ (୧୪୩୫-୧୫୬୮) ପ୍ରାଚୀନ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ହୋଇଥିବା ଜଣାଯାଏ।

ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି:

ପ୍ରାଚୀନ ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ପରବର୍ତ୍ତୀ ସଂସ୍କରଣ ହେଉଛି ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି। ଷୋଡ଼ଶ ଶତାବ୍ଦୀରୁ ଏଯାବତ ଏହି ଲିପିର ବ୍ୟବହାର ହୋଇଆସୁଛି। ସମ୍ପ୍ରତି ଏହା ସର୍ଜନଶୀଳ କ୍ଷମତା ସମ୍ପନ୍ନ ଓ ବିଜ୍ଞାନ ସମ୍ମତ ପଦ୍ଧତିରେ ଲେଖାଯାଉଥିବା ଭାଷାର ସାଙ୍କେତିକ ରୂପ ଭାବରେ ପରିଚିତ। ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ତା'ର ପୂର୍ବବର୍ତ୍ତୀ ସମସ୍ତ ଅପୂର୍ଣ୍ଣତା ଆଦି ଦୂରୀକରଣ

ପୂର୍ବକ ଗୋଲାକାର ରୂପ ଲାଭକରିଛି ଏବଂ ସମ୍ପ୍ରତି ଏକବିଂଶ ଶତାବ୍ଦୀରେ ଏହି ଲିପି ଯନ୍ତ୍ରପରିଚାଳିତ କ୍ଷମ ହୋଇପାରିଛି। ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ପ୍ରାକ୍ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି, ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି, ପରବର୍ତ୍ତୀ ବ୍ରାହ୍ମୀଲିପି, ନାଗରୀ ଲିପି, କଳିଙ୍ଗ ଲିପି, ଗୌଡୀ ଲିପି/ ପ୍ରତ୍ନଓଡ଼ିଆ ଲିପି, ପ୍ରାଚୀନ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ଆଦି ପର୍ଯ୍ୟାୟ ଅତିକ୍ରମ କରି ଏକ ବିକଶିତ ଓ ଆଧୁନିକ ରୂପାଳାଭ କରିଛି। ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ଏହି କ୍ରମବିକାଶ ପରିପ୍ରେକ୍ଷୀରେ - ଯୋଗୀମଠ ଲିପି; ଅଶୋକଙ୍କ ଧଉଳି ଓ ଜଉଗଡ଼ ଲିପି; ଖାରବେଳଙ୍କ ହାତୀଗୁମ୍ଫା ଲିପି, ଶତ୍ରୁଭଞ୍ଜଙ୍କ ଅସନପାଟ ଲିପି; ମାଠର ବଂଶୀୟ ଲିପି; ଭଞ୍ଜ, ଗଙ୍ଗ, ନନ୍ଦ, ନାଗ ବଂଶୀୟ ଶାସକଙ୍କ ଅଭିଲେଖର ଲିପି; ଭୌମ, ନନ୍ଦ, ତୁଙ୍ଗ ବଂଶଙ୍କ ଅଭିଲେଖର ଲିପି; ଭୌମ ଓ ଗଙ୍ଗବଂଶୀୟ ରାଜାଙ୍କ ଅଭିଲେଖର ଲିପି; ସୂର୍ଯ୍ୟବଂଶୀ ରାଜାଙ୍କ ବ୍ୟବହୃତ ଲିପି; ଆଦି ଦୃଷ୍ଟାନ୍ତ ଉଲ୍ଲେଖନୀୟ।

ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ସ୍ୱାତନ୍ତ୍ର୍ୟ:

ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ସ୍ୱୟଂସମ୍ପୂର୍ଣ୍ଣ ଲିପି। ଏହି ଲିପିମାଳା ଅନ୍ତର୍ଗତ ସର୍ବପ୍ରାଚୀନ ଲିପି ହେଉଛି 'ଠ'। ଏହା ଆଜକୁ ପ୍ରାୟ ୫୦୦୦ ବର୍ଷ ତଳର ଯୋଗୀମଠ ଚିତ୍ର ଲିପିରେ ବ୍ୟବହୃତ ହୋଇଥିବାର ଦେଖାଯାଏ। ଏହି 'ଠ' ବର୍ଣ୍ଣ ବା ଲିପି ପରେ ଦ୍ୱିତୀୟ ପ୍ରାଚୀନ ଲିପି ଭାବରେ 'ଗ' ବର୍ଣ୍ଣକୁ ଗ୍ରହଣ କରାଯାଇପାରେ। ଏହା ଖାରବେଳଙ୍କ ଅଭିଲେଖରେ ଉତ୍କୀର୍ଣ୍ଣ ହୋଇଥିବାର ଦେଖିବାକୁ ମିଳେ। ନବମ ଶତାବ୍ଦୀ ବେଳକୁ ତାଳପତ୍ର, ତମ୍ବାପତ୍ର ଆଦିରେ ନିରନ୍ତର ଭାବରେ ଲେଖାଯିବା ଫଳରେ ଓଡ଼ିଆ ଲିପିରେ ବହୁ ପରିବର୍ତ୍ତନ ଘଟିଲା । ତେଣୁ ଏହି ସମୟକାଳ ମଧ୍ୟରେ ଏ, କ, ଖ, ଗ, ଥ, ଧ, ମ, ଯ, ଳ, ଶ, ଷ, ହ ଏବଂ ସ୍ୱରବର୍ଣ୍ଣ ଆ, ଇ, ଏ, ଐ,ଔ ଆଦି ଲିପିର ମାତ୍ରାରୂପ ସହିତ କ୍ରମଶ ଯୁକ୍ତାକ୍ଷର ସୃଷ୍ଟି ହୋଇ ବ୍ୟବହୃତ ହେଉଥିବା ଜଣାଯାଏ। ଏଥିସହିତ ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ଅନ୍ୟ କେତେକ ଉଲ୍ଲେଖନୀୟ ସ୍ୱତନ୍ତ୍ର ଲକ୍ଷଣ ରହିଛି। ତାହା ଏହିପରି-

I. ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ମାଳାରେ ଅଣଚାଶଟି (୪୯) ଅକ୍ଷର, ଲିପି ବା ବର୍ଣ୍ଣ ପ୍ରଚଳିତ। ଯଥା- ଅ, ଆ, ଇ, ଈ, ଉ, ଊ, ଋ, ଌ, ଏ, ଐ, ଓ, ଔ ଆଦି ୧୧ଟି ସ୍ୱରବର୍ଣ୍ଣ/ କ, ଖ, ଗ, ଘ, ଙ. ଚ, ଛ, ଜ, ଝ, ଞ/ ଟ, ଠ , ଡ. ଢ , ଣ/ ତ, ଥ, ଦ, ଧ, ନ/ ପ, ଫ, ବ, ଭ, ମ ଆଦି ୨୫ଟି ବର୍ଗ୍ୟ ବଞ୍ଜନ ବର୍ଣ୍ଣ/ ଯ, ୟ, ର, ଲ, ଳ, ୱ, ଶ, ଷ, ସ, ହ, ଂ,ଃ,ଁ (ଆନୁସ୍ୱାର, ବିସର୍ଗ , ଚନ୍ଦ୍ରବିନ୍ଦୁ)।

II. ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପିରେ ମାତ୍ରା, ଫଳା ଓ ଯୁକ୍ତାକ୍ଷର ପ୍ରୟୋଗ ଓ ବ୍ୟବହାର ରହିଛି।

III. ଉଚ୍ଚାରଣ ଦିଗରୁ ଲ-ଳ/ ଇ-ଈ/ ଉ-ଊ/ ଯ-ଜ/ ଶ-ସ-ଷ ଆଦି ଲିପି ମଧ୍ୟରେ ଭିନ୍ନତା ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାରେ ନାହିଁ।

IV. 'କ୍ଷ' ଏକ ସ୍ୱତନ୍ତ୍ର ଲିପିରୂପ ହୋଇଥିଲେ ହେଁ ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାର ବର୍ଣ୍ଣମାଳାରେ ଏହାକୁ ଏକ ସଂଯୁକ୍ତ ବର୍ଣ୍ଣ ରୂପେ ଗ୍ରହଣ କରାଯାଇଛି।

V. ଟ, ଟେ, ଟି, ଟିଏ, ଟା, ଣି, ଚ, କି, ହେ, ନି, ମ ରେ- ଇତ୍ୟାଦି ଲିପି ବା ବର୍ଣ୍ଣକୁ ଶବ୍ଦର ପରେ ସୂଚକପଦ ଭାବରେ ବ୍ୟବହାର କରି ଆଦର, ଅନାଦର ଆଦି ଭାବ ନିରୂପଣ କରାଯାଇଥାଏ।

VI. ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାର ଲିପିଗୁଡ଼ିକ ବାମରୁ ଆରମ୍ଭ ହୋଇ ଡାହାଣ ହସ୍ତ କ୍ରମରେ ଲେଖାଯାଇଥାଏ।

VII. ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ଗୁଡ଼ିକ ସାଧାରଣତଃ ଗଠନ ଦୃଷ୍ଟିରୁ - କଣ୍ଟକଶୀର୍ଷକ, କୀଳକଶୀର୍ଷକ, ପୁଚ୍ଛାକୃତି, ବିନ୍ଦୁମାତ୍ରିକ, ଗର୍ଭରେଖ, ଉର୍ଦ୍ଧ୍ୱ ବୃତ୍ତାକାର, ଉର୍ଦ୍ଧ୍ୱଅର୍ଦ୍ଧ ବୃତ୍ତାକାର, ଦ୍ରାକ୍ଷାଗ୍ରନ୍ଥିକ, ଉର୍ଦ୍ଧବୃତ୍ତାକାର ଓ ରେଖଶୀର୍ଷକ, ରେଖା ବା ବାଡ଼ି ପାଶ୍ୟକ, ନିମ୍ନ-ଅର୍ଦ୍ଧ-ବୃତ୍ତାକାର ଓ ଲାଞ୍ଜିକ – ଏହିପରି ହୋଇ ବ୍ୟବହୃତ ହୋଇଥାନ୍ତି। ଏହାର କେତେକ ଦୃଷ୍ଟାନ୍ତ ହେଲା-

- ଈଶ – ଉର୍ଦ୍ଧ୍ୱ ବୃତାକାର + ଅର୍ଦ୍ଧ ବୃତ୍ତାକାର + ଗ୍ରନ୍ଥିକ + ଲାଞ୍ଜିକ + ରୈକା କ୍ଷ/ଷ – ଉର୍ଦ୍ଧ – ନିମ୍ନ – ଅର୍ଦ୍ଧ ବୃତ୍ତାକାର + ଗର୍ଭରୈକ + ବାଡ଼ିପାର୍ଶ୍ୱକ ବା ରେଖପାଶ୍ୟକ।
- ଏ//ନ/ମାସ – ବାଡ଼ିପାର୍ଶିକ + କୋଣାନୁସାରୀ

- ଛ ଛ – ଉର୍ଦ୍ଧ୍ୱ ବୃତ୍ତାକାର + ନିମ୍ନବିନ୍ଦୁ ମାତ୍ରିକ + ଦ୍ରାକ୍ଷା ଗୁଚ୍ଛିକ।
- ଖଗ/ଘ/ପ/ମ – ଉର୍ଦ୍ଧ୍ୱ ବୃତ୍ତାକାର + ଅର୍ଦ୍ଧ ବୃତ୍ତାକାର, ବାଡ଼ି ପାର୍ଶ୍ୱିକ
- ର, ଭ, ର, ଇ – ବୃତ୍ତାକାର ଓ ଲାଞ୍ଜିକ।
- ଡ/ଝ/ଟ/ଧ – ବିନ୍ଦୁ ମାତ୍ରିକ + କୀଳକଧର୍ମୀ + ବୃତ୍ତକାର।

ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ଶାସ୍ତ୍ରୀୟ ଲକ୍ଷଣ ଦୃଷ୍ଟିରୁ ବିଚାର କଲେ ଆମ ଭାଷାରେ ଂ,ଃ,ଁ ଏହି ତିନୋଟି ବର୍ଣ୍ଣ ସ୍ୱୟଂ ଅର୍ଥ ପ୍ରକାଶ କ୍ଷମ ଧ୍ୱନି ନୁହନ୍ତି କିନ୍ତୁ ଏଗୁଡ଼ିକ ଅନ୍ୟ ବର୍ଣ୍ଣ ସହିତ ମିଳିତ ହୋଇ ଅର୍ଥ ବଦଳାଇବା ବା ନୂତନ ଅର୍ଥ ତିଆରି କରିବା ନିମିତ୍ତ ଯୋଗ୍ୟ ହୋଇଥାନ୍ତି। ଯଥା – "ହସ" – ଅର୍ଥାତ୍ ହସିବା । ଏଥିରେ ଂ (ଅନୁସ୍ୱର) ଯୋଗ ହେଲେ ଅର୍ଥ ବଦଳି ଯାଇ ହେବ "ହଂସ"। ସେହିପରି – ବହି (ପୁସ୍ତକ), ଏଥିରେ ଃ (ବିସର୍ଗ) ଯୋଗ ହେଲେ ହେବ " ବହିଃ" (ବାହାର)। ଅନୁରୂପ – "ଚାହେ" ମାନେ ପସନ୍ଦ କରିବା/ ଇଚ୍ଛା କରିବା ଅର୍ଥ ବୁଝାପଡ଼େ ; ଏଥିରେ ଁ (ଚନ୍ଦ୍ରବିନ୍ଦୁ) ଯୋଗ ହେଲେ "ଚାହେଁ" ରୂପେ ବଦଳି ଯାଇ ଦେଖିବା/ ଅନେଇବା ଅର୍ଥ ବୁଝାଏ । ଏଥିରୁ ଲକ୍ଷ କରିବାର କଥା ଯେ ଓଡ଼ିଆ ବର୍ଣ୍ଣମାଳାରେ ଏହି ଅଯୋଗବାହ ବର୍ଣ୍ଣ ନ ରହିଲେ ଓଡ଼ିଆ ଶବ୍ଦ ବ୍ୟବସ୍ଥାର ମୂଲ୍ୟ ଭାଙ୍ଗି ଯିବ। ଏଗୁଡ଼ିକର ବ୍ୟତିରେକ ଅନେକ ଶବ୍ଦ ବିଲୁପ୍ତ ହୋଇ ଭାଷା ନିଜର ବଳିଷ୍ଠତା ଓ ପ୍ରାମାଣିକତା ହରାଇବ।

ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ବ୍ୟାକରଣରେ ବର୍ଣ୍ଣମାଳା ନିରୂପଣ କ୍ରମରେ ଅନ୍ତ୍ୟସ୍ଥ "ବ" ଲିପିର ସ୍ୱରୂପ ସାମାନ୍ୟ ବଦଳାଇ "ୱ" ବା "ବ" ପରିବର୍ତ୍ତେ "ଓ" ତଳେ "ବ" ଫଳା ଦେଇ "ୱ" ଆକାରରେ ଲେଖାଯାଇ ସେହି ଅନୁସାରେ ଉଚ୍ଚାରଣ ମଧ୍ୟ କରାଯାଉଅଛି ଏବଂ ହଜାରହଜାର ପୃଷ୍ଠାର ସାହିତ୍ୟ କୃତିରେ ଅନ୍ତ୍ୟସ୍ଥ "ବ" ଲିପିର ସ୍ୱରୂପ "ୱ" ଆକାରରେ ଲେଖାଯାଇ ସାରିଛି। ଏହି ଲିପିର ଏହିପରି ସ୍ୱତନ୍ତ୍ର ରୂପ ଫଳରେ ଇଂରାଜୀ ଭାଷାର wicket, watch, wash – ପରି ଶବ୍ଦ ଗୁଡ଼ିକର ଅବିକଳ ଉଚ୍ଚାରଣ ଓଡ଼ିଆରେ ସମ୍ଭବ ହେଇ ଭାଷାକୁ ସୁସମୃଦ୍ଧ ଓ ବିଜ୍ଞାନସମ୍ମତ କରିବାରେ ସହାୟକ ହୋଇଛି। ନଚେତ୍ "ୱ" ବର୍ଣ୍ଣ ବା ଧ୍ୱନିର ଅଭାବରେ "ୱିକେଟ୍" ବଦଳରେ ବାଧ୍ୟ ହୋଇ ଉଇକେଟ, ୱାଚ୍ – ଉଆଚ୍, ୱସ୍ – ଉଆସ୍ – ଲେଖି ସେହିପରି ମଧ୍ୟ ଉଚ୍ଚାରଣ କରାଯାଉଥାନ୍ତା।

ଉପସଂହାର :

ଖ୍ରୀଷ୍ଟପୂର୍ବ ଦୁଇହାଜର ବର୍ଷ ପୂର୍ବେ ଲିପିର ପ୍ରଥମ ଉଦ୍ଭାବନ ହୋଇଥିଲା ବୋଲି ପ୍ରତ୍ନତାତ୍ତ୍ୱିକ ମତ ସ୍ୱୀକୃତ। ଏହାର ପ୍ରାଥମିକ ରୂପ ଚିତ୍ରଲିପି ହୋଇଥିବାର ମତ ଗବେଷକମାନେ ପ୍ରକାଶ କରିଛନ୍ତି। କ୍ରମଶଃ ଏହା ଭାବସାଙ୍କେତିକ ଶୃଙ୍ଖଳା କ୍ରମେ ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ଭାଷା/ଭାଷାସମୂହ ପାଇଁ ନିର୍ଦ୍ଦିଷ୍ଟ ରୂପଲାଭ କରିଥିବାର ଜଣାଯାଏ। ଓଡ଼ିଶା ଭାଷା ଭିତ୍ତିରେ ଗଠିତ ହୋଇଥିବା ଏକ ପ୍ରଦେଶ ଏବଂ ଏହାର ଭାଷା ଓଡ଼ିଆ। ଓଡ଼ିଶାରେ ଓଡ଼ିଆ କୁହାଯାଏ, ଓଡ଼ିଆରେ ଲେଖା ଯାଏ। ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାର ଏକ ପ୍ରାମାଣିକ ଲିପିମାଳା ରହିଛି। ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାରେ ଯେତିକିଟି ବର୍ଣ୍ଣକୁ ସେତିକିଟି ଲିପି ରହିଛି। ଓଡ଼ିଆ ଲିପି ମୂଳତଃ ବ୍ରାହ୍ମୀ ଲିପିରୁ ବିବର୍ତ୍ତିତ ହୋଇ ଆଧୁନିକ ଲିପିର ରୂପଲାଭ କରିଛି।

ସହାୟକ ପୁସ୍ତକ:

୧. ତ୍ରିପାଠୀ., କୁଞ୍ଜ ବିହାରୀ, ୧୯୮୪. ଓଡ଼ିଆ ଭାଷା ଓ ଲିପିର ବିବର୍ତ୍ତନ, ଓଡ଼ିଶା ରାଜ୍ୟ ପାଠ୍ୟ ପୁସ୍ତକ ପ୍ରଣୟନ ସଂସ୍ଥା, ଭୁବନେଶ୍ୱର, ପୃଷ୍ଠା: ୨୯.

୨. ରାଜଗୁରୁ., ସତ୍ୟନାରାୟଣ, ଦ୍ୱିତୀୟ ସଂସ୍କରଣ, ୧୯୮୦. ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର କ୍ରମବିକାଶ, ଓଡ଼ିଶା ସାହିତ୍ୟ ଏକାଡେମୀ, ପୃଷ୍ଠା: ୦୨.

୩. ତ୍ରିପାଠୀ., କୁଞ୍ଜ ବିହାରୀ, ୧୯୮୪. ଓଡ଼ିଆ ଭାଷା ଓ ଲିପିର ବିବର୍ତ୍ତନ, ଓଡ଼ିଶା ରାଜ୍ୟ ପାଠ୍ୟ ପୁସ୍ତକ ପ୍ରଣୟନ ସଂସ୍ଥା, ଭୁବନେଶ୍ୱର, ପୃଷ୍ଠା: ୨୯.

୪. ରାଜଗୁରୁ., ସତ୍ୟନାରାୟଣ, ଦ୍ୱିତୀୟ ସଂସ୍କରଣ, ୧୯୮୦. ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର କ୍ରମବିକାଶ, ଓଡ଼ିଶା ସାହିତ୍ୟ ଏକାଡେମୀ, ପୃଷ୍ଠା: ୦୩.

୫. ତ୍ରିପାଠୀ., କୁଞ୍ଜ ବିହାରୀ, ୨୦୧୩. ଓଡ଼ିଆ ଭାଷାତତ୍ତ୍ୱ ଓ ଲିପିର ବିକାଶ, ଓଡ଼ିଶା ରାଜ୍ୟ ପାଠ୍ୟ ପୁସ୍ତକ ପ୍ରଣୟନ ସଂସ୍ଥା, ଭୁବନେଶ୍ୱର, ପୃଷ୍ଠା: ୧୫୯.

ଡ. ପ୍ରହ୍ଲାଦ ଖିଲା
Dr. Prahallad Khilla
Assistant Professor of Odia
P.G. Department of Language and Literature
Fakir Mohan University, Balasore, Odisha, Pin. 756089
Contact No. 9437587697
e-mail ID: prahalladkhilla@gmail.com

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर आधुनिकता के प्रभाव का अध्ययन

डॉ. रेणु शर्मा
शोध पर्यवेक्षक, (सह-आचार्य)
श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय,
सी.टी.ई. केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर (राज.)

लता आसनानी
शोधार्थी, शिक्षा विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर आधुनिकता के प्रभाव का अध्ययन करना है। इस हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया एवं जयपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के 800 विद्यार्थियों का चयन कर मानकीकृत उपकरण के द्वारा आंकड़ों का संकलन किया गया। प्राप्त आंकड़ों का सहसंबंध गुणांक विधि के द्वारा विश्लेषण करने पर यह ज्ञात हुआ कि उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर आधुनिकता का सार्थक प्रभाव पड़ता है।

मुख्य शब्द : व्यक्तित्व, आधुनिकता।

प्रस्तावना

व्यक्तित्व एक बहुआयामी अवधारणा है, जो किसी व्यक्ति की सोच, व्यवहार, भावनात्मक प्रतिक्रिया, सामाजिक दृष्टिकोण, तथा उसकी आत्म-छवि को परिभाषित करता है। यह न केवल व्यक्ति की आंतरिक विशेषताओं का प्रतिबिंब होता है, बल्कि बाह्य परिस्थितियों के साथ उसकी सहभागिता का भी सूचक होता है। किशोरावस्था, विशेष रूप से उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी, जीवन की एक संवेदनशील अवस्था में होते हैं, जहाँ उनका मानसिक, सामाजिक, नैतिक और शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। इसी अवस्था में व्यक्तित्व का निर्माण अपने चरम पर होता है।

वर्तमान समय में विश्व जिस तीव्र गति से आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर हो रहा है, वह शिक्षा, संस्कृति, सामाजिक संरचना, मूल्यों और जीवनशैली सभी क्षेत्रों में गहरे प्रभाव डाल रहा है। आधुनिकीकरण एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है, जो परंपरागत व्यवस्थाओं, मान्यताओं एवं सांस्कृतिक रीतियों में परिवर्तन कर आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तकनीकी नवाचार, आर्थिक प्रगति और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा देती है। यह प्रक्रिया युवा वर्ग को अत्यधिक प्रभावित कर रही है, विशेषकर विद्यार्थियों को जो डिजिटल युग में पले-बढ़े हैं।

आज का विद्यार्थी इंटरनेट, सोशल मीडिया, मोबाइल फोन, ऑनलाइन शिक्षा, वैश्विक संस्कृति, उपभोक्तावाद, प्रतिस्पर्धात्मक मानसिकता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसे आधुनिक प्रभावों से घिरा हुआ है। जहाँ एक ओर यह आधुनिकता उन्हें अधिक आत्मविश्वासी, तकनीकी रूप से दक्ष और वैश्विक दृष्टिकोण वाला बना रही है, वहीं दूसरी ओर यह मानसिक

तनाव, सामाजिक अलगाव, नैतिक मूल्यों के ह्रास और व्यक्तित्व के विघटन का कारण भी बन सकती है। उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी इन परिवर्तनों के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील होते हैं, क्योंकि यह अवस्था निर्णय क्षमता, पहचान निर्माण और सामाजिक भूमिका को आत्मसात करने की प्रक्रिया से जुड़ी होती है।

अतः यह जानना अत्यंत आवश्यक हो गया है कि आधुनिकीकरण की इस तीव्र और गहन लहर का विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? क्या उनके आत्मबोध, सामाजिकता, अनुशासन, उत्तरदायित्व, आत्मनियंत्रण एवं मूल्यों में सकारात्मक विकास हो रहा है या नकारात्मक परिवर्तन हो रहे हैं? इस अध्ययन का उद्देश्य इन्हीं प्रश्नों की जांच करना है ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि आधुनिकीकरण विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को कैसे दिशा प्रदान कर रहा है और इसके संभावित दुष्परिणामों से उन्हें कैसे सुरक्षित रखा जा सकता है?

अध्ययन का औचित्य

आधुनिकता ने जहाँ समाज को विकास के अनेक अवसर प्रदान किए हैं, वहीं इसने पारंपरिक मूल्यों, संबंधों एवं जीवन शैली को चुनौती भी दी है। विशेष रूप से किशोरावस्था में, जब विद्यार्थी अपनी पहचान बनाने की प्रक्रिया में होते हैं, आधुनिकीकरण की प्रवृत्तियाँ उनके व्यक्तित्व निर्माण को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं। मोबाइल फोन, इंटरनेट, फैशन, मीडिया, प्रतिस्पर्धा और सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव में विद्यार्थी नई जीवनशैली अपनाने लगे हैं, जिससे उनके आत्मविश्वास, आत्मनियंत्रण, सामाजिकता, उत्तरदायित्व एवं नैतिक मूल्यों में परिवर्तन देखा जा सकता है। इस पृष्ठभूमि में यह अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक है क्योंकि इससे यह स्पष्ट होगा कि आधुनिकता की विभिन्न धाराओं का विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर क्या सकारात्मक अथवा नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है? यह अध्ययन न केवल शैक्षिक नीति निर्माताओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों को उचित मार्गदर्शन प्रदान करेगा, बल्कि विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए संतुलित दृष्टिकोण अपनाने में भी सहायक सिद्ध होगा। इस शोध की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि वर्तमान समय में मूल्य आधारित शिक्षा और आधुनिक तकनीकी विकास के बीच संतुलन बनाना एक चुनौती बन गया है।

शोध के उद्देश्य

1 उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर आधुनिकता के प्रभाव का अध्ययन करना।

2 उच्च माध्यमिक स्तर के गैर सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर आधुनिकता के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पना

1 उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर आधुनिकता पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

2 उच्च माध्यमिक स्तर के गैर सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर आधुनिकता पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

शोध में प्रयुक्त न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन में जयपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के 800 विद्यार्थियों का चयन किया गया जिसमें 400 सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी एवं 400 गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थी सम्मिलित किए गए।

उपकरण एवं सांख्यिकी विधि

प्रस्तुत अध्ययन में मानकीकृत उपकरण का प्रयोग आंकड़ों के संग्रहण हेतु किया गया, जिसका विवरण इस प्रकार हैः-

आधुनिकता मापनीः- आधुनिकता के मापन के लिए एस. पी. आहलुवालिया और ए. के. कालिया द्वारा निर्मित आधुनिकीकरण मापनी परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

व्यक्तित्व मापनीः- प्रस्तुत शोध में व्यक्तित्व मापन के लिए डॉ. श्रीमती ए. पाण्डे द्वारा निर्मित किशोर व्यक्तित्व परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी द्वारा प्रदत्तों का सारणीयन एवं वर्गीकरण करने हेतु सहसंबंध गुणांक का प्रयोग किया गया है।

विश्लेषण

शून्य परिकल्पना 1 - आधुनिकता का सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

तालिका संख्या : 1

समूह	चर	समूह संख्या	सहसंबंध गुणांक	परिणाम
सरकारी विद्यार्थी	आधुनिकता व्यक्तित्व	400	0.74	अस्वीकृत

व्याख्या एवं विश्लेषण

उपरोक्त तालिका आधुनिकता का सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर प्रभाव को दर्शाती है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि आधुनिकता का सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर प्रभाव का अध्ययन करने के लिए सहसंबंध गुणांक की गणना की गई है। गणना करने पर आधुनिकता एवं व्यक्तित्व के मध्य सहसंबंध गुणांक 0.74 है, जो कि धनात्मक सहसंबंध है।

सहसंबंध गुणांक का प्राप्त मान (0.74), 0.05 सार्थकता स्तर के तालिका मान (0.097) एवं 0.01 सार्थकता स्तर के तालिका मान (0.128) से अधिक है, अतः परिकल्पना अस्वीकृत होती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि आधुनिकता का सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष

आधुनिकता का सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर प्रभाव पाया गया। इसका कारण यह हो सकता है कि उच्च माध्यमिक स्तर वह समय होता है जब विद्यार्थी बोर्ड परीक्षाओं, प्रतियोगी परीक्षाओं और करियर की दिशा में सोचते हैं। आधुनिकता और प्रतिस्पर्धा की भावना उन्हें लक्ष्य-केन्द्रित, मेहनती और दबाव में कार्य करने में सक्षम बनाती है, जो उनके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

शून्य परिकल्पना 2 - आधुनिकता का गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

तालिका संख्या : 2

समूह	चर	समूह संख्या	सहसंबंध गुणांक	परिणाम
गैर सरकारी विद्यार्थी	आधुनिकता व्यक्तित्व	400	0.66	अस्वीकृत

व्याख्या एवं विश्लेषण -

उपरोक्त तालिका आधुनिकता का गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर प्रभाव को दर्शाती है। तालिका

के अवलोकन से स्पष्ट है कि आधुनिकता का गैर सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर प्रभाव का अध्ययन करने के लिए सहसंबंध गुणांक की गणना की गई है। गणना करने पर आधुनिकता एवं व्यक्तित्व के मध्य सहसंबंध गुणांक 0.66 है, जो कि धनात्मक सहसंबंध है।

सहसंबंध गुणांक का प्राप्त मान (0.66), 0.05 सार्थकता स्तर के तालिका मान (0.097) एवं 0.01 सार्थकता स्तर के तालिका मान (0.128) से अधिक है, अतः परिकल्पना अस्वीकृत होती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि आधुनिकता का गैर सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष

आधुनिकता का गैर सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर प्रभाव पाया गया। इसका कारण यह हो सकता है कि आज के विद्यार्थी इंटरनेट, स्मार्टफोन और सोशल मीडिया से जुड़े रहते हैं। यह उन्हें वैश्विक ज्ञान, विविध विचारों और नवीन सोच से जोड़ता है। परिणामस्वरूप, उनके व्यक्तित्व में आत्मविश्वास, जागरूकता और आधुनिक सोच का समावेश होता है।

निष्कर्ष

- उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर आधुनिकता का सार्थक प्रभाव पड़ता है।
- उच्च माध्यमिक स्तर के गैर सरकारी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर आधुनिकता का सार्थक प्रभाव पड़ता है।

सुझाव

- आधुनिकीकरण ने छात्रों को मोबाइल, सोशल मीडिया और इंटरनेट से जोड़ा है, जिससे आत्मकेन्द्रिता और एकाकीपन बढ़ा है। विद्यार्थियों को डिजिटल अनुशासन सिखाया जाए। टेक्नोलॉजी के रचनात्मक उपयोग जैसे ई-लर्निंग, प्रोजेक्ट रिसर्च, ब्लॉगिंग आदि के लिए प्रेरित किया जाए।
- आधुनिकीकरण ने छात्रों में आत्म-अभिव्यक्ति के नए मंच जैसे सोशल मीडिया, पर्सनल ब्रांडिंग, व्लॉगिंग आदि के अवसर दिए हैं। छात्रों को रचनात्मक लेखन, डिजिटल प्रजेंटेशन, पॉडकास्टिंग, डिबेट, प्रदर्शन कला के मंच दिए जाएं।
- विद्यार्थियों को समस्या समाधान, भावनात्मक प्रबंधन, करियर जागरूकता, सामाजिक कौशल सिखाने के लिए जीवन-कौशल कार्यक्रम चलाए जाएं। स्कूलों में काउंसलिंग सेवाओं की सुविधा सुनिश्चित की जाए।
- आधुनिकीकरण ने बालिकाओं को शिक्षा, करियर, अभिव्यक्ति में नए अवसर दिए हैं। बालिकाओं को नेतृत्व के अवसर, तकनीकी प्रशिक्षण और आत्मरक्षा शिक्षा दी जाए। जेंडर समानता पर आधारित कार्यशालाएँ आयोजित की जाएं।
- आधुनिक मीडिया छात्रों के व्यक्तित्व को गहराई से प्रभावित करता है- सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह से। मीडिया साक्षरता कार्यक्रम चलाए जाएं ताकि विद्यार्थी सत्य-असत्य, तथ्य-अफवाह में फर्क करना सीखें। प्रेरणादायक फिल्म, डॉक्यूमेंट्री, इंटरव्यू आदि का विश्लेषण किया जाए।

संदर्भ सूची

- गोस्वामी, नवप्रभाकर और शर्मा, योगेश (2015), माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में व्यक्तित्व का लिंग भेद के आधार पर अध्ययन, एडूसर्च, जरनल ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, वॉल्यूम 6, अंक 2
- खान, दानिश (2013) विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास में सामाजिक परिवेश की भूमिका'', पीएच.डी, मनोयोग विभाग, इस्लामिक आजाद विश्वविद्यालय, उत्तरप्रदेश
- झाझड़िया, राजेन्द्र प्रसाद. (2015). माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत किशोर विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता का उनके व्यक्तित्व एवं समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन. International Journal of Education and Science

Research Review, 2(4), 28-34.

- निगम, दीपाली. (2006). किशोरावस्था में चिन्ता स्तर का शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन. समाजिक सहयोग राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका, वर्ष 14, अंक 54-55.
- रीकांबिनेंट, बैकुलोवायरस (2020) व्यक्तित्व के शीलगुणों और उपलब्धि प्रेरणा तथा प्रशासन के खुशियों के संबंध में अध्ययन', पीएचडी, स्टेफोर्ड यूनिवर्सिटी, लंदन
- सेमुअल, ओ सैलेमी (2018) नाइजनीतिया के माध्यमिक स्कूल के किशोरों के व्यक्तित्व और व्यवसायिक आकांक्षा का अध्ययन, पीएचडी, नाइजीरिया
- स्टीनर (2012) सामान्य किशोर-किशोरियों में एक तनावग्रस्त कार्य के दौरान रक्षात्मक परितंत्रो, व्यक्तित्व व प्रभाव के बीच संबंध का अध्ययन, पीएचडी, हीडलबर्ग विश्वविद्यालय
- सैन, सरिता (2003) कामकाजी महिलाओं वाले परिवार के बच्चों के व्यक्तित्व व शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव, पीएचडी, शिक्षा विभाग, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

बी.एड. शिक्षकों की नवाचार शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

डॉ. सीमा कुण्डारा
सह आचार्य, राजस्थान शिक्षण प्रशिक्षण विद्यापीठ
शाहपुरा बाग, आमेर रोड, जयपुर

प्रस्तावना

परिवर्तन ही सृष्टि का शाश्वत नियम है। परिवर्तन से सृष्टि में नवीनता आती है। प्रतिक्षण, सृष्टि में परिवर्तन हो रहा है। प्रकृति की नित्य नयी नवीनता हमें सदा आकर्षित करती रहती है। प्रकृति की चिर नवीनता की पृष्ठभूमि में परिवर्तन की प्रमुख भूमिका रहती है। ये परितर्वन प्रकृति तक सीमित नहीं। समाज में भी प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है।

अपेक्षित परिवर्तनों में नवीन चेतना आती है, नयी स्फूर्ति आती है। ये परिवर्तन शिक्षा में नवीनता लाते है और शिक्षा आगे की ओर बढ़ती है शिक्षा प्रगति पथ की ओर अग्रसर होती है।

विज्ञान और टेक्नोलॉजी नवीन ज्ञान के विस्फोट से अनेक नए-नए नवाचार हर क्षेत्र में अपनाएं गए है। भारत में शिक्षा के क्षेत्र में इन नवाचार का प्रयोग नया है।

आज शिक्षण प्रक्रिया में नवाचार न केवल युग की मांग है, अपितु बालक-अधिगम प्रक्रिया की एक अनिवार्यता भी है। भावी शिक्षकों तथा सेवारत शिक्षकों को इसका ज्ञान होना व प्रयोग करना अवश्यंभावी है।

नवाचार शिक्षा की आवश्यकता

तकनीकी विकास और उससे उत्पन्न सामाजिक अनिवार्यताएँ तथा उभरती हुई जनाकाक्षाएँ शिक्षा के स्वरूप को तेजी से बदल रही है। परिवर्तन की मांग एवं परिवर्तन की प्रक्रिया आजकल विश्वव्यापी घटना है। बदलते हुये परिवेश में शिक्षा के उद्देश्य और साथ ही साथ शिक्षण की प्रक्रिया भी एक अत्यन्त व्यावसायिक एवं कौशलयुक्त प्रक्रिया बनती जा रही है। शिक्षा के क्षेत्र-विस्तार एवं शिक्षण प्रक्रिया की प्रभावकारिता की वृद्धि के लिए नित्य नवीन नवाचारों का जन्म हो रहा है। शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षा के नियोजक, प्रशासक एवं शिक्षकों को इन नवाचारों को अपनाना जरूरी है क्योंकि इनके बिना वे प्रगतिशील परिवर्तन के प्रवाह में अपने को सन्तुलित नहीं रख पायेंगे और देश की भावी पीढ़ी शिक्षा जगत में पिछड़ जाएगी। ज्ञान, कौशल एवं विशिष्टता के बढ़ते हुये भण्डार को अधिकतम व्यक्तियों तक प्रभावकारी रीति से सम्प्रेषित करने हेतु आज के शिक्षक को शिक्षा सम्बन्धी नवाचारों एवं नवीन प्रवृत्तियों से परिचित होना आवश्यक है।

समस्या का चयन व औचित्य

वर्तमान समय में शिक्षा में पाठ्य-वस्तु का स्वरूप बड़ा जटिल हो गया है। वस्तुतः पाठ्य वस्तु की जटिलता को दूर

करने के लिए अध्यापक नवाचार शिक्षा का प्रयोग करते है। आज के वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग की जबरदस्त मांग है कि शिक्षकों को नवाचार शिक्षा का पूर्व ज्ञान होना चाहिए तभी शिक्षण कार्य को रोचक, सरल, प्रभावपूर्ण, प्रेरणास्पर्द्ध तथा विद्यार्थियों के आयु स्तर का बनाया जा सकता है।

समस्या कथन :- ''बी.एड. शिक्षकों की नवाचार शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन।''

परिभाषित शब्दों की व्याख्या

नवाचार का अर्थ

नवाचार अंग्रेजी भाषा का शब्द 'इनोवेशन' (Innovation) है। यह शब्द 'इनोवेट' शब्द से बना है।

(Innovate) इनोवेट का अर्थ है–

(क) नवीनता लाना (to introduce novelties)

(ख) परिवर्तन लाना (to make changes)

(Innovation) इनोवेशन का अर्थ हुआ - 'वह परिवर्तन जो नवीनता लाये।'

शिक्षा में शैक्षिक नवाचार - शिक्षा में नवाचार का अभिप्राय स्थापित या प्रचलित शिक्षा प्रणाली में नए व्यवहार अर्थात नवीन विधियों एवं रीतियों का समावेश करना है।

अभिवृत्ति - अभिवृत्तियाँ व्यक्ति के उस दृष्टिकोण की और संकेत करती है, जिसके कारण वह किसी वस्तु परिस्थिति, संस्था या व्यक्ति के प्रति किसी विशिष्ट भांति व्यवहार करता है। अभिवृत्तियाँ सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार की हो सकती है।

अभिवृत्ति मापनी - व्यक्ति की अभिवृत्ति को वैज्ञानिक एवं व्यक्तिगत ढंग से जानने के लिए अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया जाता है।

सह-सम्बन्ध - जब दो या दो से अधिक चरों तथा घटनाओं ने साहचर्यात्मक संबंध पाया जाता हैं, तब ऐसे पारस्परिक संबंध को सह-संबंध कहते है।

शोध के उद्देश्य - प्रस्तुत शोध में बी.एड शिक्षकों की नवाचार शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति के अध्ययन के अंतर्गत सूक्ष्म-शिक्षण, दल-शिक्षण, कार्यशाला, अभिक्रमित अनुदेशन शिक्षण, संगोष्ठी, दूरस्थ शिक्षा तथा कंप्यूटर शिक्षा एवं कंप्यूटर द्वारा शिक्षण कार्य करवाना अध्ययन का मुख्य उद्देश्य रहा है।

1. बी.एड. महाविद्यालयों के शिक्षकों की सूक्ष्म-शिक्षण, दलीय शिक्षण, कार्यशाला (वर्कशॉप) के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

2. बी.एड. महाविद्यालयों के शिक्षकों की अभिक्रमित अनुदेशन शिक्षण, संगोष्ठी (सेमिनार), दूरस्थ शिक्षा, कम्प्यूटर के प्रति अभिवृति का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनाएं

1. बी.एड. महाविद्यालयों के शिक्षकों की सूक्ष्म शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थकता पाई जाती है।
2. बी.एड. महाविद्यालयों के शिक्षकों की दलीय शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थकता पाई जाती है।
3. बी.एड. महाविद्यालयों के शिक्षकों की कार्यशाला के प्रति अभिवृत्ति में सार्थकता पाई जाती है।
4. बी.एड. महाविद्यालयों के शिक्षकों की अभिक्रमित अनुदेशन शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति में सार्थकता पाई जाती है।
5. बी.एड. महाविद्यालयों के शिक्षकों की संगोष्ठी के प्रति अभिवृत्ति में सार्थकता पाई जाती है।
6. बी.एड. महाविद्यालयों के शिक्षकों की दूरस्थ शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थकता पाई जाती है।
7. बी.एड. महाविद्यालयों के शिक्षकों की कम्प्यूटर शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थकता पाई जाती है।

शोध विधि - प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन मे प्रयुक्त न्यादर्श - ''यादृच्छिक न्यादर्श" विधि तथा "लॉटरी विधि" के आधार पर जयपुर के पाँच बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत 60 बी.एड. शिक्षकों का चयन किया।

उपकरण - स्वनिर्मित अभिवृति मापनी को उपकरण के रूप में प्रयोग किया।

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी

प्रस्तुत शोध में प्रदत्तों के विश्लेषण एवं अर्थापन हेतु निम्नलिखित सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है–

1. लिंकर्ट योग निर्धारण विधि (टी-मूल्य)
2. सह सम्बन्ध

शोध निष्कर्ष

1. नवाचार शिक्षा का शिक्षण में प्रयोग अध्ययन को सहज व रुचिकर बनाता है। अतः शिक्षक को यथासम्भव इसका प्रयोग करना चाहिए।

2. नवाचार शिक्षा का शिक्षक द्वारा शिक्षण कार्य में प्रयोग के महत्वपूर्ण प्रयत्नों व विचारों में स्पष्टता आ जाती है।

3. नवाचार शिक्षा में कम्प्यूटर द्वारा एक ही समय में बहुत से शिक्षार्थियों को शिक्षण करवाया जा सकता है।

4. नवाचार शिक्षा का प्रयोग कर शिक्षक को मनोरंजन के साथ-साथ शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति आसानी से हो सकती है।

5. नवाचार शिक्षा के प्रयोग विद्यार्थी भी मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षण कार्य पूर्ण कर सकते है।

6. दूर-दराज के स्थानों जहां शैक्षिक सुविधाएं बहुत सीमित मात्रा में उपलब्ध है या नहीं है, ऐसे स्थानों पर दूरस्थ शिक्षा,शिक्षा के प्रसारण में बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है।

7. ग्रामीण क्षेत्रों में (नवाचार शिक्षा के संचार माध्यमों) शैक्षिक टेलीविजन प्रसारण को बढ़ावा मिलता चाहिए।

संदर्भ सूची

1. श्री वास्तव शंकर शरण, 'शिक्षा में नवाचार एवं आधुनिक प्रवृत्तियाँ', हर प्रसाद भार्गव, 1987
2. ओड़ एल.के. 'शैक्षिक प्रशासन', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 2007
3. भाई योगेन्द्र जीत, 'शिक्षा में आधुनिक प्रवृत्तियाँ', विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, नवीनतम् संस्करण
4. अग्रवाल जे.सी., 'शैक्षिक तकनीकी तथा प्रबन्धक के मूल तत्व', विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
5. माथुर एस.एस., 'शिक्षण कला एवं शैक्षिक तकनीकी', विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, पन्द्रहवां संशोधित संस्करण, 2006
6. कपूर उर्मिला, 'शैक्षिक तकनीकी', साहित्य प्रकाशन आगरा, 2007

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

सितार के सुरों के सम्राट–उस्ताद शाहिद परवेज़ खान

प्रभजोत कौर
(Research Scholar Lovely Professional University)
Assistance Professor (Department of Music and Dance)
Kurukshetra University, Kurukshetra
Email- prabhjotkaursitar@gmail.com
Mobile- 6280438845

सारांश

भारतीय संगीत अपनी शाश्वत परंपरा, भौगोलिक विविधताओं, भाषाई भिन्नताओं तथा रंग-बिरंगे सामाजिक भावों के कारण अत्यंत व्यापक और समृद्ध है। सामाजिक रुचियों तथा कला प्रस्तुति की विधियों को ध्यान में रखते हुए भारतीय संगीत को विभिन्न शाखाओं अथवा श्रेणियों में विभाजित किया गया है, जिनमें शास्त्रीय संगीत, उप-शास्त्रीय संगीत आदि प्रमुख हैं।

संगीत के महान कलाकारों ने केवल ध्वनि के माध्यम से ही नहीं, बल्कि भावनाओं और संवाद के माध्यम से भी श्रोताओं को आनंदित किया है। शीर्षक के अंतर्गत प्रस्तुत यह शोध प्रबंध भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रतिष्ठित सितार वादक उस्ताद शाहिद परवेज़ ख़ान साहब के जीवन, संगीत यात्रा तथा उनके वादन की विशिष्ट तकनीकों पर केंद्रित है। इस शोध का उद्देश्य उनकी कला को न केवल दस्तावेज़बद्ध करना है, बल्कि उनकी वादन शैली, रियाज़ पद्धति, और संगीत के प्रति समर्पण को भी उजागर करना है। उनका संगीत आज भी नवोदित कलाकारों के लिए प्रेरणा का स्रोत है। यह शोध उनके संगीत में प्रयुक्त मींड, गमक, तान, और अलंकरणों के विशेष प्रयोगों का भी विश्लेषण करता है, जिससे उनके वादन की उत्कृष्टता का स्पष्ट आभास होता है।

कीवर्ड - सितार, संगीत, शास्त्रीय संगीत, उस्ताद शाहिद परवेज़ खान, कलाकार, घराना।

भूमिका

गायन, वादन व नृत्य तीनों कलाओं का समावेश संगीत कहलाता है। संगीत की तीन कलाओं का अपना ही समृद्ध व प्राचीनतम इतिहास है। संगीत की शुरूआत वैदिक काल से भी पहले की मानी जाती है। इतिहास एवं वेदों में भी संगीत को चौसठ कलाओं में से उच्च श्रेणी प्राप्त है। पंडित शारंगदेव द्वारा लिखित संगीत रत्नाकर में कहा गया है - 'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं 'यं संगीत मुच्यते' अर्थात् गाना, बजाना तथा नृत्य इन तीनों का सम्मिलित रूप संगीत कहलाता है।

भारतीय संगीत अपनी शाश्वत परंपरा, भौगोलिक विविधताओं, भाषाई भिन्नताओं तथा रंग-बिरंगे सामाजिक भावों के कारण अत्यंत व्यापक और समृद्ध है। सामाजिक रुचियों तथा कला प्रस्तुति की विधियों को ध्यान में रखते हुए भारतीय संगीत को विभिन्न शाखाओं अथवा श्रेणियों में विभाजित किया गया है, जिनमें शास्त्रीय संगीत, उप-शास्त्रीय संगीत आदि प्रमुख हैं।

प्रारंभ से ही संगीत के महान् कलाकारों ने संगीत कला को विकसित करने में अत्यधिक योगदान दिया है, चाहे वह भारतीय संगीत, कर्नाटक संगीत, रवींद्र संगीत, पाकिस्तानी संगीत तथा पाश्चात्य संगीत ही क्यूं न हो। संगीत के महान् कलाकारों ने संगीत कला को न केवल ध्वनि के माध्यम से बल्कि भावनाओं एवं संवाद के माध्यम से अपनी विशिष्ट शैलियों द्वारा श्रोताओं को आनंदित व मंत्रमुग्ध किया है। तीनों विधाओं में से वादन का अपना विशेष इतिहास रहा है, वादन संगीत का वह रूप है जिसमें संगीतीय भावनाओं को अद्वितीय रूप से व्यक्त किया जाता है बिना किसी शब्दों के।

संगीतकार संगीत वाद्ययंत्र जैसे कि तंत्र वाद्य, सुषिर वाद्य, अवनद्ध वाद्य, घनवाद्य का उपयोग करके सांगीतिक धुनों को निकालते है। तंत्र वाद्य में सितार एक प्राचीन एवं लोकप्रिय भारतीय शास्त्रीय वाद्य यंत्र है जो हिन्दुस्तानी संगीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय संगीत में वादन शैलियों की परम्परा में घरानों का जन्म हुआ, जिनकी अपनी कुछ प्रमुख विशेषतायें एवं शैलियों का उपयोग कर घरानों की पीढ़ी दर पीढ़ी चल रही परम्पराओं द्वारा संगीत कलाकारों ने विशेष योगदान दे कर विश्वभर में भारतीय संगीत को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया।

आदरणीय पंडित रविशंकर, उस्ताद विलायत खान साहब, उस्ताद इनायत खान साहब, पंडित निखिल बनर्जी, पंडित बुधादित्य मुखर्जी, इत्यादि प्रसिद्ध सितारवादकों ने संगीत की दुनिया में खूब नाम कमाया इन महान कलाकारों ने केवल ध्वनि के माध्यम से ही नहीं, बल्कि भावनाओं और संवाद के माध्यम से भी श्रोताओं को आनंदित किया है। और ऐसे महान् सितारवादकों की श्रेणी में हम सभी के अनमोल रत्न उस्ताद शाहिद परवेज़ खाँ साहब के योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता।

उस्ताद शाहिद परवेज़ खाँ साहब

वर्तमान महान सितार वादकों में उस्ताद शाहिद परवेज खाँ साहब की अपनी ही अनोखी व विशिष्ट पहचान है। महान कलाकार संगीत परम्परा का निर्वाह पूरे लगन के साथ कर अपने घराने एवं माता- पिता / बड़ों का नाम रोशन कर दुनिया में अपनी अलग छाप छोड़ देते है।

ऐसे ही अद्भुत प्रतिभा के धनी कलाकार उस्ताद शाहिद परवेज़ जी का जन्म 14 अक्टूबर 1954 में मुंबई में हुआ द्य आपके पिता जी का नाम उस्ताद अजीज खाँ साहब था। वह एक बेहतरीन सुरबहार एवं सितार वादक होने के साथ-साथ वह फिल्मी संगीत निर्देशक भी थे। आपके पिता ने फिल्मी संगीत दुनिया में खूब नाम किया। आपके दादा जी वहीद खाँ जी ने उनसे (उस्ताद अजीज खाँ साहब) से अपने घराने की परम्परा को बनाए रखने के लिए आपको (उस्ताद शाहिद परवेज़ जी) संगीतिक शिक्षा देने को कहा उन्होंने अपने पिता की बात को स्वीकार कर फिल्मी क्षेत्र से ज्यादा वरीयता शाहिद परवेज़ जी को शिक्षा देने को दी। शाहिद परवेज़ जी बताते है कि उनके दादा (वहीद खाँ जी) तीन साल की उम्र में उन्हें अपनी गोद में बिठाकर संगीत की शिक्षा देते थे।

आठ साल की उम्र में ही शाहिद परवेज़ जी ने मंच प्रदर्शन करना शुरू कर दिया। बाल्य अवस्था से ही आपके पिता के इलावा आपको हफीज खाँ जो कि एक प्रमुख गायक और सुरबहार तथा सितार के प्रवीण वादक थे द्वारा भी शिक्षा दी गई।

शाहिद परवेज़ जी ने गायन और सितार की शिक्षा के साथ-साथ ताल की बारीकियों को आत्मसात करने के लिये 10 वर्षों से भी अधिक समय तक तबला की शिक्षा दिल्ली घराने के मुन्नु खान से ली।

घरानेदार कलाकारों का भारतीय शास्त्रीय संगीत को दिशा देने एवं लोक प्रचलित करने में प्रमुख स्थान है। सितार के क्षेत्र में ऐसे ही शाहिद परवेज़ जी ने इमदादखानी घराने को एक नई दिशा एवं कलात्मकता की उँचाई दी। सम्मानित इटावा घराने / इमदादखानी घराने से उस्ताद शाहिद परवेज जी सातवी पीढ़ी के प्रतिनिधि कलाकार व बेहतरीन सितार वादक हैं।

शाहिद परवेज़ जी के सितार वादन में तंत्रकारी एवं गायकी अंग के मिश्रण का बेजोड़ संयोजन झलकता है। आपकी वादन शैली में ध्रुपद, धमार शैली जैसी गंभीरता, ख्याल शैली जैसी अलंकारिता, ठुमरी शैली जैसी चंचलता एवं भाव-प्रवीणता सुनने को मिलती है। आप मींड, गमक, कण, कृन्तन, खटका, मुर्की, कम्पन, हरकत इत्यादि जैसे अलंकरणों का अनूठा प्रयोग

कर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करते हैं।

शाहिद परवेज़ जी बेहतरीन तैयारी व सुरीलेपन के साथ वादन में जटिल लयकारियों, आलाप, जोड़-आलाप, विलम्बित व द्रुत गतों में मींड, गमक, खटका जैसे अलंकरणों का प्रयोग कर विविध अंगों की तानें- जैसे कि सपाट की तानें, छूट की तानें, गमक की तानें इत्यादि को स्वाभविक प्रदर्शन में शामिल कर सितार संगीत के क्षेत्र में एक प्रेरणा स्रोत स्थापित किया है। जो नई संगीतिक पीढ़ी को आकर्षित करती हैं और उनको शास्त्रीय संगीत से जुड़े रहने की प्रेरणा देती हैं।

उस्ताद शाहिद परवेज़ जी भारत में ही नहीं बल्कि यूरोप, उत्तरी अमेरिका, एशिया, आस्ट्रेलिया आदि दुनिया भर के बड़े-बड़े समारोहों में प्रस्तुतियाँ कर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करते हैं

उस्ताद शाहिद परवेज़ जी ने S. P. K. (Shahid Parwej khan) के नाम से एक संगीत Academy बनाई है जो कि (US- Arizona) में स्थित है, जहाँ से दुनिया भर के लोग आपसे सितार की तालीम ले रहे है। आप के बेटे शाकिर खान जो कि आप के मार्गदर्शन में सितार की तालीम ले रहे हैं उन्हें भी इस क्षेत्र में संगीत प्रेमियों से बहुत प्रशंसा हासिल है। कभी-कभी आप अपने बेटे शाकिर खान के साथ मंच - प्रदर्शन भी करते है। इसके इलावा आपके बहुत से शागिर्द भी बहुत अच्छा वादन कर आपका नाम रोशन कर खूब नाम कमा रहे हैं। आप से सितार की शिक्षा लेकर आज के नवीन पीढ़ी के संगीतज्ञ भी अपनी प्रतिभा की पहचान बना रहे है।

इस तरह जहाँ आपने अपनी घरानेदार संगीतिक परम्परा को को संरक्षित करने में सफलता हासिल की है। वहीं अपनी सीमाओं को बढ़ाते हुए और भी ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया है।

"उस्ताद शाहिद परवेज़ खान अपनी संगीत यात्रा, प्रेरणा और युवा पीढ़ी के लिए सलाह पर विचार करते हैं— आजकल मैं देख रहा हूँ कि ज्यादातर लोग पेशे से संगीतकार हैं। बहुत कम लोग हैं जो दिल से संगीतकार हैं। इसलिए, सभी युवा संगीतकारों से मैं यही कहूँगा - धैर्य रखें और मंच पर प्रस्तुति देने में जल्दबाजी न करें। अगर आप अच्छा संगीत बनाते हैं और संगीत से सच्चा प्यार करते हैं, तो आपकी सभी मनचाही चीज़ें अपने आप हो जाएँगी - आपको उनके पीछे भागने की ज़रूरत नहीं है"। (हिन्दी अनुवाद- the new Indian express-)

'हृदय को कला का मूल्यांकन करना चाहिए

उस्ताद शाहिद परवेज़ एक संगीत के जादूगर हैं, जो पौराणिक प्रेम को बेहतरीन ढंग से व्यक्त करने के लिए मौन को भी मोह लेते हैं। उस्ताद शाहिद परवेज़ इटावा घराने की सातवीं पीढ़ी से हैं, जो वाद्य यंत्रों पर श्गायन शैलीश के लिए प्रसिद्ध है। उनके दादा उस्ताद वज़ीर खान एक सुरबहार उस्ताद थे। इस समृद्ध संगीत परंपरा के अनुसार, शाहिद परवेज़ को अपने पिता-गुरु उस्ताद अज़ीज़ खान से सितार सीखने से पहले, गायन और तबले में भी प्रशिक्षण मिला था। इस तरह की तैयारी के साथ, वह उस्ताद बड़े गुलाम अली खान और उस्ताद अमीर खान की गायन शैली को अपनी कला में कुशलता से मिलाते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि उस्ताद शाहिद परवेज़ इटावा घराने के सबसे प्रतिभाशाली संगीतकारों में से एक हैं, जिसमें उस्ताद इम्दाद खान, उस्ताद इनायत खान और उस्ताद विलायत खान जैसे कई महान कलाकार शामिल हैं। दिलचस्प बात यह है कि इन महान संगीतकारों की तरह, परवेज़ भी बंगाल में एक जाना-पहचाना नाम हैं, यह वह जगह है जिसने कई महान वाद्य कलाकारों को जन्म दिया है। इस साल संगीत से भरपूर कोलकाता की सर्दियों में, उनका सितार वादन किसी भी प्रतिष्ठित संगीत कार्यक्रम के बिना अधूरा था। वे ज्यादातर युवा तबला वादकों जैसे हिन्दोल मजूमदार और शुभज्योति गुहा के साथ होते थे और डोवर लेन, चौधरी हाउस म्यूज़िक फ़ेस्टिवल, सुनंदा मजूमदार मेमोरियल कॉन्सर्ट, बालीगंज मैत्रेय म्यूज़िक कॉन्फ्रेंस जैसे कई आयोजनों में सबसे ज्यादा मनमोहक थे'। (हिन्दी अनुवाद- -The Hindu)

"उस्ताद शाहिद परवेज़ खान और उस्ताद राशिद खान के आपसी सम्मान का राज उनकी बेजोड़ जुगलबंदी है—

द हिंदू नवंबर फेस्ट' के लिए शहर में उनके 'नाद निनाद' जुगलबंदी प्रदर्शन से पहले, राशिद कहते हैं, "कभी कोई

टकराव नहीं हुआ, न ही कभी होगा। इतने वर्षों में आपसी समझ और सहजता ही सब कुछ रही है।" (हिन्दी अनुवाद-The Hindu)

उद्देश्य

- उस्ताद शाहिद परवेज़ ख़ान साहब के जीवन एवं संगीत यात्रा का अध्ययन करना।
- उनके वादन में प्रयुक्त प्रमुख तकनीकी तत्वों का विश्लेषण करना।
- उनकी वादन शैली को उनके पूर्वजों की परंपरा से जोड़ते हुए समझना।
- आधुनिक युग में उनके संगीत के प्रभाव और लोकप्रियता को स्पष्ट करना।
- सितार वादन के क्षेत्र में उनके योगदान और विशेषताओं को उजागर करना।

शोध विधि

इस शोध कार्य में गुणात्मक (Qualitative) शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। आवश्यक जानकारियाँ विभिन्न स्त्रोतों से एकत्र की गईं, जैसे :

प्राथमिक स्त्रोत :

- उस्ताद शाहिद परवेज़ ख़ान साहब के लाइव वादन प्रस्तुतियाँ एवं रिकॉर्डिंग्स का विश्लेषण
- उनके साक्षात्कार और व्यक्तिगत बयानों का अध्ययन
- संगीत विशेषज्ञों एवं विद्यार्थियों से अनौपचारिक संवाद

द्वितीयक स्त्रोत :

- पुस्तकों, शोधपत्रों, पत्रिकाओं और संगीत आलोचकों के लेख
- ऑनलाइन मंचों जैसे यूट्यूब, ऑडियो-विजुअल दस्तावेज़ आदि से संग्रहित जानकारी
- विश्लेषण में वादन की तकनीकी विशेषताओं को श्रवण, दृश्य एवं पाठ्य स्रोतों के माध्यम से समझा गया है और उन्हें संगीत शास्त्रीय दृष्टिकोण से विवेचित किया गया है।

निष्कर्ष

'सितार के सुरों के सम्राट-उस्ताद शाहिद परवेज़ खान' शीर्षक के अंतर्गत प्रस्तुत यह शोध प्रबंध भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रतिष्ठित सितार वादक उस्ताद शाहिद परवेज़ ख़ान साहब के जीवन, संगीत यात्रा तथा उनके वादन की विशिष्ट तकनीकों पर केंद्रित है। इस शोध का उद्देश्य उनकी कला को न केवल दस्तावेज़बद्ध करना है, बल्कि उनकी वादन शैली, रियाज़ पद्धति, और संगीत के प्रति समर्पण को भी उजागर करना है। उनका संगीत आज भी नवोदित कलाकारों के लिए प्रेरणा का स्रोत है। यह शोध उनके संगीत में प्रयुक्त मींड, गमक, तान, और अलंकरणों के विशेष प्रयोगों का भी विश्लेषण करता है, जिससे उनके वादन की उत्कृष्टता का स्पष्ट आभास होता है।

संदर्भ

1. Aug 01, 2025 the new Indian express- https://www.newindianexpress.com/cities/hyderabad/2025/Jan/11/ustad-shahid-parvez-khan-reflects-on-his-musical-journey-inspiration-and-advice-for-the-younger-generation
2. April 21, 2017-The Hindu- https://www.thehindu.com/entertainment/music/the-heart-should-evaluate-the-art/article18161780.ece)
3. November 26, 2016- The Hindu- https://www.thehindu.com/entertainment/music/A-25-year-togetherness/article16706424.ece)
4. https://www.spkacademy.org/
5. https://www.shahidparvezkhan.com/

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

साइबर अपराध : आधुनिक समय में बदलता स्वरूप व वर्गीकरण सहित अध्ययन

प्रो. (डॉ.) विनोद कुमार उपाध्याय
प्राचार्य, शिक्षा संकाय
महाराज विनायक ग्लोबल विश्वविद्यालय, जयपुर

रुकमणी शर्मा
शोधार्थी, शिक्षा विभाग,
महाराज विनायक ग्लोबल विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

शोध सारांश

आज के समय में सभी कार्य यथा सम्भव नेट का उपयोग करके कम्प्यूटर व स्मार्ट फोन से किये जा रहे हैं। बैंक, स्कूल, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, चिकित्सकीय सेवा, ई-कॉमर्स, ई-लर्निंग इत्यादि के साथ-साथ शासकीय कार्य भी (ई-गवर्नेस) नेट के द्वारा सम्पादित किये जाने लगे है। नेट के उपयोग के साथ जहाँ सुविधा व गति मिली है वहीं नेट कम्प्यूटर से कई अपराध भी घटित होने लगे है। इन उपराधों में मेल अकाउन्ट हेकिंग, मेलवर्टाईजिंग, रेनसमवेयर, साइबर स्टेकिंग, स्पेमिंग, स्पूफिंग, इत्यादि अपराध शामिल है।

मुख्य शब्द : साइबर अपराध, इंटरनेट, कंप्यूटर, वायरस, ऑनलाइन आदि।

प्रस्तावना

भारत में 57 करोड़ से अधिक नेट उपभोक्ता है (वर्ष 2019)। भारत में नेट के उपयोग के साथ-साथ साइबर अपराधों में बढ़ोतरी होती जा रही है, मूल समस्या अपराध व इनका अन्वेषण है। अपराध घटित होने के पश्चात् सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कर अन्वेषण करना है जिससे अपराधियों को निरुद्ध किया जा सके व विधि अनुसार सिद्ध दोष किया जा सके, एवं पीड़ित को न्याय दिलाया जा सके, अन्वेषण का मूल उद्देश्य साक्ष्य एकत्रित करना होता है, परन्तु साइबर अपराधों में सबसे मुख्य चुनौती योग्यताधारी पुलिस बल कि कमी है, जो साइबर अपराध को समझे व तुरन्त आवश्यक कार्यवाही करे एवं आवश्यक साक्ष्य एकत्रित कर सके। साइबर अपराधों कि बढ़ोतरी इस तथ्य को इंगित करती है कि अपराधियों को पुलिस अन्वेषण का कोई भय नहीं है। साइबर पुलिस थानों की कमी, साइबर अपराध को अन्वेषण में तकनीकी अधिकारियों कि कमी अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय में भारत देश का न होना, अनुसमर्थन न करना, साइबर अपराध के सभी साक्ष्य सोफ्ट कॉपी में होते है जिनको प्रिंट करवा कर, उनके ई-मेल पता किस कम्प्यूटर या मोबाइल से चलाया गया इत्यादि को ज्ञात करना सभी छोटी से छोटी जानकारियों का अभाव पुलिस में विद्यमान है। कई प्रकार के साइबर अपराध जैसे फिशिंग, मेलवटाइजिंग, साफ्टवेयर पायरेसी, स्पेमिंग इत्यादि की जानकारी ही पुलिस को नहीं है, स्थिति इतनी खराब है कि कई बार तो पीड़ित को यह बताया जाता है कि उसके साथ कोई अपराध घटित ही नही हुआ है, इसका स्पष्ट कारण है कि पुलिस को ही इन सब तकनीकी बातों कि जानकारी नहीं है।

साइबर अपराध के वर्गीकरण- साइबर अपराध के वर्गीकरण को देखा जाए तो इसे निम्नलिखित प्रकार से देख

सकते हैं—

हैकिंग : हैकिंग जिस का सामान्य अर्थ है कि सूचना या कंप्यूटर नेटवर्क से जुड़े किसी सिस्टम को ऑनलाइन या अन्य माध्यम से घुसपैठ बनाना। कंप्यूटर या इंटरनेट के माध्यम से इस प्रकार की घुसपैठ से व्यक्ति के वित्तीय मनोरंजन तथा निजी जानकारियों जैसे तंत्रों पर हमला किया जाता है। कई बार ऐसी हैकिंग किसी को मात्र परेशान करने या फिर आंशिक बेईमानी या धोखे के लिए अनधिकृत तरीके से कार्य किया जाता है।

साइबर पाइरेसी : इस प्रकार का साइबर अपराध किसी सॉफ्टवेयर किसी संगीत या अन्य प्रकार के बौद्धिक बंधुओं को संदर्भ में प्रतियों की साइबर चोरी के रूप में जाना जाता है। सामान्यतः इसमें कंप्यूटर प्रोग्राम के द्वारा चोरी करके उसकी प्रतियां या नकल बनाए जाने को जानबूझकर इस्तेमाल कर किया जाता है। साइबर संबंधित सॉफ्टवेयर पाइरेसी साइबर अपराध की श्रेणी में है।

साइबर स्पैमिंग : ऑनलाइन सूचना और संचार के लिए ईमेल जैसी व्यवस्था में अनावश्यक और अनजान ईमेल का आना साइबर स्पैमिंग कहलाता है। विज्ञापन और जनसंपर्क के बढ़ते दायरे के कारण आज हमारी निजी जानकारियां तथा ईमेल और फोन नंबर भी बिक्री किए जा रहे हैं। ऐसे में कई बार अपनी ईमेल पर हम एक से अधिक और अनचाहे ई-मेल पाते हैं। भारत की स्थिति विश्व भर में शीर्ष 10 देशों में शामिल है जहां पर सबसे ज्यादा साइबर स्पर्मिंग किया जाता है। साइबर स्पैमिंग से सामान्यता अधिक परेशानियां और इलेक्ट्रॉनिक कम्युनिकेशन संबंधित समस्याएं सामने आती हैं।

ई-मेल स्पूफिंग : कंप्यूटर तथा इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से भेष बदलकर कंप्यूटर जैसे ही तरीकों का इस्तेमाल कर कंप्यूटर में प्रवेश कर जाना साइबर स्पूफिंग कहलाता है। स्पूफिंग ऐसी विधि है जिससे ईमेल भेजे जाने वाले के पते और ईमेल के शीर्ष संबंधित अन्य हिस्सों में बदलाव कर दिया जाता है जिससे यह आभास होता है कि किसी अन्य शोध से भेजी गई है। इनमें महत्वपूर्ण लोग तथा प्रतिष्ठित हस्तियों के ईमेल को बनाकर भेजा जाता है जिससे वह कहीं ना कहीं अन्य वित्तीय सहायता और जरूरत के संदर्भ में प्रयोग कर सकते हैं। इनके द्वारा वांछित और अवांछित कार्य भी कर लिए जाते हैं। इसे ईमेल से छेड़छाड़ तथा ईमेल के दुरुपयोग के रूप में देखा जा सकता है इससे ई-मेल खाते में भी छेड़छाड़ संभव है।

छद्म रूप या पहचान की चोरी - साइबर माध्यमों के द्वारा इलेक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर पासवर्ड या अन्य तरीकों से छल पूर्वक अपनी पहचान छुपाकर बेईमानी से उपयोग किए गए साइबर उपयोगों को आईडेंटिटी थेफ्ट कहा जाता है। इस आईडेंटिटी थेफ्ट में पहचान बदलकर किसी का नुकसान बेईमानी या चल या छद्म रूप से किया जाता है। ऑनलाइन उपभोक्ताओं तथा अन्य व्यक्तियों के संदर्भ में व्यक्तिगत और निजी जानकारियों को इस अंदर में उपयोग कर लिया जाता है। कई बार निजी मामलों में इसमें ईमेल पढ़ना पैसे चुराना तथा चोरी से ही सर्विस प्रोवाइडर से अपनी सेवाओं का लाभ लेना भी इस प्रकार के अपराध की पहचान है।

फिशिंग - यह एक लालच देता हुआ तरीका है जिसे हम फिशिंग के रूप में जानते हैं। इस अपराध में किसी व्यक्ति को गैरकानूनी रूप से वेबसाइट पर लॉगइन कराने तथा क्रेडिट कार्ड या अन्य व्यक्तिगत जानकारियों के संदर्भ में उसे लालच दिया जाता है। ऐसे लालच सामान्यतः संदेशों के द्वारा भेजा जाता है जिसमें व्यक्ति लालच बस उस संदेश को क्लिक करता है। फिशिंग में व्यक्ति अपने निजी जानकारी तथा सुरक्षा के लिए उपयोग किए गए मानकों को भी बता देता है।

डाटा की चोरी - कंप्यूटर या कंप्यूटर के किसी अन्य उपकरण में संग्रहित किसी भी डिजिटल सामग्री को डाटा के रूप में देखा जाता है। ऑनलाइन डाटा चोरी के संदर्भ में डाउनलोड कॉपी करना तथा डाटा की निकासी या संकरण करना डाटा चोरी के रूप में माना जाता है। इसमें व्यक्ति किसी भी प्रकार से चाहे ऑनलाइन या अन्य तरीके से डाटा के संपर्क में आता है तथा वह डिजिटल माध्यमों से उस डाटा को धोखे और बेईमानी से प्राप्त कर लेता है।

साइबर पोर्नोग्राफी - इस का सामान्य अर्थ इंटरनेट और इंटरनेट के द्वारा प्रयोग किए जा रहे साइबर उपकरणों पर सेक्स या कामुक गतिविधियों को संप्रेषित करना या उसका परिचालन करना है। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम में साइबर पोर्नोग्राफी को एक अपराध के रूप में माना गया है वहीं दूसरी ओर भारतीय दंड संहिता में भी इस कार्य के लिए दंडात्मक

नियम है। साइबर पोर्नोग्राफी के अतिरिक्त इसके विस्तार इस प्रकार से भी देखे जा सकते हैं कि किसी व्यक्तिगत या निजी स्थल जैसे बेडरूम या अन्य स्थल जहां निजता का उपयोग करता हो जैसे होटल आदि या कपड़े बदलने के स्थान में छुपकर कैमरा लगाना तथा कैमरा से अनैतिक कार्यों की रिकॉर्डिंग करना। इसके द्वारा अपराध ऑडियो वीडियो तथा तस्वीरों को ग्रैफिक्स फाइलों तथा टैक्स के द्वारा भी किया जा सकता है। इस अपराध के अंतर्गत अश्लील सामग्री को भेजना तथा संप्रेषण करना है।

साइबर आतंकवाद : सूचना प्रौद्योगिकी और कंप्यूटर से जुड़े हुए डिजिटल माध्यमों का उपयोग कर आतंक गतिविधियों के बारे में क्रियाएं करना साइबर आतंकवाद कहलाता है। भारत में 26 नवंबर 2008 को हुए हमले में ब्रिटिश नागरिकों की सूचनाएं निकाल ली गई थी तथा उन्हें किन-किन कमरे में रुकाया गया है इसकी पहचान की गई थी। इसी प्रकार से साइबर अपराध उन मामलों में साइबर आतंकवाद कहलाता है जब साहिब भर संबंधित क्रियाओं को किसी सरकारी और महत्वपूर्ण इकाइयों में जैसे परमाणु रिएक्टर, रेलवे, बांध और अन्य महत्वपूर्ण सुरक्षा संबंधी इकाइयों में दुरुपयोग किया जाता है। इस प्रकार के कृत्य साइबर आतंक के दायरे में रखे जाते हैं।

साइबर जालसाजी : साइबर कारणों के द्वारा किसी व्यक्ति को वित्तीय बैंकिंग तथा सामाजिक संदर्भों में जालसाजी और धोखाधड़ी देने की क्रियाओं को ही हम साइबर जालसाजी के रूप में जानते हैं। प्रायः इनमें गलत और धोखाधड़ी भरे ईमेल और संदेश प्राप्त होते हैं जैसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किसी व्यक्ति की लॉटरी लगना, इनाम में किसी व्यक्ति को महंगी गाड़ी या अन्य संसाधनों का मिलना। जबकि वास्तविकता में ऐसी कोई इनाम की धनराशि या संसाधनों का वितरण नहीं किया जाता है। कई बार व्यक्ति ऐसे में अपनी निजी जानकारियों और वित्तीय लेनदेन के खातों की जानकारी साझा कर बैठता है। ऐसे में उसके द्वारा प्राप्त जानकारी से क्लोनिंग तथा नकली पहचान और ईमेल आईडी भी तैयार कर ली जाती है। परिणामस्वरूप जालसाजी के घर संपन्न हो जाते हैं। नए दौर में अब सोशल मीडिया तथा वैवाहिक कार्य संपन्न कराने वाली वेबसाइटों पर भी इस प्रकार की धोखाधड़ी की जाने लगी है।

डाटा डिडिलिंग : इस प्रकार की साइबर अपराध कंप्यूटर और सूचना संचार के उपकरणों से डेटा प्रोसेसिंग से पहले डाटा का फेरबदल तथा उसके तैयारी के लिए दोषी मानसिकता से डाटा को नुकसान पहुंचाने का कार्य किया जाता है।

साइबर स्टॉकिंग : इस प्रकार के अपराध वह अपराध है जहां पर साइबर माध्यमों से किसी व्यक्ति का पीछा किया जाता है। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति किस प्रकार से इंटरनेट ईमेल और इलेक्ट्रॉनिक डिवाइसेज का इस्तेमाल कर रहा है। सामान्यतः उसके व्यक्तिगत जीवन में घोषणा और घुसकर जांच करना इस तरीके की स्टॉकिंग का कार्य होता है। इस प्रकार के साइबर अपराध में व्यक्ति को परेशान करने के लिए इंटरनेट के द्वारा अनेक उपकरणों के साथ ब्रिटेन तथा संदेशों में भी छुप कर उसके चौट रूम में घुसने का प्रयास किया जाता है। एक बार उसके द्वारा ईमेल या चौट बॉक्स में घुसने के बाद उस पर अपराधी नजर बनाए रखता है तथा उसके व्यक्तिगत जीवन सहित अनेक प्रस्ताव व हमले के संदेश अनावश्यक रूप से आने लगते हैं। साइबर स्टॉकिंग का शिकार प्रायः लड़किया और महिलाएं होती हैं।

सलामी हमला : इस प्रकार का साइबर हमला इतना छोटा हमले के रूप में होता है कि सामान्यतः कई व्यक्तियों का ध्यान इस पर नहीं जाता है। वित्तीय संदर्भों में इसका उपयोग साइबर अपराध के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए बैंक के कंप्यूटर में ऐसा लॉजिक सॉफ्टवेयर लगा दिया जिससे कि रुपयों के अतिरिक्त दिखाने जाने वाले पैसों को एक निर्धारित खाते में पहुंचा दिया जाता रहे। छोटे-छोटे अंश से इस बैंक खाते में करोड़ो रुपए जमा हो सकते हैं। इस प्रकार के साइबर अपराध कंप्यूटर और सूचना संचार के उपकरणों से डेटा प्रोसेसिंग द्वारा फेरबदल तथा उसके तैयारी करके नुकसान पहुंचाने के लिए किया जाता है।

वेब जैकिंग : इस प्रकार के साइबर अपराधों में वेबसाइट आदि पर अनावश्यक रूप से नियंत्रण उत्पन्न कर लिया जाता है। इस अतिक्रमण के कारण मूल संचालक वेबसाइट का उपयोग नहीं कर पाता है। प्रायः इन प्रकार के साइबर अपराध होने के बाद जैकिंग करने वाले व्यक्ति को भरपाई के रूप में पैसा देना पड़ता है।

निष्कर्ष

साइबर अपराध की प्रक्रिया को यदि समझ लिया जाए तो कई व्यक्ति इसका पीड़ित बनने से स्वयं को बचा सकते है तथा पीड़ित बन भी जाए तो इसके पश्चात् यदि तकनीकी एवं साधन सम्पन्न पुलिस द्वारा अन्वेषण किया जाए तो साइबर अपराधियों को वैधानिक प्रक्रिया के तहत दंडित किया जा सकता है। इसी के साथ यदि साइबर अपराधी भारत में ना हो के विदेश में स्थित है और वहां से साइबर अपराध घटित करता है तो ऐसी स्थिति में मात्र एक अन्तर्राष्ट्रीय बूडापेस्ट अभिसमय एवं बूडापेस्ट संधि की शर्तें ना मानने के कारण ऐसे विदेशी अपराधी का प्रत्यर्पण किया जाना संभव नहीं है और ना ही उस देश के कम्प्यूटर सोर्स / कम्प्यूटर का डाटा भारत की पुलिस प्राप्त कर सकती है। इस प्रकार कभी-कभी संसाधन होते हुए भी भारतीय पुलिस अर्न्तराष्ट्रीय स्तर के साइबर अपराधी को वैधानिक कार्यवाही कर अभिरक्षा में नहीं ला सकती।

साइबर अपराध से बचने के लिये स्वयं को सुरक्षित रखने के लिये व्यक्ति की जागरूकता एवं तकनीकी संसाधन की सहायता दोनों ही आवश्यक है। कई तरह के सॉफ्टवेयर आते हैं जिनका उपयोग स्मार्टफोन एवं कम्प्यूटर में कर लिया जाए तो ईमेल आई.डी. इत्यादि को साइबर अपराधी के द्वारा हैक नहीं किया जा सकता है और किसी भी प्रकार का अन्य अपराध बैंक फ्रॉड, अवैधानिक धन का अंतरण इत्यादि वगैरा भी नहीं किया जा सकता।

संदर्भ सूची

1. त्रिपाठी, एस.पी. गोयल, रितेन्द्र शुक्ला, प्रवीण (2014) "Introduction to Information Security" Dreamtech Press-ISBN-108.9789351194736.
2. दुग्गल, पवन (2002) "Cyber Law The Indian Prespective" Saakshar Law Publi
3. दुग्गल, पवन (2015) "Cyber security Law" Saakshar Law Publciations.
4. दुग्गल, पवन (2019) "As Cyber Security Law Develops" Sakshar Law Publications.
5. फातिमा तलत (2018) 'इन्टरनेट विधि एवं साइबर अपराध' Eastern Book Company.
6. अशिता, रेजीडी (22, Nov. 2016) "With only 250 convictions India's Cyber Cime Conviction rate remains Abysmally Low- www-firstpost-com.
7. ऐलवारिस, एम. ईलांगो, एन.एम. (Oct. 2017) "Analysis of Cyber crime Investigation Mechanism in India". Indian Journal of Sciences and Technology],Vol. 10(40), PP-1-4, w-IJST-com.
8. जॉन, निर्मल (20, Oct. 2017) "Why Corporates Prefer Private Investigator to Cyber Cops" www.economic times.com.
9. पाटील, के.ए. वैयहारे, एस. सैजुल, किरण गिरसे, माधुरी (2017) "Hurdles in Cyber Forensic Investigation in India". (IOSR&JCE) e-ISSN 2278-0661. P-ISSN -2278-8727] PP. 18 - 21. www-iosr-journals-org.
10. कोतवाल, साहु मनहास, जे. (2017) "Investigation of different constraints in Cyber Crime and Digital Forensic". ijarcesse, Vol-7, Issue 7, PP-222 & 227-www-ijarcsse-com
11. डोगरा, सार्थक, 19 April 2021 "Over 27 million india adults experienced identity theft that in the past 12 months says norton report"- www-indiatoday-com
12. यादव, इशिका 14 Dec. 2021 What will cyber crime look like in 2022" www.techgig.com
13. गीतेश, 4 Jan-2021 "Number of Cyber Crime Cases Doubled in Pune In Pandemic Year". www.timesofindia.com
14. Express Web Desk, 10 Feb 2022. Tamil Nadu 46, new Cyber Crime Cells to be set up across the state. www.indianexpress-com Sharma, Shantanu N-2 May 2022, there is 14% rise in cyber crime in Andhra Pradesh during lokdown% DGP" 11%25 PM IST-www.timesofindia.com

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

लेखकों, प्रकाशकों और पुस्तकालयों के लिए एक रणनीतिक उपकरण के रूप में आईएसबीएन के महत्व का अध्ययन

पुखराज प्राज
सहायक प्राध्यापक
पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान
एसडीयू, नया रायपुर (छत्तीसगढ़)
संपर्क : 8269042707
Mail Id: praajsir@gmail.com

सार : अंतर्राष्ट्रीय मानक पुस्तक संख्या (ISBN) पुस्तकों और अन्य लिखित प्रकाशनों के लिए एक विशिष्ट पहचानकर्ता है। 1970 में शुरू की गई, यह तब से पुस्तकों के वैश्विक प्रबंधन और वितरण के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण बन गई है। यह शोध पत्र आधुनिक प्रकाशन में ISBN के इतिहास, कार्य और महत्व का अन्वेषण करता है। हम लेखकों, प्रकाशकों, पुस्तकालयों और किताबों की दुकानों पर इसके प्रभाव पर ध्यान केंद्रित करते हुए, इस बात का अध्ययन करते हैं कि ISBN पुस्तकों की खोज, वितरण और विश्वसनीयता को कैसे बढ़ाता है। इसके अलावा, हम डिजिटल युग में ISBN की उभरती भूमिका और ई-पुस्तकों तथा स्व-प्रकाशन में इसके एकीकरण का भी अन्वेषण करते हैं। यह शोध अकादमिक प्रकाशन, पुस्तक बिक्री और वैश्विक ग्रंथसूची डेटाबेस में ISBN के महत्व पर भी प्रकाश डालता है।

बीज शब्द : ISBN, प्रकाशन, पुस्तक वितरण, अकादमिक प्रकाशन, पुस्तक बिक्री, ग्रंथसूची डेटाबेस, डिजिटल प्रकाशन।

प्रस्तावना : प्रकाशन के निरंतर विकसित होते परिदृश्य में, सटीक पहचान और सूचीकरण की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक आवश्यक हो गई है। इस प्रणाली के मूल में अंतर्राष्ट्रीय मानक पुस्तक संख्या (ISBN) है—एक विश्वव्यापी मान्यता प्राप्त संख्यात्मक पहचानकर्ता जो पुस्तकों और इसी तरह के प्रकाशनों के लिए एक डिजिटल पासपोर्ट का काम करता है। 1970 में पहली बार शुरू किए गए ISBN ने पुस्तकों की ट्रैकिंग, बिक्री और वर्गीकरण के तरीके में क्रांतिकारी बदलाव ला दिया है, जिससे प्रकाशकों, वितरकों, पुस्तकालयों और पाठकों के लिए साहित्य की विशाल और विविध दुनिया में नेविगेट करना आसान हो गया है।[1]

ISBN प्रणाली का प्राथमिक उद्देश्य पुस्तक प्रकाशन से जुड़ी उलझनों को दूर करना और व्यवस्था को सुव्यवस्थित करना है। पुस्तक के प्रत्येक संस्करण और प्रारूप को अपना विशिष्ट ISBN प्राप्त होता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि थोड़ी सी भी भिन्नता जैसे हार्डकवर बनाम पेपरबैक या अपडेटेड संस्करण डेटाबेस और बिक्री प्लेटफ़ॉर्म पर स्पष्ट रूप से पहचानी जा सके। विभेदन पर यह सावधानीपूर्वक ध्यान गलत पहचान को रोकता है और सटीक रिकॉर्ड-कीपिंग को बढ़ावा देता है, जो इन्वेंट्री प्रबंधन, बिक्री ट्रैकिंग, शैक्षणिक संदर्भ और यहाँ तक कि कॉपीराइट सुरक्षा के लिए भी महत्वपूर्ण है। प्रकाशन पारिस्थितिकी तंत्र का विस्तार हो रहा है और इसमें स्व-प्रकाशित लेखक और ई-पुस्तकें व ऑडियोबुक जैसे डिजिटल प्रारूप

शामिल हो रहे हैं, ISBN ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका बरकरार रखी है।[2] यह स्वतंत्र लेखकों को पेशेवर माध्यमों से अपनी कृतियाँ वितरित करने में सक्षम बनाता है और ऑनलाइन तथा भौतिक बाज़ारों में उनकी पुस्तकों की खोज क्षमता को बढ़ाता है। इसके अलावा, पुस्तकालय और शैक्षणिक संस्थान संसाधनों को कुशलतापूर्वक सूचीबद्ध करने और सही सामग्री तक पहुँच प्रदान करने के लिए ISBN पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं। अपने व्यावहारिक उपयोगों के अलावा, ISBN लेखकों और पाठकों के बीच एक सेतु का भी काम करता है।[3] उपभोक्ताओं के लिए, यह किसी पुस्तक के विशिष्ट संस्करणों या प्रारूपों की खोज को सरल बनाता है, जिससे निराशा कम होती है और खरीदारी का अनुभव बेहतर होता है। प्रकाशकों के लिए, यह पुस्तक के मूल, भाषा समूह और प्रकाशन संस्था के बारे में महत्वपूर्ण मेटाडेटा प्रदान करता है, जिससे वैश्विक वाणिज्य और अधिकार प्रबंधन को सहायता मिलती है। आज के डिजिटल-प्रथम प्रकाशन युग में, जहाँ पुस्तकें स्मार्टफ़ोन, टैबलेट और ई-रीडर पर पढ़ी जा सकती हैं, ISBN प्रणाली अपरिहार्य बनी हुई है।[4] यह अपने मूल उद्देश्य को बनाए रखते हुए नए सामग्री प्रारूपों को समायोजित करने के लिए विकसित हुई हैः रचनात्मकता और नवाचार पर आधारित उद्योग में स्पष्टता, व्यवस्था और पहुँच सुनिश्चित करना। चाहे पारंपरिक प्रिंट रन की सुविधा हो या क्लाउड-आधारित सामग्री वितरण का समर्थन, आईएसबीएन पर्दे के पीछे एक मूक प्रवर्तक है, जो यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक पुस्तक को साहित्यिक जगत में उसका उचित स्थान मिले।

आईएसबीएन का ऐतिहासिक अवलोकन : अंतर्राष्ट्रीय मानक पुस्तक संख्या (ISBN) प्रणाली की जड़ें 20वीं सदी के मध्य में हैं, जो पुस्तकों की पहचान और वितरण की तार्किक चुनौतियों के समाधान के रूप में उभरी। इसकी शुरुआत 1966 में यूनाइटेड किंगडम में हुई जब एक प्रमुख पुस्तक विक्रेता W.H. Smith ने भंडार प्रबंधन को सरल बनाने के लिए नौ अंकों की मानक पुस्तक संख्या (SBN) प्रणाली शुरू की।[5] एक मानकीकृत वैश्विक समाधान की आवश्यकता को समझते हुए, ISBN को आधिकारिक तौर पर 1970 में ISO 2108 के तहत अपनाया गया, जिससे SBN 10 अंकों के प्रारूप में परिवर्तित हो गया जिसका अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उपयोग किया जा सकता था। दशकों से, ISBN दुनिया भर के प्रकाशकों, पुस्तक विक्रेताओं और पुस्तकालयों के लिए महत्वपूर्ण बन गया, जिससे उन्हें पुस्तक संस्करणों और प्रारूपों को कुशलतापूर्वक ट्रैक और प्रबंधित करने में मदद मिली।[6] जैसे-जैसे प्रकाशन उद्योग का विस्तार हुआ। स्व-प्रकाशन के उद्भव, डिजिटल प्रारूपों के उदय और तेजी से विविध वैश्विक उत्पादन के साथ 2007 में, वैश्विक वाणिज्य में प्रयुक्त EAN-13 बारकोड प्रणाली के अनुरूप ISBN को 13-अंकीय प्रारूप में परिवर्तित किया गया, जिससे बाज़ारों और उद्योगों में अनुकूलता में सुधार हुआ।[7]

भारत ने साहित्यिक विकास और सुगम्यता के प्रति दृढ़ प्रतिबद्धता के साथ ISBN प्रणाली को अपनाया। 1972 में राजा राममोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान की स्थापना के बाद जिसका नाम इस प्रसिद्ध सुधारक और बुद्धिजीवी के नाम पर रखा गया देश में अधिक संरचित ISBN वितरण की नींव रखी गई। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, जो अब शिक्षा मंत्रालय है, के अंतर्गत जनवरी 1985 में राजा राममोहन राय राष्ट्रीय ISBN एजेंसी (RRRNA) की औपचारिक स्थापना हुई।[8] यह भारत के प्रकाशन ढाँचे में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हुआ, जिसने भारतीय प्रकाशकों, संस्थानों और लेखकों को अपने प्रकाशनों के लिए ISBN प्राप्त करने में सक्षम बनाया। भारत की ISBN नीति का एक सबसे उल्लेखनीय और समावेशी पहलू यह है कि भारतीय नागरिकों को ISBN निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं, जिससे यह सभी आर्थिक पृष्ठभूमि और भाषाई क्षेत्रों के लेखकों के लिए विशिष्ट रूप से सुलभ हो जाता है। जैसे-जैसे भारत में प्रकाशन विविध होता गया क्षेत्रीय भाषाओं, अकादमिक ग्रंथों और बुनियादी प्रकाशनों को अपनाते हुए आईएसबीएन का महत्व और भी स्पष्ट होता गया।

डिजिटल प्रकाशन की ओर बढ़ते बदलाव और स्व-प्रकाशित लेखकों की बढ़ती भागीदारी को देखते हुए, भारत ने 2016 में एक ऑनलाइन आईएसबीएन पोर्टल लॉन्च किया, जिससे आवेदन प्रक्रिया नाटकीय रूप से सरल हो गई और पहुँच व्यापक हो गई।[9] आज, आरआरआरएन मुद्रित पुस्तकों, ई-पुस्तकों और शोध प्रकाशनों सहित विभिन्न प्रारूपों में आईएसबीएन जारी करके भारतीय साहित्य के जीवंत और विस्तारित परिदृश्य का समर्थन कर रहा है। इसका कार्य न केवल भारतीय साहित्य को सूचीकरण और वितरण की वैश्विक प्रणालियों से जोड़ता है, बल्कि लेखकों को विभिन्न मंचों पर अपनी पुस्तकों का पेशेवर

रूप से विपणन करने का अधिकार भी प्रदान करता है। आईएसबीएन का विकास अपने ब्रिटिश मूल से भारतीय प्रकाशन की आधारशिला तक आधुनिक दुनिया में साहित्यिक आदान-प्रदान की गतिशील प्रकृति को दर्शाता है। यह केवल एक संख्या नहीं है, बल्कि एक ऐसी प्रणाली है जो संस्कृतियों, प्रारूपों और युगों को जोड़ती है, यह सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक प्रकाशित कृति का ज्ञान के वैश्विक भंडार में एक स्थान हो।

आईएसबीएन की कार्यक्षमता : एक आईएसबीएन कई भागों से बना होता है, जिनमें से प्रत्येक एक विशिष्ट उद्देश्य पूरा करता है :

1. **उपसर्ग तत्व (3 अंक) :** पुस्तक उद्योग समूह का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे पुस्तकों के लिए 978
2. **समूह या देश पहचानकर्ता (परिवर्तनीय अंक) :** प्रकाशक के देश या क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है।
3. **प्रकाशक पहचानकर्ता (परिवर्तनीय अंक) :** विशिष्ट प्रकाशक या संगठन को दर्शाता है।
4. **शीर्षक पहचानकर्ता (परिवर्तनीय अंक) :** पुस्तक के विशिष्ट संस्करण के लिए विशिष्ट पहचानकर्ता।
5. **जांच अंक :** आईएसबीएन की वैधता सत्यापित करने के लिए उपयोग किया जाने वाला अंतिम अंक।[10]

इस संरचना के कारण पुस्तकों को ग्रंथसूची डेटाबेस, किताबों की दुकानों और पुस्तकालयों में आसानी से सूचीबद्ध किया जा सकता है। आईएसबीएन किसी पुस्तक के अलग-अलग संस्करणों या प्रारूपों को निर्दिष्ट किए जाते हैं, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि विभिन्न संस्करणों (हार्डकवर, पेपरबैक, ई-बुक) की सही पहचान हो।

आधुनिक प्रकाशन में ISBN का महत्व

पुस्तकों के सुचारू वितरण को सुनिश्चित करने में ISBN एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ISBN प्रणाली प्रकाशकों, किताबों की दुकानों, पुस्तकालयों और ऑनलाइन खुदरा विक्रेताओं को पुस्तकों को आसानी से ट्रैक और सूचीबद्ध करने में सक्षम बनाती है। एक प्रकाशक किसी विशेष शीर्षक या संस्करण को ISBN प्रदान कर सकता है, जिससे आपूर्ति श्रृंखला में पुस्तकों की पहचान आसान हो जाती है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि पुस्तकों का सही ढंग से भंडारण, ऑर्डर और वैश्विक स्तर पर बिक्री हो, जिससे भ्रम या त्रुटियों का जोखिम कम होता है।[11] उदाहरण के लिए, Amazon, Barnes & Noble और Flipkart जैसे ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म अपने सिस्टम में लाखों पुस्तकों को सूचीबद्ध और ट्रैक करने के लिए ISBN पर निर्भर करते हैं। ISBN के बिना, खुदरा विक्रेताओं के लिए एक ही पुस्तक के विभिन्न संस्करणों के बीच अंतर करना या अपनी इन्वेंट्री का कुशलतापूर्वक प्रबंधन करना लगभग असंभव होगा।

ISBN प्रणाली का एक महत्वपूर्ण लाभ पुस्तकों की खोज योग्यता को बढ़ाने में इसकी भूमिका है। एक विशिष्ट पहचानकर्ता प्रदान करके, ISBN यह सुनिश्चित करते हैं कि कोई पुस्तक WorldCat, Google Books और Library of Congress जैसे अंतर्राष्ट्रीय ग्रंथ सूची डेटाबेस में सूचीबद्ध हो। परिणामस्वरूप, ISBN वाली पुस्तकें दुनिया भर के पुस्तकालयों, शोधकर्ताओं और पाठकों द्वारा आसानी से प्राप्त की जा सकती हैं।सूचना की अधिकता के इस युग में, ISBN विशिष्ट पुस्तकों को खोजने की प्रक्रिया को सरल बनाने में मदद करते हैं, जिससे पाठक और शैक्षणिक संस्थान आसानी से रुचिकर कृतियों की पहचान कर सकें और उन्हें प्राप्त कर सकें। ISBN लेखकों और प्रकाशकों की पुस्तकों को वैश्विक ग्रंथसूची और उद्धरण अनुक्रमणिकाओं में प्रदर्शित करके उनकी दृश्यता में भी सुधार करते हैं।[12]

शैक्षणिक प्रकाशन में, ISBN उद्धरण सटीकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शोधकर्ता, विश्वविद्यालय और विद्वत्तापूर्ण प्रकाशक यह सुनिश्चित करने के लिए ISBN पर निर्भर करते हैं कि उनके प्रकाशनों का शैक्षणिक पत्रों और शोध पत्रिकाओं में उचित संदर्भ दिया जाए। शैक्षणिक पत्र लिखते समय, शोधकर्ता पुस्तकों का सही संदर्भ देने के लिए ISBN का उपयोग करते हैं, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि उद्धरण सटीक और पहचान योग्य हों।[13] कई विद्वत्तापूर्ण पुस्तकों, जैसे मोनोग्राफ, पाठ्यपुस्तकें और शोध संकलन, को विश्वविद्यालय पुस्तकालयों, शोध संस्थानों और शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में शामिल करने के लिए ISBN होना आवश्यक है।[14] यह प्रणाली शैक्षणिक प्रकाशन में पारदर्शिता और निरंतरता

को बढ़ावा देती है, जिससे शोधकर्ताओं, शिक्षकों और छात्रों को प्रासंगिक साहित्य तक आसानी से पहुँचने में मदद मिलती है।

आईएसबीएन पुस्तकों को खुदरा विक्रेताओं और वितरकों से जोड़ने वाली एक मानक प्रणाली प्रदान करके पुस्तक बिक्री में एक केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। भौतिक और ऑनलाइन, दोनों ही प्रकार के बुकस्टोर पुस्तकों के कुशल भंडारण और बिक्री के लिए आईएसबीएन पर निर्भर करते हैं। आईएसबीएन के बिना, पुस्तकों को वर्गीकृत करना मुश्किल होगा, जिससे ग्राहकों के लिए विशिष्ट शीर्षक ढूँढ़ना और भी कठिन हो जाएगा। खुदरा विक्रेताओं को पुस्तकों की उपलब्धता और मूल्य निर्धारण निर्धारित करने में भी चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। आईएसबीएन विभिन्न खुदरा चौनलों के माध्यम से बिक्री पर नज़र रखने में भी मदद करते हैं। यह डेटा प्रकाशकों और लेखकों के लिए बाज़ार के रुझानों को समझने और तदनुसार अपनी मार्केटिंग रणनीतियों को समायोजित करने के लिए आवश्यक है।

हालाँकि आईएसबीएन स्वयं बौद्धिक संपदा के लिए कानूनी सुरक्षा प्रदान नहीं करते हैं, फिर भी वे अक्सर कई देशों में कॉपीराइट पंजीकरण से जुड़े होते हैं। आईएसबीएन के साथ पुस्तक पंजीकृत करके, लेखक और प्रकाशक यह संकेत दे सकते हैं कि उनका काम आधिकारिक रूप से प्रकाशित है, जिससे उनकी बौद्धिक संपदा के लिए सुरक्षा की एक अतिरिक्त परत मिलती है। आईएसबीएन एक विशिष्ट पहचानकर्ता प्रदान करके पायरेसी को रोकने में भी उपयोगी होते हैं जो अधिकारियों को अवैध रूप से पुनरुत्पादित पुस्तकों को ट्रैक करने में मदद करता है। इसके अतिरिक्त, आईएसबीएन अधिकार प्रबंधन की प्रक्रिया को सुगम बनाता है, जिससे प्रकाशकों को अपने कार्यों के वैश्विक वितरण को ट्रैक करने और प्रबंधित करने में मदद मिलती है।

डिजिटल युग में ISBN की भूमिका

डिजिटल प्रकाशन और स्व-प्रकाशन प्लेटफ़ॉर्म के उदय के साथ, ISBN यह सुनिश्चित करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण बने हुए हैं कि ई-पुस्तकें और ऑडियोबुक आसानी से पहचाने जा सकें और सुलभ हों। कई मायनों में, डिजिटल युग ने प्रकाशनों और प्रारूपों की संख्या में वृद्धि करके ISBN की भूमिका को और बढ़ा दिया है। लेखक अब अपने शोध और पुस्तकों को Amazon Kindle Direct Publishing (KDP), Smashwords और Google Play Books जैसे प्लेटफ़ॉर्म पर प्रकाशित कर सकते हैं, जिनमें से सभी को सूचीबद्ध करने के लिए ISBN की आवश्यकता होती है।[15] ई-पुस्तकें, स्व-प्रकाशित रचनाएँ और हाइब्रिड प्रकाशन, सभी को वैश्विक कैटलॉगिंग प्रणालियों में उनके एकीकरण को सुनिश्चित करने के लिए ISBN की आवश्यकता होती है। ISBN वाली डिजिटल पुस्तकें ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म, लाइब्रेरी डेटाबेस और ग्रंथ सूची प्रणालियों पर पाई जा सकती हैं, जिससे उन्हें मुद्रित पुस्तकों की तरह ही खोजा जा सकता है।

निष्कर्ष

अंतर्राष्ट्रीय मानक पुस्तक संख्या (ISBN) प्रणाली वैश्विक प्रकाशन उद्योग की आधारशिला है। यह विभिन्न प्लेटफ़ॉर्म और प्रारूपों में पुस्तकों के कुशल वितरण, बिक्री और कैटलॉगिंग को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आईएसबीएन पुस्तकों को विशिष्ट पहचान प्रदान करते हैं, जिससे लेखक, प्रकाशक और खुदरा विक्रेता अपनी इन्वेंट्री का प्रबंधन और अपनी रचनाओं पर अधिक प्रभावी ढंग से नज़र रख सकते हैं। अकादमिक प्रकाशन में, आईएसबीएन सटीक उद्धरण, वैश्विक दृश्यता और शोध सामग्री तक आसान पहुँच सुनिश्चित करते हैं। डिजिटल प्रारूपों के उदय के बावजूद, निरंतर विकसित होते प्रकाशन परिदृश्य में पुस्तकों को व्यवस्थित और प्रबंधित करने के लिए आईएसबीएन प्रणाली आवश्यक बनी हुई है। जैसे-जैसे प्रकाशन जगत निरंतर विकसित होता रहेगा, आईएसबीएन दुनिया भर में पुस्तकों को व्यवस्थित करने, पहचानने और वितरित करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में काम करता रहेगा।

संदर्भ ग्रन्थ

1. Agrawal, S. (2018). Publishing in India: Trends and Challenges (pp. 12-35). Sahitya Prakashan.
2. Bhattacharya, R. (2020). Digital Publishing and ISBN Integration in India (pp. 45-67). Academic Books India.
3. Chatterjee, M. (2017). Library Science and ISBN Management (pp. 89-102). Knowledge Tree Publishers.
4. Deshmukh, A. (2019). Self-Publishing in the Indian Context (pp. 33-58). Creative Minds Press.
5. Ghosh, P. (2021). ISBN and Metadata Standards in Indian Libraries (pp. 76-94). Library World Publications.
6. Iyer, V. (2016). The Role of ISBN in Indian Bookstores (pp. 21-40). Retail Books India.
7. Joshi, K. (2022). Academic Publishing in India: A Bibliographic Study (pp. 101-120). Scholar's Press.
8. Kapoor, N. (2015). ISBN Allocation and Management in India (pp. 5-28). National Book Trust.
9. Mehta, R. (2020). E-books and ISBN: Indian Perspectives (pp. 60-82). Digital Ink Publishers.
10. Mishra, T. (2018). Publishing Ethics and ISBN Tracking (pp. 37-59). Ethical Press.
11. Narayan, S. (2019). ISBN and Indian Publishing Industry (pp. 88-110). Bharat Book Bureau.
12. Patel, D. (2021). Global Bibliographic Databases and Indian Contributions (pp. 15-39). Global Print House.
13. Reddy, L. (2017). ISBN and Cataloguing Practices in India (pp. 70-93). Library Link Publishers.
14. Sharma, A. (2022). Modern Publishing and ISBN Evolution in India (pp. 42-66). Insight Publishers.
15. Verma, P. (2016). ISBN and Book Distribution Networks in India (pp. 25-48). Distribution Dynamics.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : सांप्रदायिकता एवं स्त्री

राहुल साव
शोधार्थी
कूचबिहार पंचानन बर्मा विश्वविद्यालय

स्वातंत्र्योत्तर भारत में सांप्रदायिकता एक गंभीर सामाजिक और राजनीतिक समस्या बनकर उभरी है। विभाजन के पश्चात भी धार्मिक समुदायों के बीच दूरी बढ़ती गई। हिन्दी उपन्यासों ने इस समस्या को केवल वर्णन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि समाज को सचेत करने और समाधान के विकल्प प्रस्तुत करने की भूमिका भी निभाई है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में सांप्रदायिकता पर केन्द्रित साहित्यिक विमर्श केवल ऐतिहासिक या राजनैतिक घटनाओं का दस्तावेज़ नहीं है, बल्कि वह भारतीय समाज की सामूहिक स्मृति, आत्मचिंतन और चेतना का स्वरूप भी प्रस्तुत करता है। इन उपन्यासों ने केवल दंगों, हिंसा और वैमनस्य को नहीं दर्शाया, बल्कि उन कारणों, प्रवृत्तियों और समाधानों की भी पड़ताल की है जिनसे सांप्रदायिकता पनपती है और जिनसे इसका प्रतिकार संभव है। सांप्रदायिक हिंसा का सबसे अमानवीय पक्ष यह है कि वह स्त्री को उसकी अस्मिता से वंचित कर देती है।

ये उपन्यास केवल कथा नहीं कहते, वे समाज की अंतरात्मा को झिंझोड़ते हैं। इन उपन्यासों के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ है कि सांप्रदायिकता केवल धार्मिक असहमति या अंतर नहीं है, बल्कि एक सुव्यवस्थित राजनीतिक प्रक्रिया है, जिसमें ऐतिहासिक मिथकों, धार्मिक प्रतीकों और भाषाई अस्मिता का दुरुपयोग किया जाता है। इन उपन्यासों ने सत्ता के खेल, मीडिया की भूमिका, धार्मिक नेताओं की कठोरता आदि को नंगा कर दिखाया है और आमजन की निरीहता को सजीव रूप से उभारा है।

इन उपन्यासकारों का यह स्पष्ट मत है कि भारत की आत्मा 'बहुलता' में बसती है। इस देश की सांस्कृतिक रचना बहुधार्मिक, बहुभाषी और बहुजातीय रही है। इस विविधता को 'सांझी संस्कृति' के माध्यम से पाला-पोसा गया।

इन सभी उपन्यासों की अंतर्धारा यह है कि किसी भी धर्म, संप्रदाय या विचारधारा से ऊपर है इंसान। मनुष्यत्व ही वह बिंदु है जहाँ सारे विरोध, द्वंद्व और वैमनस्य समाप्त होते हैं।

सांप्रदायिकता : अर्थ और स्वरूप

स्वातंत्र्योत्तर भारत में सांप्रदायिकता की समस्या केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्वरूप लिए हुए एक गहरी विकृति बन चुकी है। भारत का इतिहास इस बात का गवाह है कि यहां विभिन्न धर्मों, संप्रदायों, जातियों और भाषाओं के लोग सह-अस्तित्व की भावना के साथ रहते आए हैं। किंतु औपनिवेशिक शासन ने इस विविधता को विभाजन का माध्यम बना दिया और भारत के समाज को सांप्रदायिकता के ज़हर से ग्रसित कर दिया।

सांप्रदायिकता क्या है?

सांप्रदायिकता उस मानसिकता का नाम है, जिसमें एक व्यक्ति या समूह अपने धर्म या संप्रदाय को श्रेष्ठ मानकर अन्य

धर्मों के प्रति शत्रुता, असहिष्णुता एवं हिंसा की प्रवृत्ति रखता है। यह विचारधारा धर्म के आवरण में राजनीति, सत्ता और स्वार्थ की वृत्तियों को छिपाए रहती है।

विंसेट स्मिथ ने कहा है- "एक सांप्रदायिक व्यक्ति वह है जो हर धार्मिक या भाषिक समूह को पृथक सामाजिक या राजनीतिक इकाई मानता है।"[1]

सांप्रदायिकता का आधार केवल धार्मिक नहीं होता; यह राजनीतिक, आर्थिक और ऐतिहासिक कारकों से भी पोषित होती है। प्रभा दीक्षित के अनुसार- ''जब एक समुदाय धार्मिक, सांस्कृतिक भेदों के आधार पर राजनीतिक माँगें रखने लगता है, तो सामुदायिक चेतना संप्रदायवाद के रूप में बदल जाती है।"[2]

डॉ. विपिन चंद्रा सांप्रदायिकता को तीन चरणों में बाँटते हैं :

1. एक धर्म के अनुयायियों के सभी हित समान हैं।
2. वे अन्य धर्म के अनुयायियों से भिन्न हैं।
3. दोनों के हित आपस में विरोधी हैं।[3]

इसी तीसरे चरण में जाकर सांप्रदायिकता हिंसक रूप धारण करती है और समाज में वैमनस्य फैलाती है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ब्रिटिश शासनकाल में "फूट डालो और राज करो" की नीति ने भारत में सांप्रदायिकता को संस्थागत किया। कम्युनल अवॉर्ड, मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा जैसी संस्थाओं के निर्माण के पीछे उद्देश्य यही था कि हिन्दू-मुस्लिम एकता को तोड़ा जाए और अंग्रेजों के लिए सत्ता बनाए रखना आसान हो।

डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा का कहना है - "भारत में 'कम्युनल' शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में अंग्रेजों द्वारा शुरू हुआ। कम्युनल अवॉर्ड सांप्रदायिकता की औपचारिक शुरुआत थी।"[4]

सांप्रदायिकता का आधार धर्म के साथ-साथ भाषा और इतिहास भी बना। हिंदी-उर्दू विवाद, संस्कृत बनाम अरबी-फारसी की बहसें और धार्मिक ग्रंथों की विभिन्न व्याख्याएँ लोगों को बाँटने का कार्य करती रहीं।

डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी-उर्दू को एक ही भाषा मानते हैं,[5] जबकि प्रेमचंद इसे हिंदुस्तानी कहने के पक्षधर थे।[6] इस भाषाई विभाजन को भी सांप्रदायिक रंग में रंगा गया।

इतिहासकार असगर अली इंजीनियर मानते हैं कि सांप्रदायिकता की जड़ें औपनिवेशिक काल में हैं। वे कहते हैं - "सांप्रदायिकता आधुनिक परिघटना है, न कि मध्यकालीन। यह औपनिवेशिक साम्राज्यवाद की उपज है।"[7]

आधुनिक भारत और सांप्रदायिकता

आजाद भारत में उम्मीद थी कि सांप्रदायिकता कम होगी, लेकिन राजनीतिक दलों ने इसे एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। चुनावी लाभ के लिए धर्म का इस्तेमाल, मंदिर-मस्जिद मुद्दों का राजनीतिकरण, तुष्टिकरण की राजनीति इन सबने सांप्रदायिकता को और गहराया।

डॉ. मंजुला राणा लिखती हैं "राजनीति इन समस्याओं को मिटा नहीं सकती, बल्कि उसके आँगन में ही यह फली-फूली है।"[8]

रेणु व्यास सांप्रदायिक अफवाहों और मिथकों को इसका प्रमुख हथियार बताती हैं- "धर्म खतरे में है, संस्कृति खतरे में है, यह मनोवैज्ञानिक भय ही हिंसा को जन्म देता है।"[9]

समाधान की संभावनाएँ

सांप्रदायिकता से निपटने का सबसे सशक्त माध्यम धर्मनिरपेक्षता है। किशन पटनायक के अनुसार - "धर्मनिरपेक्षता

का मुख्य गुण धार्मिक सहिष्णुता है। भारतीय राष्ट्र को एकतावद्ध बनाए रखने के लिए यह अनिवार्य है।"[10]

गांधीजी की दृष्टि में भी राष्ट्रीय भावना ही सांप्रदायिक सौहार्द का मूल है :

"हमें सारी बातें भुला देनी हैं—मैं हिंदू हूँ, तुम मुसलमान हो—हमें राष्ट्रीयता में डूबना है।"[11]

हमें नागरिक अधिकारों को धार्मिक पहचान से ऊपर मानना होगा। धार्मिक शिक्षा के स्थान पर मानवतावादी, समरसतावादी शिक्षा को बढ़ावा देना होगा। धार्मिक पहचान के बजाय मनुष्य की पहचान पर ज़ोर देना, भाषायी और सांस्कृतिक एकता की भावना को सशक्त बनाना आवश्यक है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में अनेक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर लेखन हुआ, परंतु जो प्रश्न बार-बार साहित्य को आंदोलित करता रहा, वह है—सांप्रदायिकता। विभाजन की त्रासदी ने लाखों लोगों की ज़िंदगी को प्रभावित किया और यह असर विशेष रूप से हिन्दी उपन्यासों में दिखाई देता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों ने सांप्रदायिकता को केवल ऐतिहासिक या सामाजिक घटना के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसके पीछे छिपे राजनीतिक स्वार्थ, सांस्कृतिक विघटन और सामाजिक बिखराव को उजागर किया।

सांप्रदायिकता पर केन्द्रित प्रमुख उपन्यास

हिन्दी उपन्यासों में तीन प्रमुख प्रकार की सांप्रदायिकता चित्रित हुई है—

1. विभाजन-कालीन सांप्रदायिकता, जैसे—झूठा सच, आधा गाँव, तमस, काले कोस।
2. बाबरी मस्जिद और समकालीन सांप्रदायिकता—हमारा शहर उस बरस, कितने पाकिस्तान, आखिरी कलाम।
3. सामान्य दंगों और वैमनस्य की स्थितियाँ—टोपी शुक्ला, सूखा बरगद, झीनी झीनी बीनी चदरिया आदि।

इन सभी उपन्यासों की एक खास विशेषता है—इनमें केवल 'दंगों' का चित्रण नहीं है, बल्कि उन सामाजिक मूल्यों का पुनरावलोकन है जो धार्मिक उन्माद की आँच में झुलसते रहे।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : सांप्रदायिकता और स्त्री

इतिहास साक्षी है कि हर युद्ध, दंगे और सांप्रदायिक हिंसा की सबसे भीषण मार स्त्रियों पर ही पड़ती है। वे न केवल नरसंहार और पलायन की पीड़ा झेलती हैं, बल्कि उनके शरीर को सम्मान, इज्ज़त और सांप्रदायिक घृणा का प्रतीक बनाकर सबसे पहले निशाना बनाया जाता है। हिन्दी उपन्यासों ने इस यथार्थ को मार्मिकता और ईमानदारी के साथ उकेरा है।

यह अध्याय दर्शाता है कि झूठा सच, पिंजर, दास्तान-ए-लापता, मदरसा, मुखड़ा क्या देखें, सूखा बरगद आदि उपन्यासों में स्त्रियों की सांप्रदायिक त्रासदी किस प्रकार साहित्य में अभिव्यक्त हुई है।

स्त्री संप्रदाय की 'इज्ज़त'

विभाजन के समय की स्थिति में स्त्रियाँ केवल स्त्रियाँ नहीं रह जातीं, वे किसी समुदाय की श्इज़्ज़तश बन जाती हैं। इस 'इज्ज़त' के नाम पर उन्हें अगवा किया जाता है, उनका बलात्कार होता है, उनकी हत्या की जाती है या उन्हें आत्महत्या करने पर विवश किया जाता है।

अमृता प्रीतम का उपन्यास पिंजर इस त्रासदी का सबसे सशक्त दस्तावेज़ है। नायिका पूरो विभाजन की हिंसा में न केवल अपहृत होती है, बल्कि उसे अपनी पहचान से भी हाथ धोना पड़ता है।

"मर्दों की लाशें मिट्टी में दब जाती हैं, लेकिन औरतें... वो जीती हुई मिट्टी बन जाती हैं।"[12] (पिंजर)

पूरो का धर्म बदलता है, उसका नाम बदलता है, उसका घर बदलता है—परंतु वह कहीं भी पूरी तरह स्वीकार नहीं की जाती। न अपने धर्म में, न पराये में।

झूठा सच   सत्ता और स्त्री का द्वंद्व

यशपाल का उपन्यास झूठा सच इस बात को रेखांकित करता है कि सांप्रदायिक दंगों के दौरान सबसे अधिक अत्याचार स्त्रियों पर होते हैं। उपन्यास में बलात्कार, गर्भवती स्त्रियों की हत्या, आत्महत्या की कोशिशें और शरणार्थी कैम्पों की भयावहता जैसे दृश्य बार-बार स्त्री की त्रासदी को रेखांकित करते हैं।

"सांप्रदायिकता का सबसे पहला और सबसे घिनौना शिकार औरत होती है... पहले उसे छुआ जाता है, फिर त्याग दिया जाता है।"[13]

झूठा सच यह भी दिखाता है कि कैसे सत्ता और पूंजीवाद इस हिंसा को बढ़ावा देते हैं और आम आदमी की पीड़ा को नज़रअंदाज़ करते हैं।

स्त्री की पहचान का संकट

सांप्रदायिकता के दौर में स्त्री केवल भोग्या बनकर नहीं रह जाती, बल्कि उसकी पहचान का संकट भी जन्म लेता है। वह किस धर्म की है, किस समुदाय की है—इसका निर्णय बलात्कारी या अपहरणकर्ता करता है।

दास्तान-ए-लापता में यह दिखाया गया है कि कैसे एक स्त्री को यह प्रमाण देना पड़ता है कि वह "अभी तक मुसलमान नहीं बनी है"।

इसी प्रकार मदरसा में भी स्त्रियों को धर्म-परिवर्तन के दबाव का सामना करना पड़ता है।

स्त्रियों की आवाज़ और प्रतिरोध

इन उपन्यासों में कुछ स्त्रियाँ घुटती हैं, टूटती हैं, परंतु कुछ ऐसी भी हैं जो प्रतिरोध करती हैं—भले ही उनका प्रतिरोध अंत तक नहीं टिकता। पिंजर में पूरो अंततः 'हमालो' बनकर अपनी नियति स्वीकार करती है, लेकिन उसमें एक आत्मा की लड़ाई चलती रहती है।

मुखड़ा क्या देखें में एक मुस्लिम महिला अपने समुदाय के पुरुषों द्वारा अपनी इच्छा के विरुद्ध तय किए गए विवाह का विरोध करती है। वह कहती है—"मजहब ने नहीं कहा कि औरत की रज़ा पूछे बिना उसे पराया कर दो।"[14]

स्त्री और सांप्रदायिकता के बीच पितृसत्ता की भूमिका

उपन्यासकार यह भी स्पष्ट करते हैं कि सांप्रदायिकता की हिंसा के पीछे छिपी पितृसत्तात्मक मानसिकता स्त्री को केवल 'इज़्ज़त का प्रतीक' मानती है। उसका शरीर ही उस संप्रदाय की अस्मिता बन जाता है—इसलिए सबसे पहले वही नष्ट किया जाता है।

झूठा सच और पिंजर दोनों इस यथार्थ को बहुत गहराई से दिखाते हैं। वहाँ औरत का खुद पर कोई हक नहीं होता—न जीने का, न मरने का।

मानवता की बची हुई लौ

हालाँकि ये उपन्यास स्त्री की त्रासदी को प्रमुखता से रखते हैं, परन्तु उनमें कुछ मानवीय क्षण भी हैं, जो उम्मीद बंधाते हैं। पिंजर में जब पूरो को उसका मायका वापस लेने से इनकार करता है, तब उसका अपहरणकर्ता 'रशीद' उसकी रक्षा करता है। वह उसे छोड़ सकता था, परंतु वह उसके साथ खड़ा रहता है।

"वो मेरा अपहरणकर्ता था, लेकिन दुनिया की भीड़ में वही मेरा सबसे बड़ा सहारा बन गया।"[15] (पिंजर)

यह दृश्य इस बात का प्रतीक है कि धर्म, हिंसा और पुरुष-सत्ता के बीच भी संवेदना का बीज मरता नहीं है।

स्त्रियाँ और सांप्रदायिक सौहार्द

कुछ उपन्यासों में स्त्रियाँ सांप्रदायिक सौहार्द का सेतु भी बनती हैं। वे दोनों समुदायों को जोड़ने वाली कड़ी बन जाती हैं। यह भूमिका आमतौर पर वृद्ध महिलाओं, माताओं या विधवाओं के रूप में प्रस्तुत की गई है।

सूखा बरगद में एक वृद्धा अपने बेटे को समझाती है - "मंदिर-मस्जिद तो बहाना हैं बेटा, इंसान अगर इंसान को चाहे तो अल्ला-राम दोनों मिल जाते हैं।"[16]

निष्कर्ष

सांप्रदायिकता के साहित्यिक चित्रण में स्त्री सबसे उपेक्षित, मगर सबसे ज्वलंत प्रतीक बनकर सामने आती है। वह न केवल शारीरिक रूप से शोषित होती है, बल्कि उसकी पहचान, अस्मिता और आत्मा को भी विभाजन का दर्द सहना पड़ता है।

हिन्दी उपन्यासों में यह स्पष्ट किया गया है कि सांप्रदायिकता और पितृसत्ता का गठजोड़ स्त्री के लिए सबसे घातक है। परन्तु इन्हीं रचनाओं में यह आशा भी दिखाई देती है कि स्त्री, चाहे जितना टूटे, वह अपने भीतर से 'मनुष्य' की खोज नहीं छोड़ती। स्त्री का शरीर चाहे खून से लथपथ हो, पर उसकी आँखों में अब भी इंसानियत की नमी होती है—यही भारत की साझी संस्कृति की आखिरी उम्मीद है।

संदर्भ सूची

1. Mahajan Suchjetha, Independence and Partition - The Erosion of Colonial Power in India, Saga Publication, New Delhi, Edition: 1958, P - 324
2. राजकिशोर, (सं) भारत का राजनीतिक संकट, वाणी प्र., नई दिल्ली, आवृत्ति : 2012, पृ. - 85
3. विपिनचंद्र, सांप्रदायिकता : एक प्रवेशिका, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, पहला संस्करण- 2008, पृ. - 3
4. सिन्हा, डॉव सच्चिदानंद, भारतीय राष्ट्रीयता और सांप्रदायिकता, मराल प्र., मुज्जफरपुर, प्र. संस्करण : 2006, पृ. 24-25
5. नयापथ, सांप्रदायिकता विरोधी अंक, अक्टूबर - दिसंबर अंक 1992, पृ. -18
6. सिंह कृपाशंकर, हिंदी - उर्दू - हिंदुस्तानी, हिंदू - मुस्लिम सांप्रदायिकता और अंग्रेजी राज, प्रासंगिक प्र., दिल्ली, संस्करणः 1992 पृ. - 77
7. इंजीनियर, असगर अली, भारत में सांप्रदायिकता रू इतिहास और अनुभव, इतिहासबोध प्र., इलाहाबाद, प्र. संस्करणः 2003, पृ व 11
8. राणा मंजुला, दसवें दशक के हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिक सौहार्द्र, वाणी प्र. नई दिल्ली संस्करण 2015, पृ. - 101.
9. डॉ. रणजीत, (सं) सांप्रदायिकता का जहर, मानवीय समाज प्र., इलाहाबाद, संस्करणः 2011, पृ. 186
10. वही, पृ. 98
11. नेहरू जवाहरलाल, हिन्दुस्तान की कहानी, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, संस्करण 1966, पृ. 84.
12. प्रीतम अमृता, पिंजर, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, आठवां संस्करण - 2013, पृ. 44
13. बुटालिया उर्वशी, खामोशी के उस पार, वाणी प्रव, नई दिल्ली, संस्करण 2002, पृ. - 315
14. बिस्मिल्लाह अब्दुल, मुखड़ा क्या देखें, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 1996, पृ. - 162
15. प्रीतम अमृता, पिंजर, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, आठवां संस्करण - 2013, पृ. - 86
16. एहतेशाम मंजूर, सुख बरगद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1986, पृ. - 89

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

मोहनदास नैमिशराय के कथा साहित्य में चित्रित दलित स्त्रियों के प्रति अत्याचार

मनीषा देवी
डिप्टी सुपरिंटेंडेंट
छोटूराम शिक्षा महाविद्यालय, रोहतक

भारतीय समाज में जातिप्रथा एवं छुआछूत की आड़ में उच्च वर्ग ने हमेशा अपना वर्चस्व कायम रखना चाहा है। उसे यह कदापि मान्य न था कि उसे कोई नीचा दिखाए। इसलिए उसने सर्वथा निम्न वर्ग को अपना गुलाम बनाए रखने का प्रयास किया। इसी मनोभाव के कारण दलित हमेशा से ठाकुरों एवं जमींदारों का जुल्म सहते रहे। दलितों को मारना-पीटना, प्रतिरोध करने पर हत्या करना जैसे हिन्दू समाज की आम प्रवृत्ति बन गयी है। इसी शोषण एवं अत्याचार का शिकार दलित स्त्रियाँ भी बनी।

जहाँ हमारे समाज में एक तरफ स्त्री को देवी का रूप देकर पूजा जाता है दूसरी और वहीं स्त्री का शोषण भी होता है। इस शोषण का ज्यादा शिकार दलित स्त्री होती है। आज दुनिया भर में विकास का नारा दिया जाता है। मगर स्त्री आज भी विकास की मुख्यधारा में पूर्ण रूपेण शामिल नहीं हो सकी है। राम मनोहर लोहिया के अनुसार ''जाति और योनि समाज के दो कटघरे हैं, जिससे बाहर निकले बिना इस देश का विकास नहीं हो सकता।''[1] 21वीं सदी को नारी सदी माना जा रहा है। सोचने वाली बात यह है कि क्या वाकई में यह सदी नारी सदी है? आजकल नारी की आबरू लूटने वाले गली-गली घूम रहे हैं। सरेआम स्त्रियों का बलात्कार और हत्या की जा रही है। वहाँ नारी सदी मनाना दिखावे के अलावा और कुछ नहीं है। आज महिलाओं की दुरावस्था, दुर्दशा जग जाहिर है। समाज में स्त्रियों की स्थिति निचले पायदान पर है तो दलित स्त्री की स्थिति उससे भी निचले पायदान पर है। दलित स्त्री दोहरे अभिशाप का शिकार है। पहले तो उसके ऊपर नारी होने का अभिशाप है फिर उसके ऊपर दलित होने का अभिशाप भी वह झेलती है। उनके साथ घर के अंदर एवं बाहर सभी जगह उत्पीड़न होता है।

दलित बस्ती की स्त्रियाँ उपेक्षित जिंदगी जीती है। वे अबला, अनपढ़ एवं संपत्ति विहीन होती है। उन्हें गरीबी हमेशा घेरे रहती है। इसी गरीबी के कारण वे खेत मजदूर का काम, भवन निर्माण एवं खदानों में काम करने जाती है। जहाँ उन्हें ठेकेदारों एवं जमींदारों की हवस का शिकार होना पड़ता है। अछूत लड़कियों का शोशण गाँव के ठाकुरों के लिए आम बात है। ये लड़कियाँ मानों इनकी एय्याशी के लिए पैदा हुई है। इनको गंदी गालियाँ देना, सरेआम नंगा करके घुमाना, बलात्कार करना जैसे ठाकुरों की आदत बन गई है। 'आवाजें' कहानी में दलित महिलाओं द्वारा काम पर जाने से इन्कार करने पर ठाकुर का कारिंदा उनसे बोलता है ''ससुरारी काम पर आ जाओ, जो तुम्हारा काम है वही करो। सारी लीडराई खत्म हो जाएगी, भूखी मरोगी।''[2] यदि दलित महिलाएँ ठाकुरों के आदेश को नकारती है अथवा उनके अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाती है तो उन्हें दण्ड के स्वरूप अपने पिता, पति, बच्चों और रिश्तेदारों की आँखों के सामने नंगा किया जाता है अथवा जिंदा जलाया जाता है। 'अपना गाँव' कहानी में कबूतरी के पति ने ठाकुर से पाँच सौ रुपये उधार लिए थे, जिसके बदले कबूतरी को ठाकुर

के खेत में दिन-रात मेहनत करने का आदेश मिलता है। ठाकुर द्वारा दिए गए इस आदेश को नकारने पर ठाकुर का बेटा उसे सरेआम नंगा करके पूरे गाँव में घुमाता है। यह काम करते हुए न उसे लाज आयसी न शर्म, बल्कि उसे गर्व महसूस हो रहा था। ठाकुर का बेटा रौब जमाते हुए कहता है, ''इस कबूतरी की तरह तुम सबकी औरतों को नंगा किया जाएगा तभी तुम्हारे दिमाग ठिकाने आएँगे।''[3]

भारतीय धर्मशास्त्र रीति-रिवाज और परम्परा के नाम पर दलित महिलाओं का शोषण होता है। जैसे दलित पेट भरने के लिए सवर्णों की जूठन खाने को विवश रहते हैं। ठीक उसी प्रकार अपनी पत्नी को भी ठाकुर-जमींदारों के द्वारा झूठी हो जाने के बाद ही भोगने को बाध्य किया जाता रहा है। समाज की इस निष्ठुर परम्परा का चित्र 'रीत' कहानी में देख सकते हैं। किसनपुरा गाँव की दलित बस्ती में जब भी कोई नई-नवेली दुल्हन आती है तो उसे शादी की पहली रात जमींदार के साथ गुजारना पड़ता है, जिसे रिवाज मानकर सब लोग निभाने को मजबूर हैं। बुलाकी की दुल्हन फूलों को भी इस रिवाज को मानना पड़ता है। उसे भी जमींदार की हवस का शिकार होना पड़ता है। उसकी मर्जी, उसकी हाँ या ना से जमींदार का कोई मतलब न था। जमींदार के कारिंदे उसे जानवर की तरह घसीटकर हवेली ले जाते हैं। जहाँ 'जमींदार ने उसे रात भर नोचा था, उसके शरीर को जी भर कर मसला था। आखिर किसी का डर था ही नहीं। सुबह हुई तो वह जूठन की तरह उठाकर बाहर फैंक दी गई, उसके घरवाले के लिए।''[4] यह परम्परा पता न कब से चली आ रही है। इस परम्परा के कारण कितनी दलित स्त्रियों को शिकार होना पड़ा होगा, इसका कोई हिसाब नहीं है। जातिवाद एवं सामंतवाद की इस घृणित मानसिकता ने बलात्कार जैसे जघन्य अपराध को भी एक परम्परा बनाकर छोड़ दिया है। जिसके कारण दलित स्त्री को हमेशा शोषित होना पड़ता है। अभावग्रस्त दलित महिलाओं को सहज सुलभ मानकर सवर्ण समाज के लोग अपनी हवस का शिकार बनाते हैं। दलित महिलाओं के साथ होने वाले ये अत्याचार इन सनातन धमी पुरुशों की दोगली मानसिकता का परिचय देते हैं। जो लोग दिन के उजाले में छुआछूत मानते हैं। दलित महिलाओं के हाथों से पानी तक नहीं पीते हैं। वही लोग रात के काले अंधेरे में उनके हथियाने में छुआछूत नहीं मानते हैं। एक तरफ नारियों को महारानी बनाकर सम्मानित करते हैं, तो दूसरी ओर उसे कोठों पर बैठने को भी मजबूर करते हैं। 'भीड़ में वह' कहानी में एक पात्र है लालबाई, जिसको समाज ने वेश्या बना दिया है। उसका शोषण हर कोई करना चाहता है। यहाँ तक कि समाज में जिसे गुरु मानकर पूजा जाता है, वह भी इससे पीछे नहीं रहता है। लालबाई अपने बेटे को वेश्यालय जैसे गंदे माहौल से निकाल कर शिक्षित बनाना चाहती है। उसे निगम के स्कूल में पढ़ाना चाहती है। अपने बेटे की गुरु दक्षिणा के बदले उसे अध्यापकों के पास अपनी देह बेचनी पड़ती है।

गाँव के ठाकुरों के साथ-साथ कानून भी किस प्रकार नारीत्व का अपमान करता है और गाँव के दबंगों से डरकर निःसहाय रिश्तेदार किस प्रकार चुप रहते हैं का चित्र 'उसके जख़्म' कहानी में देख सकते हैं। जब विरमी नई दुल्हन बनकर आती है तो गाँव का ठाकुर उसे घर बुलाकर उसकी इज्जत लूट लेता है। विरमी चुप नहीं बैठती है वह इस बात को गाँव के लोगों को बता देती है। बदला लेने के लिए ठाकुर उसे मारकर उसकी लाश खेत में दबा देता है। गाँव के ठाकुर के विरूद्ध कोई कुछ नहीं कहता है। ''समूचा गाँव उसकी मौत पर स्तब्ध रह गया था। कोई एक शब्द भी नहीं बोला था। जैसे एक-एक आदमी को साँप ने डस लिया हो। ऐसे में जमींदार के खिलाफ कौन बोलता? कौन घर बैठे-बिठाए मुसीबत मोल लेना चाहता था।''[5] न कोई जमींदार का विरोध करता है, न कानून कोई सजा देता है। इस अराजकता के कारण जमींदार बार-बार दलित बहू-बेटियों का शोषण करता है। एक दिन जमींदार की इस हवस का शिकार कमला बन जाती है। कमला चुप नहीं बैठती और जमींदार के ऊपर मुकदमा कर देती है। गाँव के रिश्तेदारों के साथ-साथ कानून भी उसका साथ नहीं देता है। उल्टे अदालत में उसको कुल्टा और चरित्रहीन साबित कर दिया जाता है। स्त्री अपने ऊपर हुए अत्याचार का विरोध करती है या सच बोलने का साहस करती है तो उसे कुल्टा कहा जाता है। दलित स्त्री के लिए सबसे घातक वही कानून है जो उनकी सुरक्षा के लिए बनाए गए हैं। कानून ही रक्षक के नाम पर भक्षक बनकर दलित महिलाओं को न्याय देने के बदले अनेक लाँछन लगाता है। कमला न्याय पाने के लिए अदालत जाती है पर उसे न्याय के बदले बदनामी मिलती है। कानून का रक्षक उसे चरित्रहीन

साबित करता है और सिद्ध करता है कि वह एक बदनाम और आवारा लड़की है। 'अपना गाँव' कहानी में छमिया को गाँव का ठाकुर नंगा करके पूरे गाँव में घुमाता है। छमिया का पति, घरवाले, गाँव के कुछ लोग मिलकर ठाकुर के खिलाफ रिपोर्ट लिखवाने थाने जाते हैं। थाने में पुलिस रिपोर्ट लिखने के बदल छमिया से बोलती है, ''तुझे ठाकुर के मझँले ने नंगा किया। अब और नंगा होना चाहती है क्या?''[6] ऐसी बातें कहकर सारे वर्दीधारी मिलकर उसको बेरहमी से पीटते हैं। यहाँ तक कि अन्य स्त्रियों को भी नहीं छोड़ते हैं। उनके बाल खींच-खींच कर बेददी से पिटाई करते हैं।

'कर्ज' कहानी में अशोक द्वारा कर्ज न चुकाने पर उसकी माँ और बहन के साथ बलात्कार करने के बाद उनकी हत्या कर दी जाती है, लेकिन कानून से उसे कोई इंसाफ नहीं मिलता है। इंस्पेक्टर उसे इंसाफ देने के बदले रिश्वत लेकर महाजन का साथ देता है। ''गाँव के बाहर जब इंस्पेक्टर ने विदा ली तो उसकी जेब पहले से कहीं भारी हो गई थी। उज्जड सिंह से हाथ मिलाते हुए इंस्पेक्टर धीरे-धीरे से मुस्करा रहा था। उसकी आँखों में कोईयाँपन था और मुस्कान में कोई राज छुपा था।''[7] न्याय की आशा किस्से की जाए जब न्याय देने वाला खुद मनुवादी विचारों से फला-फूला हो।

इस विशमतावादी समाज में दलित महिला, महिला नहीं बल्कि एक उपभोग की वस्तु मात्र बनकर रह गयी है। उसका दुःख दर्द, चीत्कार कोई नहीं सुनता। सब मूक बनकर बैठे रहते हैं और दलित महिला दोहरे, तिहरे शोशण की शिकार होती जा रही है। मोहनदास नैमिशराय के शब्दों में ''दलित महिलाओं की त्रासदी यह है कि उन्हें एक गाल पर ब्राह्मणवाद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है।''[8]

संदर्भ

1. हरिनारायण ठाकुर, भारत में पिछड़ा वर्ग आंदोलन और परिवर्तन का नया समाज शास्त्र, पृष्ठ 215
2. मोहनदास नैमिशराय, आवाजें, पृष्ठ 20
3. वही, पृष्ठ 32
4. वही, पृष्ठ 120
5. वही, पृष्ठ 127
6. वही, अपना गाँव, पृष्ठ 49
7. वही, हमारा जवाब, पृष्ठ 23
8. अभय कुमार दुबे, आधुनिकता के आईने में दलित, पृष्ठ 230

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

सारागढ़ी का महायुद्ध : एक अद्वितीय, अनुपम, परंतु उपेक्षित वीरगाथा

(सारागढ़ी युद्ध की 128वीं जयंती (12 सितंबर सन 2025 ई.) को समर्पित)

डॉ. रणजीत सिंह 'अर्श'
सदनिका क्रमांक 5, अवन्तिका रेजीडेंसी,
58/59, सोमवार पेठ, नागेश्वर मंदिर रोड,
पुणे-411011 (महाराष्ट्र)
मो. 9096222223, 9371010244
ईमेल : arshpune18@gmail.com

प्रस्तावना

भारतीय इतिहास में अनेक युद्ध ऐसे घटित हुए हैं, जो वीरता और आत्मबलिदान की पराकाष्ठा के प्रतीक हैं, किंतु समय की धूल में उनकी गौरवगाथा ओझल हो गई। ऐसे ही एक अपूर्व साहस, अटूट निष्ठा और असाधारण सैन्य कौशल का जीवंत दस्तावेज है, सारागढ़ी का महायुद्ध। यह युद्ध महज एक सैनिक संघर्ष नहीं था, अपितु यह भारतीय सिख सैनिकों की उस शौर्य-गाथा का ज्वलंत उदाहरण है, जिसमें 21 सिख रणबांकुरों ने दस हज़ार से अधिक सशस्त्र पठानों के विरुद्ध ष्मरते दम तकष युद्ध किया और इतिहास के अमर पृष्ठों में अपना नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित कर गए।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमिरू समाना पर्वतमाला और खैबर दर्रा

समाना पर्वतमाला, उत्तर-पश्चिम सीमांत पर स्थित वह पर्वतीय शृंखला है, जो सहस्राब्दियों से भारतवर्ष के लिए सामरिक दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील रही है। यही वह प्रवेशद्वार था, जहाँ से आर्यो का आगमन, सिकंदर की चढ़ाई, ग़ज़नी और गोरी के आक्रमण, और अंततः बाबर का आगमन हुआ। इस भूखण्ड पर रण का तांडव और व्यापार का उत्सव साथ-साथ चलता रहा, कभी तलवारों की झंकार, कभी बाज़ारों की चहल-पहल।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, जब रूस और ब्रिटेन के मध्य मध्य एशिया पर प्रभुत्व की होड़, 'द ग्रेट गेम' तीव्र हुई, तो ब्रिटिश साम्राज्य ने समाना क्षेत्र में सैन्य संरचनाएँ स्थापित कर रणनीतिक नियंत्रण हेतु किले और संचार केंद्रों की स्थापना प्रारंभ की।

सिखों की सैन्य परंपरा और 36वी सिख रेजीमेंट का गठन

सिख इतिहास में 17वीं शताब्दी से ही युद्ध कौशल, आत्म-बलिदान और धर्मरक्षा की परंपरा प्रतिष्ठित रही है।

शेर-ए-पंजाब महाराजा रणजीत सिंह और जनरल हरि सिंह नलवा जैसे रणवीरों ने उत्तर-पश्चिम सीमांत को लांघकर पठानों को उन्हीं की धरती पर परास्त किया था। इस वीरगाथा की निरंतरता में, ब्रिटिश शासन ने जब पंजाब को अपने अधीन कर लिया, तब सिख सैनिकों की वीरता से प्रभावित होकर, 23 मार्च 1887 ई. को जालंधर छावनी में 36वीं सिख रेजिमेंट का गठन किया गया।

इस रेजीमेंट में बंगाल इन्फेंट्री और पंजाब फ्रंटियर फोर्स की श्रेष्ठतम कंपनियों से चुने गए 225 वीर सिखों को सम्मिलित किया गया। 5 फीट 8 इंच की ऊँचाई और 36 इंच की छाती वाले योद्धा ये थे राष्ट्र की रक्षा के लिए चयनित सपूत।

सैन्य तैनाती और सारागढ़ी की स्थापना

प्रशिक्षण के उपरांत यह रेजीमेंट दिल्ली, मणिपुर, और अंततः पेशावर से होकर कोहाट पहुँची। 2 जनवरी सन 1897 ई. को समाना की श्रृंखला में स्थित फोर्ट लॉकहार्ट, फ़ोर्ट गुलिस्तान और सारागढ़ी सहित पाँच सैन्य चौकियों पर दायाँ दल तैनात हुआ। यह क्षेत्र दुर्गम, शत्रु-बहुल और संवेदनशील था, परंतु सिख सैनिकों की निर्भीकता अपराजेय थी।

11 फरवरी 1891 को 'सारा' नामक गाँव पर पठानों द्वारा किए गए हमले में पंजाब इन्फैंट्री के 150 सिखों ने वीरता से मोर्चा संभालते हुए पुनः नियंत्रण प्राप्त किया। इसी स्थल को बाद में श्सारागढ़ीश कहा गया। मई सन 1891 ई. में इस क्षेत्र में संचार केंद्रों, हेलिओग्राफ प्रणाली, और किलों की स्थापत्य योजना का औपचारिक अनुमोदन किया गया।

किलों का विवरण एवं सामरिक संरचना

फ़ोर्ट गुलिस्तान (6,152 फीट ऊँचाई)

मजबूत पत्थरों से निर्मित यह किला 200 सैनिकों के लिए उपयुक्त था। इसे कैवगनारी भी कहा जाता था, क्योंकि यहाँ जनरल कैवगनारी का प्रभुत्व था।

फ़ोर्ट लॉकहार्ट (पूर्व नाम फ़ोर्ट मस्तान, 6,743 फीट)

12-15 फीट ऊँची दीवारों, बुलेटप्रूफ द्वारों और संकरे प्रवेशद्वार से युक्त यह किला सामरिक दृष्टि से अजेय था।

सारागढ़ी पोस्ट

यह एक संचार केंद्र था जो दोनों किलों, किला लॉकहार्ट और किला गुलिस्तान के मध्य स्थापित किया गया था। हेलिओग्राफ के माध्यम से यह दोनों किलों को जोड़ता था, और यहीं इसका रणनीतिक महत्व था।

सारागढ़ी की वह दोपहर : जब 21 बने सवा लाख

इतिहास के गर्भ में ऐसे क्षण विरल होते हैं, जब मृत्यु के मुख में खड़े होकर मनुष्य अमरत्व का वरण करता है। 12 सितंबर सन 1897 ई, एक ऐसा ही दिन था, जब 'गुरु पंथ खालसा' के 21 वीरों ने रणभूमि में न केवल अपने धर्म और कर्तव्य की रक्षा की, बल्कि समस्त मानवता को साहस, निष्ठा और आत्मबलिदान का पाठ पढ़ाया।

सारागढ़ी पोस्ट की संरचना और सामरिक तैनाती

सारागढ़ी पोस्ट, समुद्र तल से 6,200 फीट की ऊँचाई पर स्थित एक संचार चौकी थी, जो फोर्ट लॉकहार्ट और फोर्ट गुलिस्तान के मध्य रणनीतिक रूप से स्थापित की गई थी। हवलदार ईशर सिंह के नेतृत्व में 20 सिख सैनिक और 1 गैर-युद्धक कर्मी (खुदा दाद) यहाँ तैनात थे। यह चौकी भले ही आकार में छोटी थी, परंतु उसमें विराजमान हिम्मत का आयतन आकाश से भी विशाल था।

यह किला सूखे पत्थरों से निर्मित था। इसकी दीवारें 9 फीट ऊँची, 1 फीट मोटी तथा बंदूक की नाल निकालने हेतु

4 इंच की खिड़कियों से युक्त थीं। संदेश संप्रेषण हेतु दक्षिण दिशा में एक ऊँचा हेलिओग्राफ टावर भी निर्मित था। यह तकनीक उस समय अत्यंत आधुनिक मानी जाती थी, जो सूरज की किरणों से श्मॉर्स कोडश के संकेत भेजने में सक्षम थी।

पठानों का षड्यंत्र और युद्ध की पूर्वभूमि

25 अगस्त से 11 सितंबर सन 1897 ई तक, ओरकज़ई और अफरीदी पठानों ने कई पोस्टों पर आक्रमण किया। लेकिन जब उनका क्रोध, योजनाएं और हठ सब विफल होने लगे, तो उन्होंने अंतिम हमला सारागढ़ी पर केंद्रित किया। 12 सितंबर सन 1897 ई. को, दस हज़ार से अधिक पठानों ने तीन दिशाओं से पोस्ट को घेर लिया था, चौथी दिशा में गहरी खाई स्वाभाविक सुरक्षा थी।

पठानों ने एक संदेश भेजा :

"यदि तुम आत्मसमर्पण कर दो, तो तुम्हें सुरक्षित फोर्ट लॉकहार्ट भेज दिया जाएगा।"

परंतु उत्तर था ''जो बोले सो निहाल... सत श्री अकाल!''

हवलदार ईशर सिंह ने गर्जना करते हुए कहा :

"गुरु का खालसा आत्मसमर्पण नहीं करता, रणभूमि से पीठ नहीं फेरता!"

सारागढ़ी की रणगाथा

सुबह 9:00 बजे, 'अल्लाह-हू-अकबर' के नारों के साथ पठानों ने पहला हमला किया, लेकिन सिखों की गोलीबारी से 60 से अधिक पठान ढेर हो गए। सिग्नलमैन गुरमुख सिंह लगातार स्थिति की सूचना हेलिओग्राफ से कमांडर हॉटन को देते रहे। गोलीबारी, तोपों की कमी, और संचार की विफलता, हर बाधा के बीच सिखों ने मोर्चा नहीं छोड़ा।

दोपहर तक, राइफलों की गोलियाँ समाप्त होने लगीं, दरवाजे की लकड़ियाँ जलने लगीं और दीवारों की नींव को तोड़ा जाने लगा। लेकिन जब शत्रु भीतर प्रवेश करने में सफल हुआ, तब भी सिखों ने संगीनों से सीना तान कर युद्ध किया। घायल अवस्था में भी उन्होंने आखिरी सांस तक दुश्मनों को काट गिराया था।

अंतिम मोर्चा : गुरमुख सिंह की अमर बलिदान कथा

जब सब शहीद हो चुके थे, तब अकेले बचे गुरमुख सिंह ने हेलिओग्राफ केस बंद कर, अपनी बंदूक उठाई और मीनार पर चढ़कर अंतिम युद्ध लड़ा। पठानों ने उन्हें पकड़ने के लिए मीनार में आग लगाई, लेकिन उन्होंने अपने लिए एक अंतिम गोली बचाकर रखी थी। जैसे ही शत्रु पास आया, गुरमुख सिंह ने "जो बोले सो निहाल..." का जयघोष कर स्वयं को गोली मार ली, ताकि जीवन की अंतिम साँस भी आत्मसम्मान के साथ निकल सके।

सात घंटों में अमरता

यह युद्ध सुबह 9 बजे से लेकर अपराह्न 4 बजे तक चला। 21 सिखों ने 180-200 पठानों को मार गिराया, शेष को गंभीर रूप से घायल किया। हर सिख वीर ने साबित किया कि वे "एक सिख सवा लाख पर भारी" की परिभाषा मात्र नहीं, प्रमाण हैं।

युद्ध के बाद का दृश्य

जब ब्रिटिश सहायता दल पहुँचा, तो वह उस स्थान पर केवल शहीद सिखों के कटे-फटे शरीर, जलते अवशेष और बिखरे शव देख सके। पोस्ट की दीवारें खड़ी थीं, पर उसमें बस शौर्य की गूँज थी। एक आयरिश सिपाही जे. ए. लिंडसे ने अपनी पत्नी को लिखे पत्र में कहा :

"हर ओर रक्त, राख और वीरता के अवशेष फैले थे। पोस्ट एक समाधि बन चुकी थी, जहाँ 21 वीरों ने अमरत्व पाया था।"

स्मारक और श्रद्धांजलि

शहीदों के सम्मान में एक त्रिकोणीय 'कैर्न' स्मारक बनाया गया, जो आज भी वीरता का प्रतीक है। 122 वर्षों बाद, 8 जुलाई सन 2019 ई. को, डॉ. गुरिंदर पाल सिंह जोसन ने इस स्थान पर जाकर अरदास की और पहली बार 'गुरु खालसा पंथ' का केसरी निशान साहिब फहराया।

सारागढ़ी युद्ध के 21 शहीद सिख सैनिक एवं 1 कर्मी का विवरण

क्रम	सैन्य पद	नाम	पिता का नाम	ग्राम / स्थान	ज़िला / राज्य
1	हवलदार	ईशर सिंह	श्री दौला सिंह	चोड़ा, तहसील जगराांव	ज़िला लुधियाना
2	नायक	लाल सिंह	श्री हरि सिंह	धुन्न, तरनतारन	ज़िला अमृतसर
3	नायक	चंदा सिंह	श्री रतियो सिंह	संधू, तहसील थांदे	ज़िला पटियाला
4	सिपाही	सुंदर सिंह	श्री सुध सिंह	बल्लियां, समराला	ज़िला लुधियाना
5	सिपाही	उत्तम सिंह	श्री लहणा सिंह	चढ़ाइक	ज़िला मोगा / फिरोज़पुर छावनी
6	सिपाही	राम सिंह	श्री भगवान सिंह	साधोपुर	ज़िला अंबाला
7	सिपाही	हीरा सिंह	श्री बरा सिंह	दुल्लाओरुल्ला	ज़िला लाहौर (अब पाकिस्तान)
8	सिपाही	दिया सिंह	श्री संगत सिंह	खड़ग सिंह वाला, चमन	ज़िला पटियाला
9	सिपाही	जीवन सिंह	श्री हीरा सिंह	संगतपुर, नकोदर	ज़िला जालंधर
10	सिपाही	नारायण सिंह	श्री गूजर सिंह	थालीवाल, नकोदर	ज़िला जालंधर
11	सिग्नलमैन	गुरमुख सिंह (814)	श्री गूजर सिंह	कमाना	ज़िला होशियारपुर
12	सिपाही	जीवन सिंह	श्री नूपा सिंह	थावल, बसी	ज़िला पटियाला
13	सिपाही	गुरमुख सिंह	श्री रण सिंह	धामुंडा	ज़िला जालंधर
14	सिपाही	राम सिंह	श्री सोहल सिंह	कंधोला	ज़िला जालंधर
15	सिपाही	भगवान सिंह	श्री हीरा सिंह	लोहगढ़ अमरगढ़	ज़िला पटियाला
16	सिपाही	भगवान सिंह	श्री बीर सिंह	मुंडियाला	ज़िला लुधियाना
17	सिपाही	बुट्टा सिंह	श्री चढ़ाइक सिंह	शेरपुर, फिल्लौर	ज़िला जालंधर
18	सिपाही	जीवन सिंह	श्री कृपा सिंह	गूरिया, फिल्लौर	ज़िला जालंधर
19	सिपाही	नंद सिंह	श्री देवी दत्ता	अटवाल	ज़िला होशियारपुर
20	सिपाही	साहिब सिंह	श्री रण सिंह	चक 470, तहसील समुंदरी	ज़िला लाहौर (अब पाकिस्तान)
21	सिपाही	भोला सिंह			
22	सफाईकर्मी (NCE)	खुदा दाद		नौशहरा	नॉर्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रॉविंस (पाकिस्तान)

नोट :

● क्रमांक 4 (सिपाही सुंदर सिंह)रू पट्टिकाओं में नाम की त्रुटि उल्लेखनीय है फ़ोर्ट लॉकहार्ट पर "सुंदर सिंह", जबकि अन्य स्मारकों पर "सुध सिंह, पुत्र सुंदर सिंह" अंकित है।

● भोला सिंह (क्रम 21) : उपलब्ध अभिलेखों में इनके पिता व ग्राम का उल्लेख नहीं है।

● विशेष नोट- 'इस शोध-पत्र की प्रेरणा डॉ. गुरिंदरपाल सिंह जोसन (यू.एस.ए.) द्वारा रचित पुस्तक 'The Epic Battle of SARAGARHI' से प्राप्त हुई है, जिसका प्रकाशन 'सारागढ़ी फाउंडेशन' द्वारा वर्ष 2022 में, सारागढ़ी युद्ध की 125वीं जयंती (12 सितंबर 2022) के शुभ अवसर पर विशेष रूप से किया गया था।'

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

समकालीन हिंदी कहानी में पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्य

नीतू मनोहरलाल केवलरामानी
शोधार्थी, (हिंदी विभाग, राष्ट्रसंत तुकड़ोजी
महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर)
मोबाइल नं. 7756078187
ईमेल- kewalramanineetu81@gmail.com

भूमिका - साहित्य की सभी विधाओं में कहानी विधा न केवल सबसे अधिक लोकप्रिय विधा है, बल्कि सबसे अधिक रुचिकर भी है। न केवल वे व्यक्ति, जिनका साहित्य से सरोकार है, कहानी पढ़ते हैं, किंतु ऐसे लोगों की भी संख्या कई गुना अधिक है, जिनका साहित्य से कोई संबंध न होकर भी कहानी पढ़ने में रुचि रखते हैं। इस दृष्टि से कहानी और समाज का संबंध अत्यंत गहरा माना गया है। कहानी की लोकप्रियता इसलिए भी साहित्य की अन्य विधाओं से अधिक है, क्योंकि कहानी समाज के अलग-अलग स्तरों, परिस्थितियों में घटित होनेवाली घटनाओं आदि को अपने में समाए हुए पाठकों तक पहुंचती है। एक तरफ कुछ कहानीकार परंपरागत तो कुछ मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक विषयों को लेखनी में लेकर आते हैं। कहानी में कभी घरेलु प्रसंग, कभी स्त्री-पुरुष संबंध, कभी आधुनिकीकरण व शहरीकरण का जीवन पर पड़नेवाले प्रभाव तो कभी पर्यावरण, स्त्री स्वतंत्रता, दलित पीड़ा, मालिक-मजदूर संघर्ष, बाल मजदूरी, बाल शोषण तथा अपराध की दुनिया का चित्रण किया जाता है। हर कहानीकार अपनी रुचि के आधार पर कहानियों के विषय चुनता है। वहीं पाठक भी अपने पसंदीदा कहानीकारों अथवा विषयों पर लिखी गई कहानियां पढ़ते हैं।

उद्देश्य - प्रस्तुत शोध निबंध अंतर्गत समकालीन हिंदी कहानी में पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्यों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस शोध निबंध में उपरोक्त बिंदुओं का विवेचन करने के लिए चार हिंदी कहानीकारों की कुछ चुनिंदा कहानियों को लिया गया है। इन कहानीकारों में चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, अजगर वजाहत और उदय प्रकाश का समावेश है।

समकालीन हिंदी कहानी में पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्य

'समाज' शब्द से आशय है कि, मानव समाज समूह। समाज शब्द का प्रयोग मनुष्यों के पारंपरिक संबंधों की व्यवस्था के रूप में किया जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार—

राईट के शब्दों में, ''मनुष्य के समूह को समाज नहीं कहा जा सकता, बल्कि उस समूह के अंतर्गत व्यक्ति के संबंधों की व्यवस्था का नाम समाज है।''[1]

मॉरिस गिंसबेरी के अनुसार, ''समाज निश्चित संबंधों एवं व्यवहार के नियमों में आबद्ध व्यक्तियों का ऐसा संगठित समूह है, जो उसके संबंधों को नकारनेवाले तथा उससे भिन्न व्यवहार करनेवाले व्यक्तियों को समाज से पृथक करता है।''[2]

डॉ. मधुरेश लिखते हैं कि, ''समकालीन होने का अर्थ सिर्फ समय के बीच होने से नहीं है। समकालीन होने का अर्थ है समय के साथ वैचारिक और रचनात्मक दबावों को झेलते हुए उनसे उत्पन्न तनावों और टकराहटों के बीच अपनी

सर्जनशीलता द्वारा अपने होने को प्रमाणित करना।"[3]

भूमंडलीकरण एवं उदारीकरण के दौर ने 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं 21वीं सदी के पूर्वार्द्ध में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य को बहुत गहराई से प्रभावित किया है। पारिवारिक संबंधों का ताना-बाना बिखरने लगा है। गरीबी, महामारी, कुपोषण, बेरोजगारी जैसे बुनियादी प्रश्न आपसी और राजनीतिक मसले बन गए हैं। समकालीन कहानीकारों ने इन्हीं मुद्दों को अपनी कहानियों का विषय बनाया है।

1. कहानीकार चित्रा मुद्गल की प्रायः सभी कहानियों का केंद्रबिंदु मानवीय रिश्तों को महत्ता प्रदान करनेवाला पारिवरिक माहौल रहा है। परिवार को समाज की मुख्य इकाई समझनेवाली चित्राजी जीवन-मूल्यों एवं मानवीय संवेदनाओं के मर्म को वहां ढूंढ ही लेती हैं।

चित्राजी की कहानी 'दशरथ का वनवास' में पिता-पुत्र के बीच के संबंध की विफलता पर प्रकाश डाला गया है। कहानी में दशरथ पिता का प्रतीक है। पिता पुत्र के सामने वनवास में है। कारण, वह अपने पुत्र के प्रति स्नेह को हृदय में ही छिपाकर रखता है। वह कड़े अनुशासन के बीच बेटे का लालन-पालन करता है। अन्य बच्चों को साइकिल पर जाता देख रमानाथ एक दिन पिता से साइकिल खरीदकर देने की जिद्द करता है। इस बात पर गुस्साए पिताजी रमानाथ की जमकर पिटाई करते हैं, जिससे वह पिता से नफरत करने लगता है। यही नहीं, उसे दूर मामा के घर भेज दिया जाता है। वहां भी पिता पुत्र की सुध नहीं लेता। इससे रमानाथ के हृदय में पिता के प्रति घृणा बढ़ जाती है और वह एक बार भी पिता से मिलने नहीं जाता। यही नहीं, पिता की मृत्यु की खबर मिलने पर भी वह घर नहीं जाता। पिता के मरणोपरांत एक बिल्टी में पैक आई साइकिल जब रामनाथ को मिलती है, तब उसका हृदय प्रेम से पसीज उठता है। उसकी कड़वाहट प्यार में बदल जाती है। इस कहानी में पिता पुत्र के संबंधों में आई दूरी का मुख्य कारण पिता का कड़क स्वभाव है। उन्होंने बचपन में ही रमानाथ के प्रति कड़ा अनुशासन रखा, जो उसके लिए कड़क मास्टर का बेंत साबित हुआ। रामनाथ ने पिता के कठोर व्यवहार के पीछे का स्नेह कभी महसूस ही नहीं किया। वह उनसे सदैव नफरत करता रहा। पिता के मरणोपरांत जब उसे साइकिल के साथ पिता का पत्र मिला है तब एहसास हुआ कि उसने क्या खोया है।

'दशरथ का वनवास' कहानी में पिता का स्नेह जब परदे से निकलकर प्रकट होता है, तब उसका वनवास भी समाप्त हो जाता है, लेकिन जीवनभर पिता-पुत्र अलग-अलग रहे। साइकिल के साथ बाबूजी के प्राप्त पत्र में लिखा गया है–

''चि. बबुन! सोचा था, तुम दफ्तर जाने लगोगे, तब तुम्हें यह साइकिल भेंट करूंगा। तुम दफ्तर जाने लगे, मगर तुमसे भेंट नहीं हो पाई। तुम्हारी अमानत अब नहीं संभाल पा रहा, तुम्हारे पास भिजवा रहा हूं...ष यह पढ़कर सहसा रमानाथ का सिर साइकिल की सीट पर टिक गया। बाहें इर्द-गिर्द लिपट गईं। पीठ हिचकियों से बुरी तरह कांप रही थी। यही वह क्षण थे, जब पुत्र को पिता के स्नेह का एहसास होता है।"[4]

2. नासिरा शर्मा के कहानी संसार में सामाजिक सरोकार प्रतिबिंबित होता है। उनकी पैनी नजर वर्तमान में गिरते हुए सामाजिक मूल्यों पर केंद्रित है। स्वतंत्रता के कुछ दशक बाद ही सामाजिक एवं राजनीतिक तंत्र हिंसा, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और अनैतिकता से ग्रसित होने के कारण ईमानदार आम आदमी का जीना दूभर हो चुका है। समाज में फैली इस अव्यवस्था का प्रभाव विभिन्न परिवारों पर भी दृष्टिगोचर होता है। इससे संबंधों में आई दूरियां और अविश्वास जैसी समस्याओं ने अनेक परिवारों को अंदर से खोखला कर डाला है।

कहानीकार नासिरा शर्मा की श्नई हुकूमतश एक ऐसे परिवार की कहानी है, जिसमें दो विवाहित बेटियों और विदेश में कमाने गए जवान बेटे अनवर के रहते अलताफ दूसरा निकाह करके दूसरी बीवी को घर लेकर आता है, वह भी पहली पत्नी हाजरा को बताए बिना। इससे हाजरा के स्वाभिमान को धक्का लगता है। अलताफ द्वारा तीन बार तलाक कह देने पर वह उसे छह बार तलाक कहकर घर छोड़कर मायके चली जाती है। वह विधवा मां और अपना भरण- पोषण दूसरों के कपड़े सिलाई कर करती है। मां के मरणोपरांत अचानक एक दिन बेटा अनवर घर आता है और उसे हकीकत मालूम होती है। वह मां को अपने साथ लेकर पुराने घर आता है और स्पष्ट शब्दों में कह देता है कि, यह घर मां का है। घर मां को नहीं बाप

को अपनी नई दुल्हन के साथ छोड़ना होगा। परिवार से वो कटे हैं। बेटे से बिना कुछ पूछे हाजरा उसके साथ चल देती है। बाद में वह 'नई हुकूमत' की बागडोर छोड़ना नहीं चाहती।

''वह मुझे तलाक देगा मैं खुद उसे छोड़कर जा रही हूं। मैं खुद उसे तीन बार नहीं छह बार तलाक देती हूं - तलाक, तलाक, तलाक, तलाक, तलाक, तलाक-६ बच्चों की गिनती की तरह बोल गई हाजरा। उसका दिल चाहा कि, नए कमरे में जाकर अलताफ के बदसूरत चेहरे को नाखूनों से नोंच डाले, जिससे वह जिंदगी भर नफरत करती आई थी। आज समझौते का पुराना बांध टूट चुका था। अंदर का दबा ज्वालामुखी आंख और मुंह के रास्ते फूटकर बाहर निकलने लगा था। मैं तलाक से डरकर ऐरे-गैरों की जूतियां सीधी करनेवाली नहीं हूं। लो संभालो अपना घर इतना कहते-कहते बौराई हाजरा की आवाज़ भरी गई।"[5]

३. असगर वजाहत की कहानियों में भी सामाजिक सरोकार स्पष्ट नजर आता है। एक तरफ समाज में लड़कियों की शिक्षा, दीक्षा, नौकरी और रोजगार के अवसर बढ़े हैं। नारी स्वतंत्रता और स्त्री-पुरुष के समानता की बातें होने लगी हैं। वहीं दूसरी ओर स्त्रियों के प्रति भेदभाव और असमानता अपने उच्च स्तर को छूने लगी है। असगर वजाहत की 'ड्रेन में रहनेवाली लड़कियां' कहानी समाज की इसी कुंठित मानसिकता की ओर इशारा करती है। इस कहानी की नायिका सरला तीसरी बेटी को जन्म देती है। आज भी समाज में बेटी को बोझ माना जाता है। यही वजह है कि, अस्पताल में सरला से कोई भी मिलने नहीं आता है। सभी तीसरी बेटी के जन्म से खफा हैं। पहले ही दो बेटियों के जन्म से प्रताड़ित सरला अब नहीं चाहती है कि, उसकी नन्हीं परी भी संसार में आकर अत्याचार सहे। इसीलिए वह कलेजे पर पत्थर रखकर अपनी ममता का गला घोंट देती है और बच्ची को गटर में फ्लश कर मार देती है। सरला पर कोर्ट में मुकदमा चलता है। पेशी के दौरान सरला दलीलें देते हुए कहती है कि एक मां का कर्तव्य होता है, अपने शिशु के भविष्य को सजाना व संवारना, लेकिन जिसका परिवार उसे अपनाने से ही इनकार कर रहा हो, उस बेटी का जीवन कैसा होता? बेटी के भविष्य की चिंता ने ऐसा करने पर मजबूर किया। कोर्ट में महिला जज ने सारी दलीलें सुनने के बाद सरला को बरी कर दिया। इधर सरला का पति जगदीश्वर बेटे की चाह और दहेज की लालच में दूसरी शादी करना चाहता है। किस्मत से उसे उसकी बिरादरी में ही अच्छा रिश्ता मिल जाता है। जिस कारण वह सरला की जान का दुश्मन बन जाता है। तेल न होने पर स्टोव जलाते समय स्टोव फट जाता है और सरला शत-प्रतिशत झुलस जाती है। जिसमें सरला की मृत्यु हो जाती है। घरवाले उसकी राख को गटर में बहा देते हैं।

एक ओर कहानी पुरुष-प्रधान समाज में लड़कियों पर होनेवाले अत्याचार का विरोध करने की बात करती है, तो दूसरी ओर इस सत्य की ओर भी ध्यानाकर्षित करती है कि, लड़कियों को संसार से गायब करने पर पुरुष वर्ग पुरुषत्व विहीन हो जाएगा।

"अदालत में सरला का बयान सटीक था। उसने यह माना था कि, मैंने बच्ची को श्पाटश में डालकर फ्लश चला दिया था, उसने यह भी माना था कि, यह उसने अपनी बच्ची के सुंदर भविष्य के लिए किया था और मां-बाप का काम अपने बच्चों के भविष्य को सुधारना है। अदालत में जज ने, जो एक औरत थी, सरला को छोड़ दिया, क्योंकि यह साबित हो गया कि, उसने जो किया है वह होशो-हवास में नहीं किया है। सरला घर आ गई। भगवान का करना कुछ ऐसा हुआ कि, सरला के पति जगदीश्वर को बिरादरी में ही एक अच्छा रिश्ता मिला। दहेज भी अच्छा मिलना था। चिंता थी तो बस यह कि, सरला है। जगदीश्वर की बात और किसी ने नहीं घर के श्स्टोवश ने सुन ली। तेल न होने के कारण श्स्टोवश फटा और इस तरह फटा कि सरला सौ प्रतिशत जल गई।"[6]

4. उदय प्रकाश अपनी कहानियों में जादुई यथार्थवाद और कुछ अनोखे चरित्र सामने लाने के कारण अधिक लोकप्रिय हुए हैं। उन्होंने भारतीय जीवन के बदलते यथार्थ को उसकी जटिलताओं के साथ उद्घाटित किया है। उदय प्रकाश का बचपन गांव में बीता। इसलिए गांव के पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्यों के प्रति ध्वनि उनकी कई कहानियों में सुनाई देती है।

'छप्पन तोले का करधन' कहानी एक ग्रामीण पारिवारिक मूल्यों की प्रतीकात्मक कहानी है। 80 वर्ष की दादी घर की एक अंधेरी कोठरी में रहती है। वह कई-कई सप्ताह तक कमरे से बाहर नहीं निकलती। जब भी उस कमरे से निकलनेवाली

बदबू घर में फैल जाती है, तब अम्मा को संशय होता है कि, कहीं दादी की मृत्यु तो नहीं हो गई? परिवार उनके मरने की प्रतीक्षा करता है, क्योंकि दादी के पास छप्पन तोले का करधन है, जो उनके मरने के बाद ही मिलेगा। दादी की मृत्यु होते ही पूरा परिवार उस कोठरी में करधन ढूंढने में लग जाता है। उन्हें लगता है कि, दादी ने करधन को कहीं जमीन में तो गाढ़ के छुपाकर नहीं रखा? जमीन खोदने के बाद भी जब उन्हें करधन कहीं नहीं मिलता तब वे निराश होकर दादी को कोसने लगते हैं।

"चाची ने कहा, 'अब बुढ़िया बचेगी नहीं। अकल से काम लो, नहीं तो सब चौपट हो जाएगा। यह आखिरी मौका है। बुढ़िया ने अगर अब दे दिया तो दिया, वरना समझो यह घर खत्म।' मैंने देखा, चाची दादी के पास गईं। उन्हें कूड़े के ढेर से उठाया, बांह पकड़कर। दादी की पतली बांहों में सिर्फ हड्डियां थीं, जिनके ऊपर बहुत पुरानी, चमकीली पपड़ियों और झुर्रियों से भरी पतली त्वचा चढ़ी हुई थी। वे लगातार गाए जा रही थीं, ष्हाय दित राम... बिन धजी का पैना डोलत है... बिन धजी का पैना डोलत है... हाय दित राम...' चाची उनके कान में मुंह सटाकर जोर-जोर से बोल रही थीं, ''ओ मां जी, जेठ जी (मेरे पिता) का तार आया है कि, वे बहुत बीमार हैं। उनके पेट में डेढ़ सेर की पथरी हो गई है। ऑपरेशन के लिए पैसे नहीं हैं। मां जी, बता दो करधन कहां रखा है? नहीं तो जेठ जी मर जाएंगे।ष फिर अम्मां भी यहां आ गईं। उन्होंने भी दादी को पकड़ लिया। वे भी दादी के कान में चिल्ला रही थीं... ष्मां जी, रामे अब बचेंगे नहीं। मुन्ना को भी बीमारी हो गई है। वह भी नहीं बचेगा। करधन दे दो।"[7]

उपसंहार- समकालीन हिंदी कहानी में सामाजिक सरोकार स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। चित्रा मुद्गल अपनी कहानियों में निम्नमध्य तथा निम्नवर्ग के संघर्ष, पीड़ा तथा शोषण का वर्णन करती हैं। नासिरा शर्मा की कहानियां बदलते हुए सामाजिक मूल्यों की ओर इशारा करती हैं। उनकी कहानियों में स्त्री जीवन का संघर्ष भी पढ़ने को मिलता है। असगर वजाहत और उदय प्रकाश जैसे समकालीन कहानीकार बदलते समाज में स्त्रियों की परिस्थितियों को रेखांकित करते हैं। इस तरह हमें समकालीन हिंदी कहानी में अलग-अलग स्तरों पर जीवन के अलग-अलग पहलुओं से संबंधित सामाजिक सरोकार नजर आता है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. राइट एफ.जे., एलिमेंट्स ऑफ सोशियोलॉजी, यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन प्रेस लिमिटेड, एस. हग्स स्कूल, बिकले, केन्ट, पृष्ठ 5
2. मॉरिस गिंसबेरी, सोशियोलॉजी, ज्योफ्रे कम्बर्लेज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, न्यूयॉर्क, टोरंटो, पृष्ठ 40
3. गंगा प्रसाद विमल, समकालीन कहानी दशा और दृष्टि, पृष्ठ 166
4. चित्रा मुद्गल, दशरथ का वनवास, आदि-अनादि-1, मेधा पब्लिशिंग हाउस, संस्करण 5, 2018, पृष्ठ 27
5. नासिरा शर्मा, नई हुकूमत, चुनी हुई कहानियां, अमन प्रकाशन, रामबाग, कानपुर 208021 (उ.प्र.), संस्करण प्रथम 2015, पृष्ठ 135
6. असगर वजाहत, ड्रेन में रहने वाली लड़कियां, चुनी हुई कहानियां, अमन प्रकाशन, रामबाग, कानपुर 208021 (उ.प्र॰), संस्करण प्रथम 2016, पृष्ठ 21
7. उदय प्रकाश, छप्पन तोले का करधन, अरेबा परेबा, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण प्रथम-2017, पृष्ठ 72

पता - प्लॉट नं. 356, प्रभु प्रकाश
प्रिंटिंग प्रेस के सामने, जनता हॉस्पिटल
रोड, जरीपटका, नागपुर - 440014

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

TRANSFORMATION AND PROSPECTS OF THE INDIAN SUGAR INDUSTRY: A SOCIO-ECONOMIC AND ENVIRONMENTAL PERSPECTIVE

Dr. Atul Kumar
Assistant Professor
Department of Commerce
Shri Ram College, Muzaffarnagar
(An Autonomous College- Affiliated to Maa Shakumbhari University Saharanpur, U. P.-India)
E-Mail: vermajiatul@gmail.com
M- 8126861795

Abstract

The Indian sugar industry remains the second-largest agro-based sector in the country, integral to rural livelihoods and the global sugar ecosystem. In the 2024–25 season, approximately **50/ million farmers** and over **500,000 skilled and semi-skilled employees** in mills, distilleries, and allied units continue to depend on this sector. However, the industry faced a **14–18% drop** in sugar output—estimated at around **26–27/ million tonnes**—due to drought, crop diseases, and early mill closures. Despite the decline, strong **carry-over stocks** of about **5–8/ million tonnes** secured domestic supply and stabilised prices. Moreover, about **3.2–3.5/ million tonnes** of sugar were diverted to ethanol, a substantial increase from the previous year. However, blending from sugar-based ethanol fell to roughly **28%**, prompting industry demands for better ethanol procurement prices, flex-fuel vehicles promotion, and broadened blending targets beyond E20.

In contrast, **grain-based ethanol** has gained momentum, with **dual-feed distilleries** easing feedstock shifts to bridge supply gaps—about **66% grain-based** contributing to total ethanol volume . The government continues to pursue the **E20 target by 2025–26**, easing feedstock policies and supporting retrofits. However, mills emphasize support in procurement prices and export-friendly measures.On the global front, India contracted exports of **600,000/ t** so far in 2024–25 under a reduced quota of **1 million tonnes**, with pace slowed by rising domestic prices—supporting world sugar price stability.

This paper explores the industry's structure, contributions, current status, emerging opportunities, and the potential of transitioning into an integrated bio-energy sector, offering insights into its role in green energy, ethanol blending, and carbon credit generation.

Keywords: sugar industry, agriculture, sugarcane production, Indian economy.

1. Introduction

The Indian sugar industry stands as a cornerstone of the country's agro-industrial framework, contributing substantially to economic development, rural livelihood, and national food security. Initially rooted in the production of traditional sweeteners like jaggery and khandsari, the industry has evolved over the decades into a complex, multi-product ecosystem. Today, it encompasses the manufacturing of refined sugar, the generation of renewable electricity through bagasse-based cogeneration, and the production of ethanol—a key biofuel driving India's energy diversification and sustainability goals.

India is the world's second-largest producer of both sugar and sugarcane, following Brazil. As of 2024–25, the industry operates approximately 599 sugar mills, 309 distilleries, and 180 cogeneration units spread across various states including Uttar Pradesh, Maharashtra, Karnataka, and Tamil Nadu. These units are interlinked with thousands of ancillary businesses, making the sector a vital source of employment and economic support for more than 50 million sugarcane farmers and hundreds of thousands of skilled and semi-skilled workers.

The sugar industry's relevance extends beyond the economic realm into strategic domains such as energy security and environmental sustainability. With government initiatives promoting ethanol blending in petrol (E20 by 2025–26) and the increased utilization of sugar by-products, the sector is playing a pivotal role in reducing dependency on fossil fuels and cutting carbon emissions. Moreover, innovations in bio-manure, bio-chemicals, and zero-waste technologies are further enabling sugar mills to transition into fully integrated bio-refineries.

This research paper aims to analyze the structural evolution of the Indian sugar industry, assess its socio-economic and environmental contributions, and explore emerging trends and opportunities. It also investigates the challenges facing the sector, such as fluctuating sugar prices, water-intensive cultivation practices, and policy uncertainties. By delving into these aspects, the paper seeks to present a holistic understanding of the industry's current status and its future potential as a sustainable and innovation-driven pillar of India's agro-economy.

2. Industry Overview

India contributes approximately 15% of global sugar production and 25% of global sugarcane output, second only to Brazil. The sugar industry processes 300–350 million tonnes of sugarcane annually to produce 20–22 million tonnes of white sugar and 6–8 million tonnes of jaggery and khandsari. Additionally, around 2.7 billion liters of alcohol are produced, primarily used for industrial and fuel-grade ethanol. The sector also generates 2,300 MW of electricity, with nearly 1,300 MW exported to the grid, aiding in India's green energy goals.

This comprehensive structure is supported by:

- 4 national-level sugarcane research institutions,
- 22 state-level research stations,
- Numerous machinery manufacturers and technical consultants.

The integration of sugar manufacturing with co-products like ethanol and electricity has enhanced the sector's value chain and improved its competitiveness on a global scale.

3. Socio-Economic Contributions

The sugar industry is a cornerstone of rural livelihoods, directly impacting the lives of over 50 million farmers and employing 0.5 million skilled and semi-skilled workers. It plays a vital role in:

- Stabilizing rural economies through contract farming and cooperative models.
- Providing seasonal employment and allied services in transport, warehousing, and distribution.
- Enabling regional development by establishing educational, healthcare, and social infrastructure around sugar mills.

The industry's contribution to national GDP stands at approximately 1%, signifying its importance beyond the agriculture sector.

4. Challenges Faced by the Industry

Despite its significance, the Indian sugar industry faces several structural and operational challenges:

- **Cyclic production and price volatility**, leading to inconsistent farmer incomes.
- **Excessive reliance on water-intensive sugarcane**, posing ecological concerns in water-scarce regions.
- **Delayed payments to farmers** due to liquidity issues in mills.
- **Regulatory complexities**, including state-advised pricing vs. fair and remunerative pricing (FRP).

Addressing these challenges is imperative to ensure the sector's sustainability and to balance economic output with ecological responsibility.

5. Opportunities and Sectoral Transformation

The Indian sugar industry is at the cusp of a transformation, driven by policies promoting ethanol blending, bio-energy, and sustainability. Key emerging opportunities include:

a. ***Ethanol Blending Programme (EBP)***

India's goal of achieving 10% ethanol blending (E10) in gasoline, and further targets of E20, are positioning the sugar industry as a critical contributor to energy security and fossil fuel substitution.

b. ***Bio-Energy and Green Power***

Cogeneration from bagasse enables renewable electricity generation. Mills are evolving into bio-energy complexes that support rural electrification and reduce dependency on coal-fired plants.

c. ***Carbon Credits and Sustainability***

With its emphasis on renewable fuels and cleaner production, the industry is increasingly participating in carbon credit trading, opening new revenue streams and promoting environmental accountability.

d. ***Raw Sugar and Export Potential***

With a surplus in sugar production, India is exploring export avenues and raw sugar production to tap global markets, particularly in Africa and Asia.

6. Policy and Institutional Support

Several government initiatives and institutional efforts are supporting the transformation:

- **National Policy on Biofuels (2018)** supports ethanol production from B-molasses, C-molasses, and sugarcane juice.
- **Interest subvention schemes** and incentives for setting up distilleries.
- Support from research institutes like the Indian Institute of Sugarcane Research (IISR) and the National Federation of Cooperative Sugar Factories (NFCSF).

Such supportive ecosystems are critical for sustaining innovation and integrating the sugar industry into India's circular bio-economy.

7. Conclusion

The Indian sugar industry has journeyed far from its origins as a traditional, mono-product agricultural sector. Today, it stands at the forefront of India's efforts to build a circular, green economy. While it continues to serve as a critical source of income for millions of farmers and workers, the industry is also positioning itself as a key player in the domains of renewable energy, bio-based chemicals, and sustainable fuel alternatives. Its transformation into a diversified bio-industrial complex reflects a broader shift in the country's agricultural and energy strategies.

With rising global emphasis on climate resilience and sustainable development, the industry's alignment with India's Sustainable Development Goals (SDGs) is increasingly apparent. Ethanol production for fuel blending directly supports climate action (SDG 13) and affordable clean energy (SDG 7), while rural employment and farmer income improvements contribute to goals of no poverty (SDG 1) and decent work and economic growth (SDG 8). Additionally, value-added by-products like bio-manure and bio-electricity are helping to promote responsible consumption and production (SDG 12).

Despite facing challenges such as declining sugarcane yields in some regions, water stress, and fluctuating market conditions, the industry's adaptability is evident in its adoption of dual-feed ethanol production, cogeneration technologies, and forward-looking export strategies. Government policies—such as the National Policy on Biofuels, interest subvention schemes for distilleries, and incentives for flex-fuel vehicles—have been instrumental in facilitating this transformation.

Looking ahead, the continued success of the sugar industry will depend on sustained investment in technology, improved resource management (particularly water use efficiency), and better policy integration across agriculture, energy, and environment sectors. With the right support mechanisms and stakeholder collaboration, the Indian sugar industry can evolve into a resilient, future-ready sector that not only meets domestic demands but also serves as a model for sustainable agro-industrial growth globally.

In essence, the Indian sugar industry is not just a relic of the past but a dynamic agent of change—capable of driving economic development, rural empowerment, and environmental sustainability well into the future.

References

Government of India, Ministry of Consumer Affairs, Food & Public Distribution. (n.d.). *Sugar statistics reports*. https://consumeraffairs.nic.in/

Indian Sugar Mills Association (ISMA). (n.d.). *Annual reports and ethanol statistics*. https://www.indiansugar.com

International Sugar Organization (ISO). (n.d.). *Global sugar market analysis*. https://www.isosugar.org

Ministry of Petroleum & Natural Gas. (2018). *National policy on biofuels 2018*. Government of India. https://petroleum.nic.in

Indian Institute of Sugarcane Research (IISR). (n.d.). *Research publications*. https://iisz.res.in

National Federation of Cooperative Sugar Factories (NFCSF). (n.d.). *Cooperative sugar industry insights*. https://nfcsf.org

Add.- House No. 967/80 Near Om Shuttering, Rampuri Colony,
Muzaffarnagar (Uttar Pradesh) Pin. Code- 251001

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श

श्री वैभव विष्णू बिराजदार
(शोधार्थी), अनुसंधान केंद्र
डॉ. पतंगराव कदत आर्ट एंड कॉमर्स
कॉलेज पेन, जिला रायगढ़. महाराष्ट्र
email : vaibhavvishnubirajdar@gmail.com
Mob. : 8898878883/9870819549

डॉ. प्रकाश कृष्णदेव धुमाल
(असोसिएट प्रोफेसर तथा शोध निर्देशक)
एस.जी. आर्टस, साइंस एंड जी.पी. कॉमर्स,
शिवले, तहसील-मुरबाड, जि. ठाणे

प्रस्तावना

मैत्रेयी पुष्पा हिंदी साहित्य की एक प्रमुख कथाकार हैं, जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से स्त्री जीवन की जटिलताओं, संघर्षो, आकांक्षाओं और सामाजिक विसंगतियों को गहराई से लिखा है। उनका कथा साहित्य विशेष रूप से स्त्री विमर्श (Feminist Discourse) की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। स्त्री विमर्श का उद्देश्य पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों की स्थिति को उजागर करना, उनकी समस्याओं, अधिकारों, स्वतंत्रता, पहचान और आत्मसम्मान की खोज करना है। यह विमर्श साहित्य में उन अनुभवों को केंद्र में लाता है जिन्हें परंपरागत रूप से उपेक्षित किया गया है।

स्त्री विमर्श का अर्थ

समाज में स्त्रियों की स्थिति, उनकी समस्याओं, अनुभवों, अधिकारों और अस्तित्व से जुड़े मुद्दों पर आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से किया गया विचार-विमर्श होता है। यह साहित्य, समाज, संस्कृति, राजनीति, इतिहास आदि के संदर्भ में स्त्रियों के प्रति हो रहे भेदभाव, दमन और असमानता को उजागर करता है और उनके अधिकारों की बात करता है।

स्त्री विमर्श का तात्पर्य है कि स्त्री को केन्द्र में रखकर उनकी समस्याओं को साहित्य में स्थान देना। उन समस्याओं के कारण एवं प्रकृति का समझकर उनका तार्किक समाधान प्रस्तुत करना। दूसरे शब्दों में लैंगिक असमानता, अन्याय एवं शोषण के खिलाफ स्त्री को स्वतंत्रता, समानता, न्याय, शिक्षा, सम्पत्ति अधिकार, कार्यक्षेत्र में समानता एवं पुरूष प्रधान वर्चस्ववादी सोच के खिलाफ स्त्री को समानता का स्तर प्रदान करना होता है। कथा, कहानी, निबंध, उपन्यास एवं अन्य साहित्यिक माध्यमों से इन मुद्दों को प्रमुखता से उठाया जाता हैं तथा सकारात्मक समानता पर आधारित समाधान प्रस्तुत किया जाता हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श की प्रमुख विशेषताएँ

1. ग्रामीण स्त्रियों की जीवन कथा

मैत्रेयी पुष्पा का लेखन मुख्यतः ग्रामीण परिवेश में रची-बसी स्त्रियों के जीवन को केंद्र में रखता है। उनके उपन्यासों में यह स्त्रियाँ केवल सहन करने वाली नहीं, बल्कि विद्रोह और बदलाव की प्रतीक बनकर उभरती हैं। ''बऊ पुरानी परंपराओं

की थोथी और दुखदायिनी नीति हैं, उसकी अंध भक्ति न करो। पुरुष पुजा को मान-मर्यादा का नाम न दो। तुम उसकी परंपरा को तो निभाने की कोशिश करती हो, करती रही और उसिका फल है कि आज तक हमारे घर कि स्थिति वही कि वही और बुरी है।"[1] 'इदन्नमम' उपन्यास में जहाँ संघर्ष, प्रेम है, वहाँ अनैतिकता की भी चर्चा हैं। वर्ग एवं वर्ण संघर्ष के बीच के दृश्य में शोषक एवं शोषित समाज का चित्रण है। मजदूरों पर अन्याय, अत्याचार, बलात्कार जैसी घटनाएँ कथानक में दिखाई देती हैं।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में आदिवासी जनजाति का जीवन बताया है। उन पर सवर्णों द्वारा होने वाले अत्याचार, अमानवीयता, फरेब, क्रूरता व स्वार्थीपन को देखकर पाठक अंतर्मुख होकर विचार करने के लिए मजबूर हो जाता है। मैत्रेयी पुष्पा ने ग्रामीण समाज के वातावरण को बारिकी से देखा, परखा और अपने साहित्य में लिखा। वह खुद का पूरा जीवन आदिवासियों के लिए समर्पण करती हैं। डॉ. शोभा यशवंते अल्मा के संदर्भ में कहती है-''अल्मा अनेक समस्याओं से घिरी हुई नारी हैं। वह अपनी रुचि, अभिव्यक्ति को कैसे संपन्न कर सकती है, जीवन में जो तरलता है, वह महसूस करने के लिए अल्मा के पास समय नहीं है।"[2] कबूतराओं की जिंदगी की पीड़ा को उपन्यास में बार-बार व्यक्त किया हैं। उपन्यास नारी हृदय की वेदना को चित्रित करता है। इस तरह स्त्री-पुरुष के अलग-अलग रूप शायद ही कहीं दिखने में मिलते हों। कथानक शुरू से अंत तक 'अल्मा कबूतरी' इसी नाम के नारी पात्र के इर्द-गिर्द घूमती रहती हैं। इस रचना में अल्मा की तरह कदमबाई वजनदार पात्र है। जीवन में झाँकना इतना ही नहीं बल्कि सभ्य समाज के साथ जूझती हुई पात्र अल्मा है। मैत्रेयी की भाषा पर अद्भुत पकड़ है, वे अपनी भाषा को आंचलिक ताना-बाना देती हैं।

उदाहरण

1. 'इदन्नमम' उपन्यास में नायिका 'मन्दाकिनी' अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ती है और सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देती है।

2. 'अल्मा कबूतरी' में कबूतरा समुदाय की स्त्री 'कदमबाई' एक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर स्त्री बनने की कोशिश करती है।

2. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में चित्रित स्त्री शोषण

मैत्रेयी पुष्पा के लेखन में स्त्री देह को वर्जनाओं से मुक्त करने की कोशिश की गई है। वे देह को शर्म या पाप का प्रतीक नहीं मानतीं, बल्कि आत्म-अभिव्यक्ति और आत्मनिर्णय का माध्यम मानती हैं। ''साले यह क्या किया? पराठे, रोटी हम उठा लेते। हमारा खाना छूकर धरम बिगाड़ दिया। अब हम सारे बिन भूखे रहेंगे।"[3] उपन्यास में स्त्रियों की स्वतंत्रता, समता और स्वावलंबन की चर्चा स्त्री मुक्ति को लेकर जोरों पर दिखाई गई हैं। परंपरा से चली आ रही व्यवस्था को तोड़ने का प्रयास किया गया है। उपन्यास में अदम्य इच्छा शक्ति एवं मुसीबतों का सामना करने का साहस व्यक्त हुआ हैं। परिणामतः माँ के गुण मैत्रेयी में भी दिखाई देते है।

उदाहरण- उनकी आत्मकथा 'कस्तूरी कुंडल बसै' में उन्होंने अपने निजी अनुभवों के माध्यम से स्त्री देह, कामना और सामाजिक दमन की ईमानदार पड़ताल की है।

3. चाक में चित्रित संघर्षशील स्त्री

चाक उपन्यास में स्त्री-पुरुषों के बीच के अंतः संबंध को प्रस्तुत करते हुए सारंग मुक्त विचार से जीना चाहती है। ''मैं कैसे कहूँ रंजीत से की मेरी जिंदगी सूनी थी, घायल थी, लाचार थी। वे आए तो लगा घूटन भरे आसमान को फाड़कर हवा का कोई ताजा झोंका आया है, जो मेरे भीतर नई साँसे.... घावों पर शीतल मरहम हो तुम। तुम इसे कोई भी नाम दो। ज्ञान-ध्यान कहो या प्यार-प्रीति।"[4] सारंग नीडर, निर्भय, साहसी होने के कारण कथानक में अनेक स्तरों पर संघर्ष करती दिखती हैं। पति के विरुद्ध ग्रामप्रधान पद के लिए पर्चा भर देती है। उपन्यास में स्त्री पात्र अनैतिक संबंध रखते हुए भी उन्हें यह व्यभिचार नहीं लगता। मैत्रेयी ने साहसिक पात्र को समाज के सम्मुख रखकर चेतना जागृत करने का प्रयास किया है। मैत्रेयी पुष्पा की दृष्टिसे स्त्री स्वतंत्रता के लिए सबसे पहले रिश्ते की स्वतंत्रता होनी आवश्यक है।

उदाहरण- 'चाक' उपन्यास की नायिका 'सारंग' सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं के पाखंड का पर्दाफाश करती है और स्त्री की स्वतंत्र सोच की पैरवी करती है।[5]

4. स्त्री आत्मनिर्भरता और चेतना

'बेतवा बहती रही' उपन्यास में राजनैतिक दाँव-पेच, शोषण से घिरा समाज, रुढ़ियाँ, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, निर्धनता, अशिक्षा, दहेज का व्यापक चित्रण प्रस्तुत किया है। पात्रों के चरित्र में स्वार्थवृत्ति का दर्शन अजीत, बरजोर सिंह जैसे विघातक पात्रों के बीच दिखाई पड़ता हैं। उपन्यास में आदर्श पात्र जो अपने आप में एक चरित्र हैं, ऐसे आदर्श पात्रों के रूप में नाना (बिसम्भर सिंह), दाऊ (शत्रुजीत), उदय, शशिरंजन पाण्डे जो हमेशा सच्चाई के मार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति के रूप में समाज का प्रतिनिधित्त्व करते हैं। चंदनपुर, राजगिरि इन गाँवों के बीच कथानक घूमते हैं। परिवार के बनते-बिगड़ते रिश्ते को समेटे हुए कथानक चलती है। उपन्यास की नायिका उर्वशी की दुर्दशा का चित्रण मन को दहला देता है। इसी जीवन के संघर्ष में घसीटती हुई उर्वशी आखिर में अपना प्राण त्याग देती है।[6]

उनकी कहानियों और उपन्यास में स्त्रियाँ अपने फैसले खुद लेती हैं और अपने जीवन की दिशा स्वयं तय करती हैं। वे आर्थिक, मानसिक और सामाजिक रूप से स्वतंत्रता चाहती हैं।

उदाहरण- 'बेतवा बहती रही' में नायिका न केवल अपने अतीत से बाहर निकलती है बल्कि अपने जीवन को नए सिरे से गढ़ती है।[7]

निष्कर्ष

मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य स्त्री विमर्श के क्षेत्र में एक सशक्त हस्तक्षेप है। उन्होंने अपने लेखन से उन स्त्रियों को आवाज दी है जो अब तक चुप थीं या जिनकी आवाज को दबा दिया गया था। उनका साहित्य स्त्री चेतना का साहित्य है वह चेतना जो विरोध भी करती है, सृजन भी करती है और एक नए समाज की कल्पना भी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मैत्रेयी पुष्पा, "इदन्नमम", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. डॉ. शोभा यशवंते 'मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी जीवन'
3. मैत्रेयी पुष्पा, "अल्मा कबुतरी", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. मैत्रेयी पुष्पा- "कस्तूरी कुंडल बसे", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
5. मैत्रेयी पुष्पा, "चाक", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
6. मैत्रेयी पुष्पा, "बेतवा बहती रही", वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
7. आतिरा वी., "मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री-विमर्श", वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

विपिन बिहारी के कथा साहित्य में चित्रित दलित जीवन की समस्याएँ

रेश्मा सुरेश मसुरकर
(शोधार्थी) अनुसंधान केंद्र
डॉ. पतंगराव कदम आर्टस एण्ड कॉमर्स कॉलेज,
पेण, जिला- रायगड़ 402107

डॉ. प्रकाश कृष्णदेव धुमाल
सह. आचार्य,
शां.घो.कला, विज्ञान एवं गो.प.वाणिज्य
महाविदयालय, शिवले, मुरबाड. जि.ठाणे 421401.

प्रस्तावना

किसी भी रचनाओं का अध्ययन करने से पूर्व उसे साहित्यकार के व्यक्तित्व से परिचित होना अत्यत आवश्यक होता है। क्योंकि साहित्यकार के व्यक्तित्व की छाप उनकी रचनाओं पर पड़ती है। साहित्यकार अपने परिवेश तथा युग के प्रभाव से प्रतिबिम्बित होकर समाज के परिस्थिती एवं यथार्थ को अपने सृजन का पहलू बनाता है। समाज का आईना माना जाता है। साहित्यकार के साहित्य का मूल्याकंन करने के लिए उसके जीवन का परिचय तथा तत्कालीन परिस्थितियाँ आदि की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक लगता है। विपिन बिहारी दलित साहित्य में समर्पित भावना से सृजन में लगे हुए, जिन्हें 'आउट लुक' के मार्च 2012 के अंक में प्रकाशित सर्वेक्षण में दलित कहानीकार के रूप में चौथा स्थान दिया गया। लिपिक जैसे व्यस्त पद पर कार्यरत होकर भी उन्होंने दलित साहित्य को बेहतरीन कहानिया देकर कथाकार के रूप में अपनी पहचान बनाई। उपन्यास, लघुकथाएँ और कविता के साथ व्यंग्य जैसी विधा भी लिखी है। समय के अनुसार आगे बढते हुए उन्होंने आलोचना पर अपनी लेखनी को केद्रिंत किया है। वपिन बिहारी बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार है। झारखंड के पालूम जैसे पिछडे सुखाग्रस्त इलाके में रहनेवाले सुविधाविहिन होकर भी दलित साहित्य के क्षितीज पर अपनी उपस्थित दर्ज करानेवाले विपिन बिहारी की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इनमें समाज की वर्णीय और वर्गीय शक्तियों की पहचान है। विपिन बिहारी जी का जन्म दो जनवरी उन्नीसों पैसठ (2 जनवरी 1965) को छोटे सुविधाविहिन पचमहला नामक के गाव में जो बिहार राज्य के गया जिलांतर्गत आता है, वहा हुआ। अब तक पुस्तक के रूप में एक दर्जन से अधिक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए 'अपना-मकान', 'पुर्नवास', 'आधे पर अंत', 'राजमार्ग पर गोलीकांड', 'चील', 'आगे रास्ता बंद है', 'आपकी जाती छोटी है', 'बोझ मुक्त', 'तिलस्म', 'एवं दो धुव्रीय', 'नदी के उस पार के लोग', 'कंधा', 'भूकंप'। उपन्यासों में चार उपन्यास 'एक स्वप्नदर्शी की मौत', 'धन-धरती', 'हमलावार' एवं 'अपने भी', 'मरोड़' तथा 'इस आषाढ़ में'। दो कविता संग्रह 'जलती रहे मशाल', 'मिथकों के किरदार' एवं लघुकथासंग्रह 'नींव की पहली ईंट'। इसके अलावा छह कहानी संग्रह एवं एक उपन्यास तैयार अवस्था में धरे पड़े हैं।

युगों से एक समाज ऐसा रहा जो शोषित तथा पीड़ित है। यह समाज करुणामय, अविकसित, अशिक्षित और अंधकारमय जीवन जी रहा है। जिसकी अहवेलना राजकीय, धार्मिक, सामाजिक तथा अन्य क्षेत्रों में भी हो रही है। पर यही अपना भाग्य समझकर जुल्म सहते आये पिछड़े लोग अपने योग्यता का प्रमाणपत्र सवर्ण से ही प्राप्त करना चाहते है। जो दलितों की परिस्थिति दर्शक, जातिदर्शक उपेक्षित भाव को दर्शाता है। दलित साहित्य केवल वेदना, दुख का चित्रण नहीं करती बल्कि

सामाजिक समता तथा समतामूलक समाज का निर्माण करने की चेतना का चित्रण करती है। जिसे विपिन बिहारी अपनी लेखनी के माध्यम से हमारे सामने रखते हुए उनके सामाजिक प्रश्न पर उत्तर ढुढ़ने का प्रयास करते है।

'दो ध्रुवीय' अंतर जातिय विवाह की समस्या : जातिविहिन समाज की प्रेरणा देने वाली कहानी है 'दो ध्रुवीय' जिसमें एक ब्राह्मण स्त्री है, जो दलित जाति के लालचंद के घर खाती-पीती है और रात में सोती भी है। वह गरीब है और अपनी जवान बेटी का विवाह करने में भी असमर्थ है। पर जब अपने बेटे का रिश्ता करने का प्रस्ताव रखता है तो असे तुरंत अपनी जाति, याद आ जाती है। वह कहती है उसे यह मंजूर है कि उसकी बेटी को उसका बेटा भगाकर ले जाए, पर आपसी सहमति से एक दलित लड़के से वह अपनी बेटी का ब्याह कभी नहीं कर सकती। वह कहती है 'ऐसा करना जात के लिए कलंक होगा।'

'एक स्वप्नदर्शी की मौत' ब्राह्मणवादी षड़यत्र एक समस्या : 'एक स्वप्नदर्शी की मौत' उपन्यास में मूल दलित पात्र जंगी की पारिवारीक स्थिति को दर्शाते हुए लेखक कहते है 'जंगी के परिवार में जंगी के तीन बेटे है। पहले दो बेटों की बहुए आ चुकी है, जबकि छोटा बेटा अविवाहित है। जंगी सेना में नौकरी करता है। सेना में नौकरी करने और शारीरिक रूप से मजबूत होने के कारण जंगी दबंग पात्र है। जंगी गावं की जाति व्यवस्था के सामने घुटने नहीं टेकता। गावं के कोइरी, यादव जंगी के सामने कुछ नहीं कहते परंतु उसके पिछे उसे अप्रत्यक्ष रूप से अपमानित करने का षड़यत्र रचते है। जंगी का सपना है कि अपना पक्का मकान बनाए, लेकिन ब्राह्मणवादी शक्तियां नहीं चाहती कि जंगी का पक्का मकान बने। पर उसकी पत्नी और वह अपना पक्का मकान का सपना पूर्ण करते है। ब्राह्मणवादी शक्तियां उसके परिवार और पक्के मकान को नष्ट करने का षड़यत्र रचते है परंतु जंगी तट्स्त रहकर जीते-जी यादव और कोइरी को कुछ बिगाडने नहीं देता। अंत में उसके मृत्यू के पश्चात ब्राह्मणवादी शक्तियां अपने षड़यत्र में सफल हो जाती है।

'सामाजिक न्याय में दरार' बिखरते समाज की समस्या

'सामाजिक न्याय में दरार' कहानी के माध्यम से लेखक ने बिखरते समाज का चित्रण किया है। जिसमे दलित और पिछड़ा अपने-अपने समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। भाईचारा का भाव रखकर अपना स्वार्थ निकालनेवाले मोतीलाल को प्रमुख निर्वाचित करवाता है। मोतीलाल तो सिर्फ एक रबर स्टॉम्प रहेंगे, बाकी सारे निर्णय-अनिर्णय दुलाल ही करेगा यह तय होता हैं। इस तरह सामाजिक न्याय में दरार आने के कारण दलित और पिछड़ा शोषण का शिकार होते हैं। मोतीलाल अपने लोगों को आगाह करते हुए कहते हैं ''मैं समझता हूँ कि सभी को यह बात समझ में आ गई होगी की पिछड़ो का दलित प्रेम क्या होता हैं? और सबसे ज्यादा वही चिल्लायेंगें सामाजिक...न्याय, सामाजिक न्याय...''[1] आज के समाज में सामाजिक समस्या का अहम हिस्सा भ्रष्टाचार है। जो पूँजीवादी व्यवस्था की एक बड़ी देन है- "भ्रष्टाचार जो नीचे से ऊपर तक व्याप्त है।

'नीले रंग की रात बत्ती' पारिवारिक अनैतिक संम्बन्ध एक समस्या

'नीले रंग की रात बत्ती' कहानी परिवार में अनैतिक संबंधो के कारण दाम्पत्य जीवन के त्रासदी स्थिति की कथा है। जितेन की पत्नी के साथ जितेन का पिता अमर्यादित व्यवहार करता है। नमिता, जितेन की पत्नी उसके व्यवहार से बचने की कोशिश के बावजूद असफल होती है। परिणाम पारिवारीक झगड़े, क्लेश का सामना करना पड़ता हैं। आज समाज में इसका "यावह रूप देखने को मिलता है। दाम्पत्य जीवन में किसी तिसरे का सहभाग परिवार और समाज से उस व्यक्ति को तोड़ देता है। जिसके कारण दाम्पत्य जीवन टूटने-बिखरते नजर आते हैं। यहा जितेन की पत्नी नमिता का एक कथन है ''अब इसे मेरा अपराध मानो या मेरी विवशता या कुछ और, न मैं तुमसे आग्रह करूंगी न माफी मांगूँगी, मैं इस खेल में खुद से अलग मानती हूँ, हाँ...मेरा शरीर सहभागी है।''[2] इस प्रकार विपिन बिहारी ने आर्थिक प्रगति के इस समाज में टूट़ते हुए परिवार, मशीनी जिदंगी जीनेवाले अनैतिक संबंध को दर्शाया हैं।

'उनसे दूर' सामाजिक बदलाव एक समस्या : 'उनसे दूर' कहानी संग्रह की 'भटकन' कहानी में गाँव की बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ, सामाजिक बदलाव का उचित उदाहरण है। जिसका पात्र है रीतेश। रीतेश को अपने पिता से पता

चलता है कि गॉव में अर्तजातिय-हिंसा, डकैती, बलात्कार, हत्या जैसी घटना आए दिन घटती रहती है। यह घटनाएँ गाँव के शांती को भंग कर अशांती फैला रही है। शहर के परिस्थिति से अनजान पिता रितेश से पूछता है, ''बेटा, शहर में तो ऐसा नहीं होता होगा?''[3] पिता के इस मासूम सवाल का जवाब देना रितेश के लिए कठिन कार्य था क्योंकि वह जानता था शहर और गाँव एक ही परिस्थिति में सफर कर रहे है। व्यक्ति कहीं भी सुरक्षित नहीं है। वह शांती के लिए ही तो शहर से गाँव आया है। 'सोच' कहानी पारिवारीक कहानी है। जिसका मुख्य पात्र सुयश है, जो प्रशासक के रूप में हाल ही में नियुक्त हुआ है। जाती के लिए आरक्षण एक वर्दान है, जिसके कारण सुयश को नोकरी मिल जाती है। साथ ही सवर्ण लड़की। इंटरकास्ट मैरिज की लिखी गई यह कहानी दलित सवर्ण की खाई को दर्शाती है। सुयश के पिता बसंत बाबू का कथन है ''फिर ये होगा कि शादी के बाद वे लोग तुम्हे पहले परिवार से काटेंगें, फिर समाज से, फिर धीरे-धीरे लुप्त हो जाओगे।''[4] जात-पात के भेदभाव को दर्शाती यह कहानी समाज में हो रहे परिवर्तन को स्पष्ट करती है।

'पत्थर की लकीर' शैक्षणिक समस्या : 'पत्थर की लकीर' कहानी छोटी जाती के होने पर पढ़ते समय होने वाली समस्या तथा एक पिछड़े जाती की स्त्री का शिक्षित होना कितना संघर्षरत है। यह बताने का प्रयास सुनयना के माध्यम से किया है। सुनयना के पिता तेतर को अच्छी तरह पता है कि समाज में उन्हे किस स्थान पर रखा गया है। इनका कथन है - ''हम छोटे लोग है बेटा कुछ भी कर जाए हमारी जात नहीं बदल सकेगी, समाज का व्यवहार नहीं बदलेगा। हम लोग बेशी कूद-फांद भी नहीं कर सकते। हमारे पास कोई धरोहर नहीं है। उन लोगों के पास ऊंची जात है, धन-सम्पत्ति है, संस्कार है। मैं चाहता हूं तूम भी ऊंचा बनो। वे नहीं मानेंगं, न मानें तो मैं तुममे अपनी जात का गौरव देख रहा हूं।''[5] इससे पता चलता है तेतर अपने स्थिति को अच्छी तरह जानता समझता है, फिर भी सुनयना को ऊंचा पढ़ाने का सपना रखता है।

विपिन बिहारी भारतीय राजनीति के अच्छे चितंक नजर आते है, इन्होंने अपने साहित्य में राजनीति से उत्पन्न अनेक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया हैं। गावों में चुनावी राजनीति का जन्म हुआ जिसके कारण गाँवो-गाँवो में दरारे पैदा हुई, अर्थात गाँव बिखरने लगे। धार्मिक और राजनीतिक भेदभाव पैदा हुए। कुछ लोगों ने बड़े चतुराई से इसका फायदा उठा कर गाँव की गरिबी, बेकरी, शहरों की यंत्रिकता, संयुक्त परिवार की टूटनशिलता, गॉवो और शहरों के राजनीति को शस्त्र स्वरूप कार्य में लाया। चुनावों की हवा गली-गली में फैलाकर समाज के हर व्यक्ति कों राजनीति का हिस्सा बनाकर राजनीतिक भूमिका निभाने पर मजबूर किया।

निष्कर्ष : समाज में कई प्रकार की समस्याएं हैं। जिसका मूल कारण है शोषणकारियों की मानसिकता तथा इनके रचे नए-नए षड़यत्र। इसके लिए समाज में समानता की भावना जागृत करना और एक पथ पर चलने की आवश्यकता है। समाज का निर्माण समानता पर आधारित है। असमानता के रहते समाज नहीं बन सकता। भारत विभिन्न धर्मों, संप्रदायों, वर्णों, जातियों उप जातियों में विभक्त है। धर्मों-संप्रदायों के बीच सहिष्णुता का अभाव है तो वर्णों-जातियों के बीच ऊँच-नीच, मान-अपमान तथा स्पृश्यता-अस्पृश्यता का भेदभाव है। जो सामाजिक जीवन में विलगाव फैलाती हैं तथा दूसरी ओर यह जाति-जाति के बीच ईर्ष्या एवं विद्वेष पैदा करती हैं। यही विद्वेष आगे जाकर समस्या का रूप धारण कर समाज में हाहाकार मचाती है। लेखक ने समाज में फैले अनेकों समस्याओं को सामने लाने का तथा समस्याओं का निराकरन करने का प्रयत्न किया है। लेखक का लेखण और चिन्तन दलितों में फैली सामाजिक समस्यां को पाठकों के सामने लाकर विचार-विनिमय करने पर मजबूर कर देती है।

संदर्भ सूची

1. सामाजिक न्याय में दरार विपिन बिहारी, 42
2. उनसे दूर, विपिन बिहारी, पृष्ठ क्र.48
3. उनसे दूर, विपिन बिहारी, पृष्ठ क्र.116
4. पुर्नवास, विपिन बिहारी, पृष्ट क्र.71
5. आधे पर अंत, विपिन बिहारी, पृष्ट क्र.18

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

डिजिटल कहानी-कहने और इंटरैक्टिव मीडिया में हिंदी बाल साहित्य

आर आर सौमियाश्री
शोधार्थी, उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

प्रस्तावना

आज का युग डिजिटल तकनीक और मल्टीमीडिया का युग है, जहाँ कहानियाँ केवल कागज़ के पन्नों तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि वे स्क्रीन पर जीवंत रूप में सामने आने लगी हैं। स्मार्टफोन, टैबलेट, कंप्यूटर, स्मार्ट-टीवी और इंटरनेट ने न केवल वयस्कों के पढ़ने के तरीके बदले हैं, बल्कि बच्चों की पठन-अभिरुचि और साहित्यिक अनुभव को भी पूरी तरह नया रूप दिया है। पारंपरिक हिंदी बाल साहित्य, जो लंबे समय तक मुद्रित पुस्तकों, पत्रिकाओं और मौखिक कथाओं के रूप में प्रचलित रहा, अब डिजिटल माध्यमों में नए आयाम ग्रहण कर रहा है।

डिजिटल कहानी कहने (Digital Storytelling) और इंटरैक्टिव मीडिया (Interactive Media) ने बच्चों के लिए कहानी अनुभव को बहु-संवेदी (multi-sensory) और सहभागितापूर्ण बना दिया है। अब कहानी केवल पढ़ी नहीं जाती, बल्कि सुनी, देखी, और कई बार 'महसूस' भी की जाती है—ऑडियो-विजुअल एनीमेशन, ध्वनि प्रभाव, इंटरैक्टिव गेम्स और ऑगमेंटेड/वर्चुअल रियलिटी जैसे उपकरणों के माध्यम से। यह बदलाव केवल तकनीकी प्रगति का परिणाम नहीं है, बल्कि बच्चों के संज्ञानात्मक (Cognitive), भाषाई और भावनात्मक विकास के साथ सीधे जुड़ा हुआ है।

हिंदी बाल साहित्य में डिजिटल और इंटरैक्टिव शैलियों का उपयोग अपेक्षाकृत नया है। जबकि अंग्रेज़ी और अन्य वैश्विक भाषाओं में इस क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रयोग हुए हैं, हिंदी में यह प्रयास अभी आरंभिक अवस्था में है। वर्तमान में कुछ ई-पत्रिकाएँ, मोबाइल ऐप और शैक्षिक प्लेटफ़ॉर्म इस दिशा में कार्य कर रहे हैं, परंतु व्यवस्थित शोध और आलोचनात्मक विश्लेषण की अभी भी कमी है।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य हिंदी बाल साहित्य में डिजिटल कहानी कहने और इंटरैक्टिव मीडिया की संभावनाओं और प्रभावों का अध्ययन करना है। इसमें हम न केवल इन माध्यमों के शैक्षिक और सांस्कृतिक महत्व को परखेंगे, बल्कि यह भी देखेंगे कि किस प्रकार ये तकनीकें बच्चों में पठन-अभिरुचि, भाषा कौशल और नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान कर सकती हैं। इस अध्ययन के माध्यम से, हिंदी बाल साहित्य को डिजिटल युग में सशक्त बनाने के लिए नई दिशाओं की पहचान करना भी हमारा लक्ष्य है।

मुख्य शब्द - हिंदी बाल साहित्य, डिजिटल कहानी कहने, इंटरैक्टिव मीडिया, ई-पुस्तक, ऑडियो-वीडियो कथा, वर्चुअल रियलिटी, शैक्षिक ऐप, बाल मनोविज्ञान, भाषा विकास, सांस्कृतिक संरक्षण, मल्टीमीडिया।

भूमिका : डिजिटल तकनीक ने हिंदी बाल साहित्य के स्वरूप और प्रस्तुति में अभूतपूर्व बदलाव लाए हैं। पहले जहाँ कहानियाँ मुख्य रूप से पुस्तकों और पत्रिकाओं तक सीमित थीं, वहीं अब वे ऑडियो, वीडियो, एनिमेशन और इंटरैक्टिव गेम्स

के रूप में बच्चों तक पहुँच रही हैं। डिजिटल कहानी कहने और इंटरैक्टिव मीडिया ने न केवल पठन-अभिरुचि को बढ़ाया है, बल्कि बच्चों के भाषा कौशल, कल्पनाशक्ति और सांस्कृतिक जुड़ाव को भी सुदृढ़ किया है। यह परिवर्तन आधुनिक शिक्षा पद्धतियों और बाल मनोविज्ञान के अनुरूप है, क्योंकि इसमें सीखने की प्रक्रिया को रोचक, सहभागी और बहु-संवेदी बनाया जाता है। हिंदी में इस क्षेत्र पर शोध सीमित है, इसलिए इसके प्रभाव, चुनौतियों और संभावनाओं का अध्ययन समय की आवश्यकता है।

डिजिटल कहानी कहने की तकनीकें : डिजिटल कहानी कहने (Digital Storytelling) वह प्रक्रिया है जिसमें पारंपरिक कथाओं को आधुनिक डिजिटल माध्यमों जैसे ऑडियो, वीडियो, एनिमेशन, चित्र, संगीत और इंटरैक्टिव फीचर्स के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इसका उद्देश्य कहानी को केवल पढ़ने तक सीमित न रखकर उसे देखने, सुनने और अनुभव करने योग्य बनाना है। हिंदी बाल साहित्य में यह तकनीक बच्चों के लिए कथानक को अधिक जीवंत, रोचक और यादगार बनाती है। इसकी प्रमुख तकनीकों में ऑडियो-वीडियो नैरेशन, इंटरैक्टिव ऐप आधारित 'चूज़-योर-पाथ' कहानियाँ, गेमिफिकेशन, क्विज़ या पज़ल से जुड़ी कथा, ऑगमेंटेड रियलिटी (AR) के माध्यम से पात्रों और दृश्य को 3 D में अनुभव करना, तथा वर्चुअल रियलिटी (VR) के जरिए कहानी की दुनिया में प्रवेश करना शामिल है। इन तकनीकों के प्रयोग से बच्चे कहानी में सक्रिय भागीदारी करते हैं, जिससे उनका भाषा ज्ञान, रचनात्मकता और आलोचनात्मक सोच विकसित होती है।

हिंदी बाल साहित्य में डिजिटल कहानी कहने की तकनीकों का अनुप्रयोग : हिंदी बाल साहित्य में डिजिटल कहानी कहने की तकनीकों का प्रयोग हाल के वर्षों में धीरे-धीरे बढ़ा है, हालांकि यह अभी भी अंग्रेज़ी और अन्य वैश्विक भाषाओं की तुलना में शुरुआती अवस्था में है। इन तकनीकों का मुख्य उद्देश्य बच्चों के लिए कहानियों को अधिक रोचक, संवादात्मक और बहु-संवेदी (multi-sensory) बनाना है, ताकि वे केवल पढ़ने तक सीमित न रहें, बल्कि कहानी का अनुभव कर सकें और उसमें सक्रिय रूप से शामिल हो सकें।

सबसे पहले, ई-पत्रिकाओं और ई-पुस्तकों में इन तकनीकों का व्यापक उपयोग देखा जा सकता है। पारंपरिक पत्रिकाएँ जैसे नंदन, चंपक और बाल भारती ने अपने डिजिटल संस्करण शुरू किए हैं, जिनमें QR कोड स्कैन करके कहानी से जुड़ी ऑडियो-वीडियो सामग्री, एनिमेटेड दृश्य, और लेखक के साक्षात्कार देखे जा सकते हैं। इससे बच्चों को कहानी की पृष्ठभूमि और पात्रों से गहरा जुड़ाव महसूस होता है।

दूसरे, मोबाइल एप्लिकेशन आधारित कहानियाँ और शैक्षिक ऐप ने हिंदी बाल साहित्य को एक नए इंटरैक्टिव रूप में प्रस्तुत किया है। इनमें बच्चों को कहानी के दौरान निर्णय लेने का अवसर दिया जाता है जैसे, "पात्र आगे क्या करे?" जिससे वे कहानी के प्रवाह को प्रभावित कर पाते हैं। यह तरीका न केवल सहभागिता बढ़ाता है, बल्कि निर्णय-क्षमता और रचनात्मक सोच को भी प्रोत्साहित करता है।

तीसरे, ऑडियोबुक और पॉडकास्ट ने भी बच्चों के लिए हिंदी कहानियों तक पहुँच को आसान बनाया है। कई प्रकाशक अब बाल कथाओं को ऑडियो प्रारूप में प्रस्तुत करते हैं, जहाँ पेशेवर कथावाचक आवाज़, ध्वनि प्रभाव और बैकग्राउंड म्यूज़िक का उपयोग करके कहानी को जीवंत बनाते हैं। यह दृष्टिबाधित बच्चों या पढ़ने में कठिनाई महसूस करने वाले बच्चों के लिए विशेष रूप से लाभकारी है।

चौथे, ऑगमेंटेड रियलिटी (AR) और वर्चुअल रियलिटी (VR) का प्रयोग, यद्यपि अभी सीमित है, किंतु यह भविष्य के लिए एक बड़ी संभावना रखता है। कुछ पायलट प्रोजेक्ट्स में हिंदी बाल पुस्तकों के साथ AR-सक्षम चित्र जोड़े गए हैं, जिन्हें मोबाइल कैमरे से स्कैन करने पर चित्र 3D में उभर आते हैं और पात्र बोलने लगते हैं। VR में, बच्चा हेडसेट लगाकर सीधे कहानी की दुनिया में प्रवेश कर सकता है जैसे, पंचतंत्र की कहानियों में जंगल के बीच घूमना या विक्रम-बेताल की गाथा का प्रत्यक्ष अनुभव करना।

पाँचवें, गेमिफिकेशन और शैक्षिक खेल का प्रयोग बाल साहित्य में पढ़ने की आदत को मज़बूत करने के लिए किया जा रहा है। कहानी के अध्यायों के बाद क्विज़, पहेलियाँ, और 'क्लू ढूँढो' जैसे खेल जोड़ दिए जाते हैं। इससे बच्चे कहानी

दोबारा पढ़ते हैं, जानकारी याद रखते हैं और पढ़ने में आनंद महसूस करते हैं।

इन सभी प्रयोगों से स्पष्ट है कि डिजिटल कहानी कहने और इंटरैक्टिव मीडिया ने हिंदी बाल साहित्य में न केवल प्रस्तुति शैली बदली है, बल्कि बच्चों को साहित्य से जोड़ने के नए रास्ते खोले हैं। हालांकि, इसके साथ सामग्री की गुणवत्ता, भाषा की शुद्धता और सांस्कृतिक प्रासंगिकता बनाए रखना भी उतना ही आवश्यक है।

प्रभाव : डिजिटल कहानी कहने और इंटरैक्टिव मीडिया ने हिंदी बाल साहित्य के प्रभाव को कई गुना बढ़ा दिया है। सबसे प्रमुख प्रभाव भाषा और साक्षरता विकास पर देखा गया है ऑडियो-वीडियो कथाओं और एनिमेशन के प्रयोग से बच्चों में शब्दावली का विस्तार होता है, उच्चारण सुधरता है, और कहानी के भावार्थ को आसानी से समझा जा सकता है। इसके अलावा, इंटरैक्टिव फीचर्स जैसे निर्णय-आधारित कथाएँ बच्चों की आलोचनात्मक सोच और समस्या-समाधान क्षमता को विकसित करती हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से, हिंदी लोककथाएँ और नैतिक कहानियाँ आधुनिक रूप में प्रस्तुत होने के कारण बच्चों में सांस्कृतिक पहचान और भाषा से जुड़ाव बना रहता है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर, सहभागिता आधारित कहानियाँ आत्मविश्वास, कल्पनाशक्ति और भावनात्मक संवेदनशीलता को प्रोत्साहित करती हैं।

संभावनाएँ और दिशा-निर्देश : डिजिटल कहानी कहने और इंटरैक्टिव मीडिया में हिंदी बाल साहित्य को वैश्विक मंच पर ले जाने की अपार संभावनाएँ हैं। AR/VR जैसी तकनीकों के माध्यम से लोककथाओं को जीवंत बनाया जा सकता है, क्षेत्रीय बोलियों और कहानियों को संरक्षित किया जा सकता है, और शैक्षिक ऐप्स के जरिए बच्चों में खेल-आधारित सीखने को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इन संभावनाओं के सफल उपयोग के लिए दिशा-निर्देश आवश्यक हैं सामग्री निर्माण में भाषा की शुद्धता और सांस्कृतिक प्रासंगिकता बनाए रखना, बाल मनोविज्ञान और शिक्षा विज्ञान के विशेषज्ञों की भागीदारी सुनिश्चित करना, बच्चों के डिजिटल समय पर संतुलित नियंत्रण रखना, और ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता बढ़ाना। लेखक, तकनीकी डेवलपर, शिक्षक और अभिभावकों के सहयोग से हिंदी बाल साहित्य को डिजिटल युग में सशक्त बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष : इस अध्ययन से स्पष्ट है कि डिजिटल कहानी कहने और इंटरैक्टिव मीडिया ने हिंदी बाल साहित्य को अधिक आकर्षक, सहभागितापूर्ण और प्रभावशाली बना दिया है। इन माध्यमों ने बच्चों में भाषा विकास, कल्पनाशक्ति और पठन-अभिरुचि को प्रोत्साहित किया है, साथ ही सांस्कृतिक मूल्यों को नए रूप में प्रस्तुत करने का अवसर भी दिया है। हालांकि तकनीकी संसाधनों की कमी, भाषा की शुद्धता और सामग्री की गुणवत्ता जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं, लेकिन उचित दिशा-निर्देश और सहयोग से यह तकनीक हिंदी बाल साहित्य के विस्तार और वैश्विक मंच पर उसकी पहचान स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

संदर्भ सूची

- हिंदी बाल साहित्य का विकास, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2015.
- जोशी, नरेश, बाल साहित्य : स्वरूप और सृजन, दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 2017.
- शर्मा, राकेश, आधुनिक हिंदी बाल कहानियाँ, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, 2014.
- पांडेय, गोविंद, बाल साहित्य के मनोवैज्ञानिक पहलू, वाराणसी, साहित्य भवन, 2012
- Robin, Bernard R. "Digital Storytelling: A Powerful Technology Tool for the 21st Century Classroom." Theory Into Practice, vol. 47, no. 3, 2008, pp. 220-228.
- Sadik, Alaa. "Digital Storytelling: A Meaningful Technology-Integrated Approach for Engaged Student Learning." Educational Technology Research and Development, vol. 56, no. 4, 2008, pp. 487-506.
- Robin, Bernard R., and Sara McNeil. "What Educators Should Know about Teaching Digital Storytelling." Digital Education Review, no. 30, 2016, pp. 17-29.

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

स्नेहा वानखेडे
शोधार्थी
रा.तू.म. नागपुर विश्वविद्यालय नागपुर

for the paper titled

भूमंडलीकरण का किसान जीवन पर प्रभाव

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic

ISSN:2348-5639

Impact Factor
6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Mrs. Prachi Batwara
Research Scholar, Department of Management, Jayoti Vidyapeeth, Women's University, Jaipur (Rajasthan)
Dr. Mini Arrawatia
Professor, Department of Management, Jayoti Vidyapeeth, Women's University, Jaipur (Rajasthan)

for the paper titled

Corporate Social Responsibility Practices in the Hotel Industry of Rajasthan: A Study of Selected Luxury Hotels

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

Impact Factor
6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

*ਯੋਗਿਤਾ ਚੰਦੇਲ(ਖੋਜਾਰਥਨ)

ਦੇਸ਼ ਭਗਤ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਮੰਡੀ ਗੋਬਿੰਦਗੜ੍ਹ

for the paper titled

ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦਾ ਬਦਲਦਾ ਸਰੂਪ (ਥੈਂਕਸ ਏ ਲੌਂਟ ਪੁੱਤਰਾ) ਕਹਾਣੀ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿੱਚ

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. नीतू शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. आशा कुमारी

सहायक आचार्या, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

for the paper titled

सूफी महाकवि की भाषिक उत्कृष्टता

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

किरन रावत
शोधार्थी, हिंदी विभाग
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, परिसर अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

for the paper titled

समय-सरगम उपन्यास वृद्धों की स्थिति का विश्लेषण

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

जगदीश सिंह रावत
शोधार्थी : (हिन्दी विभाग)
टाँटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

for the paper titled

यात्रा और जीवन : हिन्दी साहित्य में अनुभवों की विविधता

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. चन्द्रशेखर सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

for the paper titled

आधुनिकीकरण और बुजुर्गों के प्रति युवाओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Aishvary Arya
Research Scholar, Department of Music, Faculty of Performing Arts, University of Rajasthan
Prof. Arti Bhatt Tailang
Supervisor, Department of Music, Faculty of Performing Arts, University of Rajasthan

for the paper titled

Modern Challenges in Teaching Pakhawaj: Institutional vs. Traditional Methods

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

चुनमुन कुमारी
शोधार्थी, स्नातकोतर समाजशास्त्र विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

for the paper titled

भोजपुर जिला की ग्रामीण महिलाओं पर डीडीयु-जीकेवाई का प्रभाव

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor
6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Madhu Thawani
Dept of Public Administration, V. N. South Gujarat University, Surat

for the paper titled

The Promise and Peril of Citizen's Charters in India: Navigating the Path to Citizen-Centric Governance in a Digital Age

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor 6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. अम्बिली. वी.एस.

सहायक आचार्या

एन.एस.एस.कॉलेज, पन्दलम पत्तनमतिट्टा (जिला) केरल विश्वविद्यालय

for the paper titled

''बच्चे काम पर जा रहे हैं'' कविता में बाल-विमर्श

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor 6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

हर्षुल रघुवंशी
शोधार्थी, हिन्दी साहित्य
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

for the paper titled

लोक साहित्य में राम

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor 6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. आलपाटि भानु प्रसाद

हिन्दी प्राध्यापक,

यस.आर.आर - सी.वी.आर शासकीय महाविद्यालय(स्वायत्त), विजयवाड़ा

for the paper titled

अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों में मूल्य-विघटन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Prakash Gayen
Research Scholar
Dept. of Education
National Sanskrit University, Tirupati

for the paper titled

मोक्षप्राप्तये ललितकलायाः प्रासंगिकता

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor 6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. शालिनी शुक्ला

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

खुन खुन जी महिला महाविद्यालय, चौक, लखनऊ

for the paper titled

पर्यावरण संरक्षण में लोक साहित्य का योगदान

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

सीमा देवी

शोधार्थी, देशभगत विश्वविद्यालय मंडी गोबिंदगढ़ पंजाब

डॉ. अरविंदर कौर चुम्बर

शोध निर्देशिका, देशभगत विश्वविद्यालय मंडी गोबिंदगढ़ पंजाब

for the paper titled

एस आर हरनोट की कहानी जीनकाठी में, 'दलित जीवन एवम हिमाचली संस्कृति'

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor
6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Deepak Indolia
Post Doctoral Fellow, ICSSR
Jawaharlal Nehru University

for the paper titled

Political Economy of Contemporary Environmentalism: A Free Market Perspective

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. रीटा शर्मा

प्राचार्य, श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर, शिक्षा महाविद्यालय, जामडोली, जयपुर

सुरभि श्रीवास्तवा

शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

for the paper titled

बी.एड. एवं बी.टेक के विद्यार्थियों की इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रति अभिवृत्ति का उनके मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. दिलारा रिज़्वी
अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी,
अलीगढ़

for the paper titled

पवनदूत पर कालिदास का प्रभाव

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

सपना दास

शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

for the paper titled

तेजेंद्र शर्मा के साहित्य में अभिव्यक्त प्रवासी स्त्री जीवन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. सीमा दास
22, बी.एल.सी.मिल्स.बाई लेन.
पोस्ट- महेश, थाना- श्रीरामपुर,
जिला- हुगली

for the paper titled

प्रवासी हिंदी साहित्य का स्वरूप एवं साहित्यिक प्रवृतियाँ

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

हेमलता तायवाडे

शोधार्थी असिस्टेंट प्रोफेसर, आर.के.डी.एफ कॉलेज भोपाल

डॉ. सीमा राजपूत

शोध निर्देशक, विधि विभाग, मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र)

for the paper titled

कन्या भ्रूण हत्या एवं विधिक विश्लेषण

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor
6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. उमा शर्मा

सहायक आचार्य-गृहविज्ञान

राजकीय कन्या महाविद्यालय टपूकड़ा, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर

for the paper titled

खादी-ग्रामोद्योग : अर्थ, स्वरूप एवं महत्व

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

संध्या रानी

शिक्षा विभाग, सिंघानिया यूनिवर्सिटी, पचेरी बारी, झुंझुनू(राज.), भारत

for the paper titled

सभी के लिए शिक्षा : समावेशिता की नई दिशा

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

राजु पासवान
शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

for the paper titled

स्त्री-विमर्श : बदलता स्वरूप, बढ़ते सोपान

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Prahallad Khilla
Assistant Professor of Odia
P.G. Department of Language and Literature
Fakir Mohan University, Balasore, Odisha

for the paper titled

ଓଡ଼ିଆ ଲିପିର ବିକାଶକ୍ରମ ଓ ସ୍ ାତନ୍ତ୍ର୍ୟ
(Development of Odia script and its uniqueness)

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor 6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

लता आसनानी

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ. रेणु शर्मा

शोध पर्यवेक्षक, (सह-आचार्य), श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय, सी.टी.ई. केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर (राज.)

for the paper titled

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर आधुनिकता के प्रभाव का अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

प्रो. (डॉ.) विनोद कुमार उपाध्याय

प्राचार्य, शिक्षा संकाय, महाराज विनायक ग्लोबल विश्वविद्यालय, जयपुर

रुकमणी शर्मा

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, महाराज विनायक ग्लोबल विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

for the paper titled

साइबर अपराध : आधुनिक समय में बदलता स्वरूप व वर्गीकरण सहित अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

प्रभजोत कौर

(Research Scholar Lovely Professional University)
Assistance Professor (Department of Music and Dance)
Kurukshetra University, Kurukshetra

for the paper titled

सितार के सुरों के सम्राट-उस्ताद शाहिद परवेज़ खान

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. सीमा कुण्डारा
सह आचार्य, राजस्थान शिक्षण प्रशिक्षण विद्यापीठ
शाहपुरा बाग, आमेर रोड, जयपुर

for the paper titled

बी.एड. शिक्षकों की नवाचार शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

पुखराज प्राज
सहायक प्राध्यापक
पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान
एसडीयू, नया रायपुर (छत्तीसगढ़)

for the paper titled

लेखकों, प्रकाशकों और पुस्तकालयों के लिए एक रणनीतिक उपकरण के रूप में आईएसबीएन के महत्व का अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor 6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. विमला सोना

लाइब्रेरियन (अतिथि)

संत गुरु घासीदास शास. पी.जी. कॉलेज कुरुद,

जिला धमतरी (छत्तीसगढ़)

for the paper titled

आधुनिक युग में पुस्तकालयों के प्रासंगिक मूल्यों पर डिजिटल संसाधनों की उपयोगिता पर एक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

राहुल साव
शोधार्थी
कूचबिहार पंचानन बर्मा विश्वविद्यालय

for the paper titled

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : सांप्रदायिकता एवं स्त्री

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

मनीषा देवी

डिप्टी सुपरिंटेंडेंट

छोटूराम शिक्षा महाविद्यालय, रोहतक

for the paper titled

मोहनदास नैमिशराय के कथा साहित्य में चित्रित दलित स्त्रियों के प्रति अत्याचार

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. रणजीत सिंह 'अर्श'
सदनिका क्रमांक 5, अवन्तिका रेजीडेंसी,
58/59, सोमवार पेठ, नागेश्वर मंदिर रोड,
पुणे-411011 (महाराष्ट्र)

for the paper titled

सारागढ़ी का महायुद्ध : एक अद्वितीय, अनुपम, परंतु उपेक्षित वीरगाथा

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

नीतू मनोहरलाल केवलरामानी

शोधार्थी, (हिंदी विभाग, राष्ट्रसंत तुकड़ोजी
महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर)

for the paper titled

समकालीन हिंदी कहानी में पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्य

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor 6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Atul Kumar
Assistant Professor
Department of Commerce
Shri Ram College, Muzaffarnagar

for the paper titled

TRANSFORMATION AND PROSPECTS OF THE INDIAN SUGAR INDUSTRY: A SOCIO-ECONOMIC AND ENVIRONMENTAL PERSPECTIVE

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2348-5639

Impact Factor
6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

श्री वैभव विष्णू बिराजदार

(शोधार्थी), अनुसंधान केंद्र, डॉ. पतंगराव कदत आर्ट एंड कॉमर्स, कॉलेज पेन, जिला रायगढ़. महाराष्ट्र

डॉ. प्रकाश कृष्णदेव धुमाल

(असोसिएट प्रोफेसर तथा शोध निर्देशक) एस.जी. आर्टस, साइंस एंड जी.पी. कॉमर्स, शिवले, तहसील-मुरबाड, जि. ठाणे

for the paper titled

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic

ISSN:2348-5639

Impact Factor
6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

रेश्मा सुरेश मसुरकर

(शोधार्थी) अनुसंधान केंद्र, डॉ. पतंगराव कदम आर्टस एण्ड कॉमर्स कॉलेज, पेण, जिला- रायगढ़

डॉ. प्रकाश कृष्णदेव धुमाल

सह. आचार्य, शां.घो.कला, विज्ञान एवं गो.प.वाणिज्य महाविदयालय, शिवले, मुरबाड. जि.ठाणे

for the paper titled

विपिन बिहारी के कथा साहित्य में चित्रित दलित जीवन की समस्याएँ

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

आर आर सौमियाश्री
शोधार्थी, उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

for the paper titled

डिजिटल कहानी-कहने और इंटरैक्टिव मीडिया में हिंदी बाल साहित्य

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July to September 2025, Vol. 12, Issue-3

Executive Editor
Dr. Varsha Rani

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152